

THE
MĒGHADŪTA

OF

KÂLIDÂSA

With the Commentary of Mallinâtha,
For the use of High Schools and Colleges,

Edited

With a literal English translation, with copious notes
in English, and with various readings

BY

GOPAL RAGHUNATH NANDARGIKAR,
Sanskrit Tutor, New English School, Poona,

(*Registered for Copy-right under Act XXV of 1867.*)

Bombay:

Published and Sold by

Messrs. Gopal Narayen & Co.;
Book-sellers and Publishers, Kalkadevi Road.

1894.

All rights reserved.

Price Rs. 1—8.

BOMBAY: PRINTED AT " GOPAL NARAYEN & Co's PRINTING
PRESS " FOR THE PROPRIETOR, VENAYEK NARAYEN,
BY R. C. PINGE, HANUMAN LANE.

Dedicated

To

DR. RAMAKRISHNA GOPAL
BHANDARKAR M. A., C. I. E.

Honorary Member of the Royal Asiatic Society of Great Britain
and Ireland; Honorary Member of the Italian Asiatic Society;
Corresponding Member of the German Oriental Society;
Fellow of the Universities of Bombay and Calcutta;

And

Vice Chancellor of the University of Bombay,
As a token of deep gratitude
by the Editor.

Abbreviations.

| | | | |
|-----------------|-----------|-------------------|-----------------|
| <i>Malla.</i> | =म० | =Mallinātha. | मल्लिनाथः |
| <i>Val.</i> | =व० | =Vallabha. | वल्लभः |
| <i>Mahima.</i> | =महिम० | =Mahīmasinhagani. | महिमसिंहगणिः |
| <i>Su.</i> | =सु० | =Sumativijaya. | सुमतिविजयः |
| <i>Lakshma.</i> | =लक्ष्मी० | =Lakshminivāsa. | लक्ष्मीनिवासः |
| <i>Meghar.</i> | =मघरा० | =Megharāja. | मेघराजः |
| <i>Bha.</i> | =भ० | =Bharata. | भरतः |
| <i>Sanā.</i> | =स० | =Sanātana. | सनातनः |
| <i>Rām.</i> | =रा० | =Rāmanātha. | रामनाथः |
| <i>Hara.</i> | =ह० | =Haragovinda. | हरगोविन्दः |
| <i>Kalyā.</i> | =क० | =Kalyānamalla. | कल्याणमल्लः |
| <i>Sāro.</i> | =सा० | =Sāroddhārini. | सारोद्धारिणी. |
| <i>Megha.</i> | =मेघल० | =Meghalatā. | मेघलता. |
| <i>Avach.</i> | =अवच० | =Avachūri. | अवचूरिः |
| <i>Saras.</i> | =सर० | =Sarasvatīrtha. | सरस्वतीतीर्थः |
| <i>Pārs'va.</i> | =पार्श्व० | =Pārsvābhyudaya. | पार्श्वाभ्युदयः |

Addenda Et Corrigenda.

N. B — The reader should make these corrections and additions before commencing to read It will be found that some insignificant mistakes have crept in owing to the great haste with which the book has been issued.

| Page. | Line | Incorrect. | | Correct. |
|-------|------|--------------------|------|------------------------|
| 1 | 7 | for °रापशान्तये | read | °रोपशान्तये |
| 1 | 7 | °पान | " | °पावन |
| 1 | 9 | °कामद | " | शर्मदं |
| 1 | 21 | °द्वेता | " | °द्वेतोः |
| 3 | 34 | ceoud | " | cloud |
| 5 | 7 | °तरस्यम् " | " | °तरस्याम् " |
| 5 | 23 | °द्यक्त | " | °द्युक्त |
| 5 | 26 | °शन्य | " | °द्यून्य |
| 10 | 8 | मुञ्जतो | " | मुञ्जतो |
| 12 | 7 | °खाद- | " | खेदि- |
| 12 | 8 | खदि- | " | खेदि- |
| 12 | 9 | भवन्त्यम् | " | भवन्त्यमूः |
| 14 | 14 | शरीरकेदारे | " | शरीरे केदारे |
| 15 | 9 | °वसथे | " | वसथे |
| 17 | 8 | प्रकम्प्यो | " | प्रकम्प्यो |
| 20 | 16 | शङ्खार्णव | " | शङ्खार्णवे |
| 20 | 20 | मणितमपि | " | भणितमपि |
| 21 | 10 | जाता | " | सजाताः |
| 21 | 19 | मसिद्धिः | " | प्रसिद्धिः |
| 22 | 25 | great-flowered | " | garden-jasmine |
| 32 | 8 | कान्त्या | " | कान्त्या |
| 35 | 23 | roost | " | roost, |
| 36 | 12 | चेतसावि | " | चेतसीव |
| 37 | 12 | कटौ | " | कटौ |
| 37 | 28 | G1 G2 K1 K2. N. | " | G1 G2. K1 K2. R. |
| | | M. त्रिपुलञ्जनां, | | N. M. विपुलञ्जनां. |
| 39 | 13 | द्वितीयया | " | द्वितीयया |
| 43 | 30 | गाञ्जवि° | " | गाञ्जीवि° |
| 44 | 32 | ta | " | to |
| 46 | 6 | मृगनाभि° | " | मृगनाभि° |
| 47 | 26 | showers hailstones | " | showers of hail-stones |

| | | | | | |
|----|----|---|------------------------|---|---|
| 48 | 12 | " | शश्वत् | " | शश्वत् |
| 49 | 32 | " | सुरज | " | सुरज |
| 50 | 31 | " | P. अनुपतेः for अनुसरे. | " | P. अनुपते, K2. M. आभि- सरे for अनुसरेः |
| 53 | 35 | " | G1. | " | G2. |
| 53 | 36 | " | K2. | " | G1. M. |
| 62 | 27 | " | G1. G2. K1. K2. R. | " | G1. G2. K1. R. N. M. |
| | | " | N M बद्धापान for | " | बद्धापान, K2. M मध्वा- पान for बद्धालपा. |
| 63 | 26 | " | G1. G2. K1. K2. R. | " | G1. G2. K1. R. N. M. |
| | | " | N. M. पत्रच्छेद्यै for | " | पत्रच्छेद्यै, K2. M. कृप्त- पत्रच्छेदै. |
| 63 | 29 | " | G1. | " | G1. K2. M. |
| 63 | 30 | " | K2 M. | " | R. M. |
| 69 | 7 | " | पीठ | " | पीठ |
| 70 | 6 | " | निपा | " | निपातः |
| 70 | 7 | " | क्षामच्छेद्यै | " | क्षामच्छेद्यै |
| 71 | 2 | " | निम्ननाभि | " | निम्ननाभि. |
| 73 | 19 | " | fan | " | face |
| 74 | 12 | " | सादृश्यप्रतिकृति° | " | सादृश्यप्रतिकृति° |
| 74 | 27 | " | one | " | one, |
| 76 | 10 | " | यद्धा | " | यद्धा |
| 77 | 29 | " | सौधवातायनस्थः | " | सौधवातायनस्थः |
| 78 | 27 | " | sorrow, | " | sorrow |
| 79 | 5 | " | बुद्धयेति | " | बुद्धयेति |
| 81 | 3 | " | करुणा वृत्ति° | " | करुणावृत्ति° |
| 81 | 10 | " | °परुषा° | " | °परुषा° |
| 83 | 19 | " | °रतलो° | " | °रतलो° |
| 83 | 20 | " | प्रतिषेधा° | " | प्रतिषेधा° |
| 86 | 29 | " | wives braids | " | wives' braids |
| 89 | 11 | " | जाता° | " | संजाता° |
| 90 | 7 | " | लग्पटो | " | लग्पटो |
| 90 | 33 | " | भूविलसाम्. | " | भूविलासान्. |
| 92 | 18 | " | चैलाञ्जलन° | " | चैलाञ्जलेन° |
| 93 | 6 | " | कथ | " | कथं |
| 95 | 9 | " | क्रमणे | " | क्रमेण |
| 99 | 14 | " | °सपाइन° | " | °सपाइन° |
| 99 | 26 | " | M. K1. R. | " | M G1. K1. R. |
| 99 | 28 | " | W. B. C1. C2 N. M. | " | W. B. C1. C2. N. M. |
| | | " | G2. K2, | " | G1. G2. K2. |

| | | | | | |
|-----|----|---|----------------------------|---|--|
| 100 | 15 | " | सर्वत्र व्याप्यते | " | सर्वत्र व्याप्ये |
| 100 | 16 | " | सारस्वतालकरे | " | सारस्वतालकरे |
| 100 | 28 | " | G2 M. R K2 | " | G1. G2. M. R. K2. |
| 100 | 81 | " | विचर जलद for जलद वि- चर | " | विचर जलद, G1. M. विह- र जलद for जलद विचर. |

Notes.

| Page. | Line. | Incorrect. | Correct. |
|-------|-------|-------------------------------|-----------------------------|
| 1 | 8 | for the. | the |
| 1 | 15 | " and | and |
| 2 | 2 | " भाग्य. | भाग्य. |
| 2 | 9 | " either | either, |
| 3 | 15 | " hill | hill, |
| 3 | 15 | " says | says, |
| 3 | 33 | " cloudsare described | clouds are described |
| 6 | 4 | " h h h | प्रथम |
| 6 | 10 | " if be accepted प्रश्नमद्विष | if प्रश्नमद्विष be accepted |
| 10 | 4 | " कल्पातेवृष्टिकर्तारः | कल्पान्ते वृष्टिकर्तारः |
| 10 | 9 | " Mall. | Mall. |
| 10 | 31 | " 'भाव | 'भाव.. |
| 11 | 4 | " हर | 'हर |
| 11 | 7 | " कलौसोपवनं | कौलोसोपवनं |
| 11 | 22 | " 'लकार | 'लंकार, |
| 11 | 23 | " सः | सः. |
| 11 | 31 | " Mall. | Mall. |
| 12 | 32 | " 'गामी | 'गामी |
| 15 | 5 | " मानस in | मानस is in |
| 16 | 37 | " शिवलिङ्ग; | शिवलिङ्ग |
| 17 | 22 | " बाष्पमुञ्चति | बाष्पं मुञ्चति |
| 18 | 16 | " beings | beings are |
| 19 | 1 | " दृष्टोच्छ्रायः | दृष्टोच्छ्राय |
| 20 | 6 | " विघटिता | विघटिता |
| 21 | 27 | " 'सीरोत्खात | 'सीरोत्खाता |
| 22 | 16 | " भय | भूय |
| 25 | 9 | " कर्तु | कर्तु |
| 25 | 11 | " explains | explain |
| 26 | 31 | " मत्प्रियार्थः | मत्प्रियार्थ |
| 27 | 3 | " 'कका | 'केका |
| 27 | 11 | " 'दारतै | 'दारतैः |
| 29 | 4 | " After this note insert | |

the following " According to Panini II 1 65, the compound ought to be दिनकृतिपय and not कृतिपयदिन as the poet has given, but Mallinātha has supported it with the following remark He says that some of the distinguished writers do not always follow the rule in the general and the most accepted use of the word in a कर्मधारय compound, १० अस्य शास्त्रस्य प्राधिकत्वात् as कृतिपयकुसुमोद्गम कदम्ब ॥ Uttara III 21. From the above rule of Panini it may be inferred that the word कृतिपय when denoting quantity may stand as the last member of the compound: as, उदककृतिपय, उद्वित्कृतिपय 'some quantity of butter,' but when it denotes a number it may be used first.

| | | | | | |
|--------------|----|---|-----------------|---|-------------------------|
| 32 | 5 | " | दक्षिणावर्त्ता | " | दक्षिणावर्तः |
| 35 last line | | " | रमणीयवक्त्रं | " | रमणीयवक्त्रं |
| 41 | 4 | " | उज्जयिनी | " | उज्जयिनी |
| 41 | 14 | " | the दशार्ण | " | the दशार्ण |
| 42 | 17 | " | अश्रुन्ति | " | अश्रुन्ति |
| 45 | 10 | " | कृति | " | कृति |
| 45 | 11 | " | मुक्तचण्डा | " | मुक्तचण्डा |
| 45 | 23 | " | भक्त | " | भक्त |
| 46 | 10 | " | दीपन | " | दीपन |
| 47 | 37 | " | धैर्याद् | " | धैर्याद् |
| 47 | 39 | " | Nagapur; | " | Nāgapur or Nāgapattana; |
| 48 | 18 | " | (XIV) | " | (XLV) |
| 53 | 17 | " | बन्धवत् | " | बन्धवत् |
| 53 | 38 | " | a bout acentury | " | about a century |
| 53 | 39 | " | Mandasôr, | " | Mandasôr. |

| | | | | | |
|-----|-----------|---|--------------|---|-------------|
| 56 | 30 | " | सं शितव्रतः | " | संशितव्रतः |
| 58 | 12 | " | नि सपत्नौ | " | नि सपत्नौ |
| 58 | 21 | " | o | " | of |
| 59 | 2 | " | pages | " | at pages |
| 59 | 9 | " | °नात् | " | °नात् |
| 62 | 21 | " | transposed | " | transposed, |
| 65 | 2 | " | mountain | " | mountain. |
| 65 | 18 | " | °सर्जत वा | " | °सर्ज तदा |
| 65 | 25 | " | भगरिय | " | भगरिय |
| 66 | 3 | " | हमवती | " | हैमवती |
| 66 | 24 | " | tha | " | that |
| 67 | 12 | " | °पय° | " | °पय° |
| 67 | 40 | " | apu | " | and |
| 69 | 1 | " | °पत्नी° | " | °पत्नी° |
| 69 | 29 | " | इन्द्रो | " | इन्द्रो |
| 70 | 39 | " | °सशुष्क° | " | °सशुष्क° |
| 70 | 39 | " | °रक्ष्यमाण | " | °रक्ष्यमाणा |
| 72 | 8 | " | महात्मा | " | महात्मान |
| 72 | 29 | " | अर्धेन्दु° | " | अर्धेन्दु° |
| 79 | 1 | " | उत्तर मेघम्. | " | उत्तरमेघम् |
| 81 | 16 | " | °जनन- | " | °जनन |
| 84 | 21 | " | बल्लभस्य | " | बल्लभस्य |
| 85 | 2 | " | °तर | " | °तर- |
| 85 | 3 | " | °नग | " | °नग- |
| 86 | 6 | " | °स्तेषु | " | °स्तेषु |
| 89 | 1 | " | °नलि° | " | °नील° |
| 90 | 24 | " | मुप्रद्यते | " | समुप्रद्यते |
| 91 | 2 | " | अधोभागे | " | अधोभागे |
| 91 | 14 | " | °व्यन्त° | " | °व्यन्त° |
| 93 | 11 | " | तुहिनमीयत् | " | तुहिनमाथित- |
| 93 | 20 | " | इन्द्रा° | " | इन्द्रो° |
| 93 | 26 | " | °वचन | " | °वचनं. |
| 96 | 19 | " | दिन | " | दिन |
| 97 | 9 | " | e stern | " | eastern |
| 97 | 32 | " | नय -I° | " | नयन° |
| 100 | 8 | " | बाहुल्य° | " | बाहुल्य° |
| 101 | 8 | " | because | " | because, |
| 102 | 6 | " | °सयदन° | " | °सयदन° |
| 103 | last line | " | °पक्र° | " | °पक्र° |
| 105 | 13 | " | दीर्घा° | " | दीर्घा° |
| 105 | 33 | " | कुत्रा° | " | °कुत्र |

| | | | | | |
|-----|----|---|-------------------|---|-------------------|
| 106 | 26 | " | शब्दाख्येयं | " | "शब्दाख्येयं |
| 106 | 27 | " | पुरस्तात् | " | पुरस्तात्" |
| 108 | 4 | " | यदुक्तं वरं । | " | यदुक्तं । वर |
| 108 | 25 | " | राजा | " | राजा |
| 110 | 2 | " | पयोधरेपर | " | पयोधरेपर |
| 110 | 6 | " | भवितव्य | " | "भवितव्य |
| 111 | 14 | " | निर्वृत्तनात् | " | निर्वृत्तनात् |
| 111 | 25 | " | भवन्ति | " | "भवन्ति |
| 112 | 13 | " | शोभां शुभ्रं | " | शोभां शुभ्रं |
| 113 | 26 | " | निश्चल. | " | निश्चल |
| 114 | 4 | " | पिते | " | पि ते |
| 114 | 29 | " | यस्यासौ अं | " | यस्यासौ अं |
| 115 | 11 | " | स्निग्धा | " | स्निग्धा. |
| 115 | 11 | " | मोक्षयन्ति तन्वी- | " | मोक्षयन्ति तन्वी- |
| 116 | 16 | " | श्लाघमान | " | श्लाघमान, |
| 116 | 23 | " | पर्यन्त | " | "पर्यन्तं |
| 116 | 28 | " | विगलितविभुं, | " | विगलितविभुं, |
| 117 | 4 | " | अविरतसुखम्. | " | अविरतसुखम्. |
| 117 | 10 | " | भावः | " | भावः |
| 117 | 16 | " | रामगिरी | " | रामगिरि |
| 118 | 12 | " | क्रौचरन्ध्रैः. | " | क्रौचरन्ध्र. |

Introduction.

| | | | | | |
|----|----|---|---------------|---|-----------------|
| 1 | 16 | " | manuscripts | " | manuscripts, |
| 4 | 26 | " | "मामात् | " | "मानात् |
| 6 | 25 | " | decad | " | decade |
| 8 | 1 | " | character | " | character, |
| 13 | 18 | " | अनुष्टुप्, | " | अनुष्टुप्, |
| 13 | 22 | " | मुनिनं | " | मुनिनं |
| 13 | 31 | " | appears | " | appears |
| 15 | 10 | " | was | " | was |
| 15 | 15 | " | if not | " | if not, |
| 15 | 21 | " | said | " | said |
| 17 | 19 | " | not therefore | " | not, therefore, |
| 18 | 24 | " | and. | " | and |
| 19 | 3 | " | character. | " | character, |
| 20 | 27 | " | appears | " | appears, |
| 24 | 20 | " | under | " | under |
| 32 | 21 | " | Europe | " | Europe. |
| 34 | 25 | " | in | " | in |
| 35 | 13 | " | उज्जयिनि | " | उज्जयिनी, |

| | | | | | |
|----|---------------|----|------------------|---|-------------------|
| 35 | | 36 | „ footnote. | „ | footnote. Indian |
| 36 | | 8 | „ men | „ | men, |
| 36 | footnote | 2 | „ 264 | „ | 264.” |
| 37 | footnote | 8 | „ MSS | „ | MSS |
| 46 | footnote | 10 | „ 'निर्द' | „ | 'निर्द' |
| 46 | „ | 19 | „ 'कुलोपगति' | „ | 'कुलोपगति' |
| 49 | | 7 | „ fragmentar | „ | fragmentary |
| 49 | footnote | 3 | „ सप्तभि' | „ | सप्तभि' |
| 54 | | 4 | „ C. | „ | (C.) |
| 54 | footnote | 16 | „ उदयेन्दुमगल. | „ | उदयेन्दुमगल. |
| 55 | footnote | 14 | „ but | „ | but |
| 57 | footnote | 15 | „ 13). | „ | 13), |
| 57 | footnote | 18 | „ सैराट् | „ | सैराट् |
| 57 | footnote | 20 | „ Sakas | „ | Sakas |
| 57 | footnote | 31 | „ Prinsep's | „ | Prinsep's |
| 57 | footnote | 33 | „ Valabhi | „ | Valabhi |
| 57 | footnote | 35 | „ Siladitya | „ | Siladitya |
| 58 | footnote | 10 | „ 'the | „ | 'the |
| 60 | footnote | 11 | „ द्विजः | „ | द्विजः |
| 60 | footnote | 17 | „ शत्रुपराभवमन्य | „ | शत्रुपराभवमन्य.” |
| 60 | footnote | 22 | „ शत्रुपराभव. | „ | शत्रुपराभव.” |
| 61 | footnote | 1 | „ India | „ | India, |
| 63 | footnote | 26 | „ note | „ | note. |
| 64 | footnote | 8 | „ कापिसेनेव | „ | कापिसेनेव |
| 64 | footnote | 12 | „ Setu | „ | Setu |
| 65 | footnote | 7 | „ मधुसूदन | „ | मधुसूदन |
| 66 | | 13 | „ part ular | „ | particular |
| 67 | | 4 | „ Prāmāna | „ | Prāmāna |
| 67 | | 8 | „ टीका | „ | टीका |
| 67 | footnote | 9 | „ व्युत्पादिते च | „ | व्युत्पादिते च |
| 67 | footnote | 18 | „ authors | „ | authors, |
| 68 | footnote | 6 | „ 'बिन्द' | „ | 'बिन्दु' |
| 68 | footnote | 16 | „ व | „ | न |
| 71 | footnote | 17 | „ And | „ | And |
| 73 | | 28 | „ महाराट् | „ | महाराट् |
| 76 | | 15 | „ 'नगर | „ | 'नगरं |
| 76 | Second column | 23 | „ मनोहिजन्मन्तर° | „ | मनो हि जन्मान्तर° |
| 80 | | 3 | „ ingered | „ | fingered |

| | | | | |
|----|---------------|--------------|---|----------|
| 80 | Second column | 24 „ सत | „ | सस्तं |
| 81 | first column | 23 „ देवसधा | „ | देवसधा |
| 82 | | 3 , महाकाव्य | „ | महाकाव्य |
| 82 | | 31 „ af | „ | of |
| 84 | footnote | | | |
| | first column | 14 „ हितान | „ | हितानि |
| 84 | footnote | | | |
| | second column | 9 „ बवाधे | „ | बवाधे |
| 84 | footnote | | | |
| | second column | 11 „ सोऽथन | „ | सोऽथेन |
| 84 | footnote | 21 „ 0 | „ | of |

CRITICAL NOTICE.

I

The text of the present edition of Kāldāsa's Meghadūta with the Sanjivini of Mallinātha is mainly based on the collation of the following printed editions and the manuscript copies:—

W. This is one of the printed copies of the poem, published at London in 1832 by Prof. H. H. Wilson of the Oxford University, who based his text on an edition which was printed in the year 1813, at Calcutta. This edition contains the text and an admirable metrical translation of the poem with notes and a vocabulary. Along with this we collated another German* edition of the poem published in 1841 by Prof. J. Gildemeister. This too contains the texts of the Meghadūta and Śṛṅgāratilak with a Latin translation of the latter and a vocabulary in German of both. But these *savants* of Sanskrit have not, it appears, based their texts on collation of several manuscripts the representatives of the several provinces of India; and thus they have not, it may be presumed, favoured the public with the authentic and the most reliable text of Kāldāsa. Along with the others we have collated both these editions and have marked the variants throughout.

C1. This is also a printed edition of the poem edited by Prof. Isvarachandra Vidyāsāgara of Calcutta. This was published in the year 1869. It contains the text of Kāldāsa and the commentary of Mallinātha. Besides this there are at the end of the volume a few extracts from the well known commentaries of Bharata, Sanātana, Rāmanātha, Haragovinda and Kallyānamalla on the text and various readings. The learned Professor has also discussed in an able spirit some of these readings in Sanskrit.

* This beautiful episode has also been edited by Prof. Johnson in England, and by Dr Max Müller at Konisberg; but these editions were not available to me when preparing this book for the press.

C2. Under this group come two printed editions one of which was published in the year 1871 at Calcutta. This is edited by Pandita Prānanātha, a Kāshmirā Brāhmana. This has the text and the commentary of Mallinātha and some readings at the end of each page. Here and there are also cited some verses conveying the sense of parallel ideas from the standard authors. Another is also a printed copy published in the year 1870 at Calcutta. This book is edited by Pandita Ajitanātha Nyāyaratna a native of नवद्वीप at the request of Baboo Bhuvanachandra Vasāka. This also contains the text and the commentary of Mallinātha. The editor says that the text of the poem he prepared for the press was mainly based on a collation of several manuscripts, the representatives of several provinces of India. His words are —“तच्च नानास्थानतः पुस्तकानि समाहृत्य विविच्य च यथाश्रममस्माभिः संस्कृतं.” In this edition the editor has omitted the variants throughout. All these copies, therefore, represent the text of the Meghadūta which is current in Bengal.

B. This is also one of the printed copies of the poem published at Poona in the year 1866 by Pandita Krishnas'āstri Bhatavadekar who appears to have dedicated his book to Dr. Bulher. This book contains the text and the commentary of Mallinātha, and a vocabulary of words at the end of the volume. In this book the commentary of Mallinātha appears to have been prepared with great care and discretion. Excepting some places the commentary in it appears, however, most correct and trustworthy. And this is the special recommendation of the book. This book then may fairly be said to represent the Bombay text, or in other words the text of the Mahārāshtra countries.

P. This letter represents the text of the Meghadūta inter-
the Pārs'vābhyudaya, a Jaina *Mahākāvya* of Jinasena who
ve been a contemporary of and a tutor to Amogha-
aryans say that this king of Karnatic flourished in
ad of the 9th century. My friend Mr. K.
in College, who read his paper on Bhartri-

hari and Kumârla before the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society on the 28th June 1892 gives the following account of this Jaina *Mahākāvya*. He says:—"Jinasena lived on into the reign of Amoghavarsha I, as he tells us himself in the *Pârs'vâbhyudaya*.*

इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्य मेघं
बहुगुण[मप] दोषं कालिदासस्य काव्यं ।
मलिनितपरकाव्यं तिष्ठतादाशशांकं
भुवनमवतु देवः सर्वदामोघवर्षः ॥ ७०
श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृङ्गः
श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान् ।
तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण
काव्यं व्यधायि परिवेष्टितमेघदूतम् ॥ ७१

इत्यमोघवर्षपरमेश्वरपरमगुरुश्रीजिनसेनाचार्यविरचितमेघदूतवे-
ष्टितवेष्टिते पार्श्वभ्युदये भगवत्कैवल्यवर्णनं नाम चतुर्थस्सर्गः ॥३

This poem is one of the curiosities of Sanskrit literature. It is at once the product and the mirror of the literary taste of the age. The first place among Indian poets is allotted to Kâlidâsa by consent of all. Jinasena, however, claims to be considered a higher genius than the author of the Cloud-messenger. But this estimate of himself is not endorsed by posterity who regard Kâlidâsa as the greatest of Indian bards, the unapproached and unapproachable; whereas, except among his co religionists, Jinasena's name has passed into unmerited oblivion. However this may be, the value of the *Pârs'vâbhyudaya* to a modern editor of the Cloud-messenger cannot be exaggerated as Jinasena has contrived to interweave the whole of that charming love-song into his poem. It may be noted here that the earliest allusions to Kâlidâsa are those found in the *Harshacharita*† and the *Aihole* in-

* MS of the Kolhâpura Jaina Matha.

† Introduction to *Harshacharita*.

scription of Pulakesi II,* which thus opens in praise of Jinasena —

जयति भगवान्जि (जिज) नेन्द्रो वीतजरा [मर] णजन्मनो यस्य । ज्ञानसमुद्रा-
न्तर्गतमाखिलज्जगदन्तरीपमिव ॥

The next reference in chronological order to the great poet occurs in Kumārila's work,† and the allusion to Kālidāsa, which is met with in the Pārs'vābhyudaya is consequently a still later one.

The composition of Pārs'vābhyudaya I refer to the early part of Amoghavarsha's reign, and last but not least, comes the Âdipurāna which admittedly ranks very high as a piece of literary workmanship, but Jinasena did not live long enough to finish it. Tradition tells us that when Jinasena felt that his end was approaching he called to his side two of his disciples and, pointing to a piece of wood which lay in front of them, asked each to describe it. One of them said

शुष्क काष्ठ तिष्ठत्यग्रे.

And the other who was Gunabhadra said

नीरसशर भाति पुरा.

It is needless to remark that the latter description highly

* Ind Ant, Vol VIII, p 237 That this is the reading of the verse is clear from the following —

जरमरणजन्मरहिया ते सिद्धा मम सुभक्तिजुत्तस्त ।

हेतु वरणाणलाह ॥ Shddhabhakti

ससारचक्रगमनागतिविप्रमुक्ता—

नित्यं जरामरणजन्मविकारहीनान् ।

देवेन्द्रदानवगणैरभिपूज्यमामान्

सिद्धांखिलोकमहितान् शरण प्रपद्ये ॥ Siddhabhakti.

विधूताशेषससारबन्धनो भव्यबांधवः ।

त्रिपुरारिस्त्वमीशोसि जन्ममृत्युजरांतकृत् ॥ Jinasena, Âdipurāna.

सम्यग्दर्शनमात्रेण संतोषमपरे गताः ।

श्रुत्वातिविमल धर्मं जिनानां जितजन्मनां ॥ Ravishena, Padmapurāna

Tantravārtika, Benares Edition, p 133 —

एव च विद्वच्चनाद्भिर्निर्गतं

प्रसिद्धरूप कविभिर्निरूपित ।

“ सतां हि सदेहपदेषु वस्तुषु

प्रमाणमत-करणप्रवृत्तयः ” इति ॥

commended itself to Jinasena who thereupon entrusted to Gunabhadra the task of finishing the Âdipurâna. * The latter also wrote the U-tarapurâna and the Âtmânus'âsana alluded to above.

The Pârs'vâbhyudaya and the Âdipurâna do not enable us to assign the latest date to Jinasena. But this omission is supplied by the Jayadhavalâtikâ which mentions this author along with his illustrious contemporary and disciple Amoghavarsha I. and gives S'aka † 759 as the date of its own completion.

इति श्रीवीरसेनीया टीका सूत्रार्थदर्शनी ।
 मठग्रामपुरे श्रीमद्भुर्जरार्यानुपालिते ॥
 फाल्गुने मासि पूर्वाह्ने दशम्यां शुक्लपक्षके ।
 प्रवर्धमानपूजायां नन्दीश्वरमहोत्सवे ॥
 अमोघवर्षराजेन्द्रराज्यप्राज्यगुणोदया ।
 निश्चितप्रचयं यायादाकल्पान्तमनल्पिका ॥
 षष्टिरेव सहस्राणि ग्रन्थानां परिमाणतः ।
 श्लोकेनानुष्ठुभेनात्र निर्दिष्टान्यनुपूर्वशः ॥
 विभक्तिः प्रथमस्कधो द्वितीयः संक्रमोदयः ।
 उपयोगश्च शेषास्तु तृतीयस्कन्ध इष्यते ॥
 एकाद्विषष्टिसमाधिकसप्तशताब्देषु शकनरेन्द्रस्य ।
 समतीतेषु समाप्ता जयधवळा प्राभृतव्याख्या ॥
 गाथासूत्राणि सूत्राणि चूर्णिसूत्रं तु वार्तिकम् ।
 टीका श्रीवीरसेनीया शेषा पद्धतिपञ्चिका ॥

* Jinasena wrote the first 42 chapters of this work, the remaining 5 chapters being composed by his pupil. In his introduction to the 43rd chapter Gunabhadra says—

अर्धं गुरुभिरैवास्य पूर्वं निष्पादितं परैः ।
 परं निष्पाद्यमानं सच्छब्दो बध्नाति सुंकरं ॥ १३ ॥
 इक्षोरिवास्य पूर्वार्धमेवाभाति रसावहं ।
 यथा तथास्तु निष्पत्तिरिति प्रारभ्यते मया ॥ १४ ॥

† Siddhantatraya or three Scriptures at Mûdabîdari, leaf 518. I owe this reference to Brahmasûri Shâstri of S'râvâna Belgol.

श्रीवीरप्रमुखावितार्थघटना निर्लोठितान्यागम—
 न्याया श्रीजिनसेनसन्मुनिवरैरादेशितार्थस्थितिः ।
 टीका श्रीजयनिहितोरुधवळा सूत्रार्थसंद्योतिनी
 स्थेयादारविचन्द्रमुज्ज्वलतया श्रीपालसंपादिता ॥

We may safely accept S'aka 760 as the date of the *Âdipurâna*, for at this time Jinasena must have been very old as he wrote his first work the *Harivams'a* in S'aka 705.

We have already seen that the *Âdipurâna* mentions Akalamka, Prabhâchandra the author of the *Nyâyakumudachandrodaya* and Vidyânanda *alias* Pâtrakesari. We have shown that Akalamka was contemporary with the Râshtrakûta, king S'ubhatunga or Krishnarâja I. and flourished in the 2nd half of the eighth century.

Akalamka's pupil Prabhâchandra and Vidyânanda must have lived on into the first half of the ninth century, and were, of course, contemporary with Jinasena who wrote his *Harivams'a* in the time of the Râshtrakûta king Vallabha II. The latest date, therefore, which can be assigned to Prabhâchandra and Vidyânanda is S'aka 760, the date of the *Âdipurâna* which mentions them."

From the above-mentioned antiquarian researches which have been lately made by Mr. Pathaka it is evident that the text of the poem which I made use of is very old and hence most reliable. And the readings of this text in particular will show the palpable difference of the *Meghadûta* which had once been before Jinasena when he composed his *Pârs'vâbhyudaya* in the second half of the ninth century and the *Meghadûta* of the last decad of the 19th century.

The readings of the Cloud-messenger interwoven in the *Pârs'vâbhyudaya* were at first kindly sent to me by my revered teacher Prof. Paranjape of the Râjârâma College, Kolhâpura. Afterwards esteemed friend Mr. K. B. Pathaka of the Deccan College placed disposal the complete text of the poem which he had already down from the *Pârs'vâbhyudaya*, and which he with his istic energy had intended to publish with the date of the

author This, therefore, may fairly be said to represent the Karnatic text of the poem.

G1. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 157. XV. Collection of 1882-83. Paper, 8×5 inches. Folia, 47.

The average number of lines on each page is 18. Character: Devanāgarī in the Kāyastha form of writing. Date, 1617 of the Samvat year corresponding to 1561 A. D.

This MS. is a very learned commentary on the poem. It is called Sāroddhārīnī, the name of its author is not given either in the beginning or at the end of its colophons. It is about 332 years old since it gives the date of its production. The first 17 leaves of it are considerably damaged and most of the remaining are also worm-eaten and torn at the marginal sides so as to affect even some lines that begin the pages. It is certainly a very valuable codex. It abounds in quotations from numerous authors, and in grammatical, philological, rhetorical and critical disquisitions. It refers in several places to older commentators but does not name any of them. This Sāroddhārīnī is what is called a कथभूतिनीटीका i. e. one which introduces all adjectives by way of answers to the question “कथभूतः”? first asked. The commentary is copious and generally repeats each word of the text before explaining it. This is, we think, purchased in Gujarāṭha by the Bombay Government. This then represents the Gujarāṭha text.*

G2. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 43. VI. Collection of 1873-74. Paper, 8×3 inches. Folia, 10.

* The colophon at the beginning —

ॐ नमः श्रीचण्डिकायै ॥ अर्कैन्दुताशादिप्रद्योतस्याप्यगोचरं * * * * *
* * * स्तब्धगमय [म] स्तुमे ॥ रसभावम [म] रोज्जिज्ञां भारती भरतावृते । श्रीमतं
कालिदासस्य * * * * * पुमान् ॥ तस्य प्रसन्नगभीरा. प्रबन्धा नौरिवाम्बु-
धे । उद्धर्तुं स्तोत्रमप्यर्थं व्याख्यास्यामी * * * * * ॥

The colophon at the end —

इति श्रीकालिदासविरचितस्य मेघदूतकाव्यस्य सारोद्धारिणीटीका समाप्ता ॥ छ ॥
संवत् ॥ १६१७ वर्षे आषाढमासे कृष्णपक्षे एकादश्यां त्रिंशौ भृगुदिने लिखितयम् ॥
शुभं भवतु ॥ श्रीरस्त्वनपायिनी ॥ कल्याणमस्तु ॥ आरोग्यतामस्तु ॥ ध्यास-
गोच्यं दशवर्जितु पुस्तकं ॥

The average number of lines on each page is 13. Character Devanâgarî. Date, none, about a hundred years old. This MS. contains only the text of the poem with some marginal notes. It was purchased for the Bombay Government by Dr. Bulher at Surat.* Besides this† Jaina MS. two other MSS. are also collated under this group.

(a) From the Library of the Deccan College, Poona. No. 156. XV. Collection of 1882-83. Paper, 8×3 inches. Folia, 13. The average number of lines on each page is 11 Character, Devanâgarî. Date, 1642 of the Samvat year § corresponding to 1586 A. D. This Jaina MS. of the poem was bought for the Bombay Government by Dr Bhândârakara at Navânagara in Gujarâtha. It contains the text of the poem with some marginal notes. Like G2. the writing of this is very beautiful In the middle of the writing some round space with a round dot in red ink exactly in the middle of that space is left on each page of the MS. The paper of this is very old and the marginal ends of it are partially damaged by the white ants, on the whole it is very carefully preserved.

(b) From the Library of the Deccan College, Poona No. 159. XV Collection of 1882-83. Paper, 8×3 inches. Folia, 19 The average number of lines on each page is 15 Character, Devanâgarî.

Date, 1759 of the Samvat year ‡ corresponding to 1703 A. D.

This Jaina MS. of the poem is bought for the Bombay Govern

* Calatogue of MSS. Deccan College, 1888, p 55. Also the preface of the same

† The colophon at the end — इति श्रीमेघदूतसूत्रं. And on the margin of the same page, there is — इति मेघदूतावच्छर्णिः.

§ The colophon at the end of this MS. runs thus — इति श्रीमेघदूताभिधानं काव्यं समाप्तमिति ॥ शुभं भवतु ॥ श्रीरस्तु ॥ कल्याणमस्तु ॥ सवत् १६४२ वर्षे भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे षष्ठ्यां त्रिंशौ शुक्रवारे लिखितमस्ति ॥ श्रीमत्तपागच्छे । श्रीहीरविजयसूरि ॥ विजयराज्ये ॥ पणश्रीदेवविजयपठनार्थं लिखापित ॥ श्रीनवानगरवास्तव्यबुद्धराहालापुत्रवृणषताकेन स्वश्रेयसे ॥ श्री ॥

‡ The colophon at the end—इति संपूर्णो मेघदूतमहाकाव्यस्यावच्छरिः ॥ सवत् १७५९ वर्षे वैशाखवदि ४ त्रिंशौ ॥ बीलाडामध्ये ॥ श्रीः ॥

ment by Dr. Bhândârakara at Bilâdâ somewhere in Gujarâtha. This MS. is a commentary on the poem by a Jaina Pandita named Lakshminivâsa. This Panjikâ is called S'ishyahitaishini. *

This commentary is neither so very learned nor copious; the author sometimes quotes some lexicons and some aphorisms of Pāṇini. Sometimes he gives some different readings and explains them, but he never attempts to choose the best of the readings of the group he explains. The MSS. (a) and (b) which form the part of G2. are grouped under it. These three MSS. therefore may safely be said to represent the Gujarâtha text.

K1. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 280. XVII. Collection of 1883-84. Paper, 7×5 inches. Folia, 58. The average number of lines on each page is 23. Character, Devanâgarî, after the S'aradâ form of writing. Date, 1627 of the Samvat year † corresponding to 1571. A. D. This Jaina MS. of the poem is bought for the Bombay Government by Dr. Bhândârakar probably somewhere in Kâshmirâ. Because each leaf of this commentary has a line or two either in the body of the

* The colophon in the beginning runs thus — श्रीमहरी महावीरं कर्मसीर मनोहर । जगत्तार गुणाधार दुष्टवार स्तुवं ह्यर ॥ कालिदासकृतिः कुत्र कुत्र मे बुद्धिवैभव । तदिह वेदमनेत्रेण कुर्वे विश्वावलोकन ॥ मेघदूताभिधे काव्ये करिष्ये पञ्जिकामिमां । श्रीमहक्ष्मीनिवासोऽहं नाम्ना शिष्यहितैषिणी ॥ पुरतुपकुमारमन्त्र-प्रयाणरणदूतजलधिवननगरय । रविचन्द्रोदयपरिणयकृतमधुकुलकोलिरतिविरहा ॥ यत्रैतेऽष्टादश भावा वर्ण्यन्ते तन्महाकाव्य । एते भावा अत्र लेशतो व्यावर्णिता सन्ति । अन्यच्च महाकाव्यिप्रणीतत्वान्महाकाव्यमुच्यते । अत्र कवि श्रीकालिदासो वर्षाकालमाश्रित्य विप्रलभरस वर्णयन्निदमाह ॥

† The colophon at the end of this is as follows — सवच्चन्द्रकलानव-त्रिकमिते (१६२७) श्रीमेघदूतेऽनघे । मासि भाद्रपदे शुभोदयकरे चैकादशी-वासरे । दीकेय वरवाचकेन महिमासिहेन सत्साधुना । शिष्टानान्तरबुद्धिहर्षविज-यादीनां कृते निर्मिता ॥ जगद्भ्यो जगत्पूज्यो जगद्भर्ता जगद्गुरु । जगच्चक्षुर्जग-त्त्राता भास्करो मेऽस्तु सौख्यदः ॥ इति श्रीमन्खरतरगच्छे शयुगप्रधानश्रीजिनदत्त-सूरिसंतानीयश्रीशिवनिधाननमोपाध्यायशिष्यवाचनाचार्यमहिमासिहगणिविरचिता श्रीमेघदूतकाव्यटीका मुखबोत्रिका नाम्नीति श्रेयः । इति श्रीमेघदूतकाव्यटीका संपूर्णसमाप्ता ॥ सवत् १६२७ वैशाखचतुर्थ्यां बुद्धवासरायां मया बह्ममिदरकेन (?) इह श्रीमहमेघदूतकाव्यटीकापुस्तके मध्याह्नसमये निर्विघ्न परिपूर्णं कृतं ॥

commentary or in the margin written in Sâradâ characters, the prevalent system of writing MSS. in Kâshmîra and Panjab provinces.

On the 22nd leaf of this commentary the scribe after having written 13 lines in Devanâgarî characters at once begins to write the further 10 lines in S'âradâ characters. From the above mentioned remarks I am led to think that the author of this commentary, whether a follower of Buddhism or of Jainism I am unable to say, was probably a native of Kâshmîra. Like Sâroddhârîni this commentary is also very learned and copious. It abounds in quotations from Alankâra, Vyâkarana and other S'âstras and from various other sources. The quotations from lexicons are also copious and mostly drawn from the Abhidhânachintamani. The peculiar feature of this commentary is that the quotations are copiously drawn from the S'atakas of Bhartṛihari, the favourite author of the Jainas as well as the Buddhas. The commentator's name is Mahimasimhagani and the commentary is called Sukhabodhikâ. It seems that Mahimasimhagani was one of the worshippers of the sun. *

The writing of this MS. is not good, but the paper is thick and very carefully preserved. This MS. may be said to represent the Kâshmîra text.

K2. From the Library of the Deccan College, Poona No. 84. XVIII. Collection A of 1883-84. Paper, 8×4 inches. Folia, 49. The average number of lines on each page is 10. Character, Devanâgarî, after the S'âradâ form of writing. Date, 1857 of the Samvat year† corresponding to 1801 A. D. This MS. of the

* The colophon at the beginning —

ॐ नमः परमात्मने पुरुषाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः । ॐ नत्वा श्रीभास्कर-
देव सर्वदेवसिरोमणि । उद्योतीरूपं मंगलार्थं प्रत्यक्ष परमेश्वरं ॥ १ ॥ सत्ज्ञान-
ज्ञाननिरतां जगतः सवित्री । पद्मप्रभां विक्रमपद्मनिभाननां तां । पद्मासनां सुर-
तशर्चितपादपद्मां । वाग्देवतां गुरुपदां च सदा नमामि ॥ २ ॥ श्रीशिवनिधानपावक-
चरणयुगं सिद्धिदं प्रणम्याहौ । श्रीमेघदूतकाव्ये दीक्षां वक्ष्ये सुखावबोधार्थं ॥ ३ ॥

† The colophon at the end.—इति श्रीमेघदूतविवृतिः श्रीवल्लभदेवकृता
समाप्तिमगाद्यु ॥ सप्तमः १८५७

poem was bought for the Bombay Government by Dr. P. Peterson probably somewhere in Kāshmirā. This is corroborated by two other codices of the same. The name of the commentator is Vallabha as may be seen from the colophon at the end of it cited here. He was one of the followers of the Kāshmirā S'āivism.

This school of philosophy is altogether different from either the नकुलीशपाशुपतदर्शन (or according to some the Kāpālas and the Kālāmukhas also include the above sects) or the Saivādars'ana as epitomised by Mādhavāchārya in his सर्वदर्शनसंग्रह.*

The literature of Kāshmirā Māhes'varas has two branches, one of which is called स्पन्दशास्त्र and the other प्रत्यभिज्ञाशास्त्र. The principal work belonging to the former is that called शिवसूत्राणि which according to Bhāskara, the author of the Vārtikas manifested themselves to Vasugupta under the guidance of a Siddha.† The founder of the प्रत्यभिज्ञाशास्त्र, the other branch of Kāshmirā S'āiva philosophy, was Somānanda, the author of a work called शिववृद्धिः but the writer of the principal work of the system, the so-called Sūtras which are verses, was his pupil Utpala, the son of Udayākara §

The commentary is called Panchikā ‡ The same name he gives

* सर्वदर्शनसंग्रह. Bibli Ind. Series p 74 and 80.

† श्रीमन्महादेवगिरौ वसुगुप्तगुरोः पुरा ।

सिद्धादेशात्प्रादुरासञ्जिवसूत्राणि तस्य हि ॥

सरहस्यान्यत सोऽपि प्रादाद्गहाय सूरये ।

श्रीकल्पादाय सोऽप्येव चतुष्पण्डानि तान्वय ।

व्याकरोत्त्रिकमेतन्मय स्पन्दसूत्रे स्वकैस्ततः ॥—

From No 171 of this collection

§ Dr Bhandarkar's Report on Sanskrit MSS 1883-84 p 76-78

‡ The colophon at the beginning is as follows—ॐ नमो शि-
वाय । ॐ यस्य भृगावलिः कैंडे दानाम्भोराजिराजिते । भाति रुद्राक्षमालिव स नः
पायाङ्गाधिप ॥ १ ॥ कालिदासवचः कुत्र व्याख्यातारो वयं क च । तदिह मन्ददी-
पेन राजवंशप्रकाशनम् ॥ २ ॥ तथापि क्रियतेऽस्माभिर्मैधवूतस्य पञ्चिका । उन्नता-
श्रयमहात्म्यस्वरूपख्यातिलालैः ॥ ३ ॥ अथ यदेतद्भूम्यान् व्याचष्टे किमेतदुच्यते
मन्त्रदूतश्रवणाद्यभावान्महाकाव्यमपि खण्डकाव्यवन्न भवति । तथाख्यायिकाव्यपदे-
शस्तु दूरापेतएवात्र प्रावृडाश्रयः प्रवासविप्रलब्धः कवेर्वर्णयितुमिष्टोऽत्र स च नाय-
कमनाश्रित्य वर्णमानस्तथारसवत्तां न धारयति । न च शृंगारविधानं । गुह्योऽत्र
नायकतयाश्रितस्तस्य च विरहोन्मत्तत्वाद्भूत्ये मेघे प्रेरणमपि नाद्युक्तमिति केलिका-
व्यमप्येस्सर्वं स्वस्यम् ॥

to his commentaries on the Raghuvamśa and the Kumāras'ambhava.

This is neither so accurate nor so full as that of Mallinātha or Sa'roddhārīnī or Mahimāsīmhagānī. Vallabha was the son of Anantadeva * He is not profuse in his quotations, a few verses from the Smritis, the Nitis and similar works bearing on his text are all that he quotes, and that too in most cases anonymously. He rarely gives grammatical notes and does not enter into critical disquisition on the merits of the explanations of other commentators, whom he neither quotes nor refers to. But his scholarly penetration into the merits or demerits of the Kāvya, he explains, is certainly unsurpassed † He has not given the date of the composition of his commentary. Nor have I the means of ascertaining it with the accuracy of Antiquary. Along with this I have collated two other MSS. of Vallabha on the poem from the Library of the Deccan College, Poona. Both these are written in Ś'aradā characters of Kāshmirā and are grouped under K2 No. 82. XVII. Collection of 1883-84. has besides the commentary of the Cloud-Messenger, a commentary on the first eight cantos of Kāldāsa's Kumārasambhava by the same author. It has 23 leaves. The average number of lines on each page is 34. Date, none, about two hundred years old. The paper appears very old and considerably damaged and worm-eaten. It is bought for the Bombay Government by Dr. Bhāndarakar. Another also belongs to the same Library. It bears the No. 164. VIII. Collection of 1875-76. Paper, 7×6 inches. Folia, 24 The average number of lines on each page is 21. It is incomplete. Character, Ś'aradā. Date, none, about 150 years old. It is bought for the Bombay Government by Dr. Buller in Kāshmirā. § These three

* आनन्ददेवायनिबद्धमदेवविरचितायां रघुपञ्चिकायां सर्गः
is his usual colophon at the end of each canto of Raghu as well as Kumāra Deccan College MS, No XVII. of 1883-84.

† See our notes on the 26th verse, पूर्वमेव.

§ See the Catalogue of MSS. of 1888 D. C p 81. also the preface of the same.

codices which form the group of K2. may fairly be said to represent the Kāshmirā text. The paper of this MS. is also very old and partially damaged and eaten by the white ants

R. From the Library of the Deccan College, Poona No. 315. XVI Collection A of 1882-83 Paper, 8×3 inches. Folia, 36. The average number of lines on each page is 15. Character, Devanāgarī, after the Jaina form of writing. Date, 1604 of the Samvat year corresponding to 1548 A. D * The Jainas write all the Mātrās or signs of the medial and final *e* and *o*, behind the consonants followed by those vowels It is bought for the Bombay Government by Dr. P. Peterson somewhere in Rājaputana This MS is a commentary on the poem. It is called Sugamānvayā Vṛitti The author's name is Pandit Sumativijaya. † He finished, it appears, the composition of his commentary on the Cloud-Messenger on Tuesday the 5th of the black fortnight of Ashādhā, the month being चान्द्रमास, in the Samvat year of 1604 (A. D. 1548., Dr. Peterson has assigned the date of 1804 to this MS., but the words of the MS. run thus – सवद्वेगभ्रानुष्टुप्, here the word अनुष्टुप्, I think, means sixteen and not eighteen as the professor supposes and hence the year meant by the above-mentioned words § is 1604 and not 1804). And five years afterwards he composed his

* The colophon at the end – प्रशस्ति । राजरजनदक्षाश्च पाठका मुनिमण्डले । जीयासुर्द्धाविना शश्वच्छ्रीमद्विनयमेव ॥ १ ॥ सुमतिविजयेनेय विहिता सुगमान्वया । वृत्तिश्च्छात्रसुबोवार्य तेषां शिष्येण धीमता ॥ २ ॥ विकमाल्वे पुरे (may it mean the modern city of Bikaner) रम्येऽभीष्टदेवप्रसादनः मेघदूताभिधानस्य पूर्णा काव्यस्य सौख्यदा ॥ ३ ॥ इति श्रीमेघदूतटीका संपूर्णा ॥ सवद्वेगभ्रानुष्टुप् (१६०४) सोममासे आशढे कृष्णपक्षे पचम्या अगारकवारि द्विजमूलचन्द्रेण लिपिकृता इय पुस्तिका स्वपठनहेतवे ॥ न तु कदाचिदपि परार्थे ॥ कल्याणमदभ्र भूयल्लिखकवाचकपाठकयोरजस ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ सुमतिविजयेनेयं मेघदूतावचूरिका । क्रियते सारसग्रह । भासयन्तं जगज्जासा नत्वा भास्वतमव्ययं ॥ क्रियते काशिनायेन शीघ्र This appears like a verse and the words क्रियते सारसग्रह. are either superfluous or abrupt, some words again are omitted at the end of the couplet

† The colophon at the beginning runs thus – श्रीगणेशायनम ॥ शारदां च गुरुं नत्वा । मेघदूतावचूरिका ॥ सुमतिविजयेनेय । क्रियते सुगमान्वया ॥ ३ ॥

§ The Catalogue of the D. C MS 1838 p 331

commentary called *सुगमार्थप्रबोधिका* on Kālidāsa's *Raghuvams'a* : *e.* in the Samvat year of 1609 corresponding to the year 1553 A. D.

Rāva Bāhādur S. P. Pandit assigns the date to the composition of Sumativijaya's *सुगमार्थप्रबोधिका* on *Raghuvams'a* between A. D. 1635 and 1643 * But on what ground it is impossible to understand? Again Mr Pandit is not sure about the letters which precede the word *अहे* in the manuscript The words are *निर्विध्महे रसशशिसवत्सरे* Here the couplet or the compound word *निर्विध्महे* means, nine following a dot, and the words *रसशशिसवत्सरे* mean, six and one. Thus the whole couplet when taken together means one, six, dot and nine : *e.* 1609 of the Samvat year The word preceding *अहे* must certainly mean a dot and no other figure of unit that is meant to be indicated by it The word *अह* when used independently by itself does not, according to the method of astrological term, mean ninety as Rāva Bāhādur Pandit thinks, but it simply means nine The figure ninety is generally expressed by *अहात्र* or *महाकाश* or some such expression This commentary is nearly in the same style as the *पट्टिका* of Vallabha, containing few if any quotations, and avoiding discussions of any sort It gives, however, the name of the *Alamkāra* at the end of the commentary of every verse. Sumativijaya in the beginning of his commentary says.—“*शुद्धकोऽत्र नायकत्वेनाश्रित । तस्य विरहोन्मत्तत्वाद्दूतत्वेन मेघप्रेरण नायुक्तमिति कश्चिद्*” Sumativijaya does not name the author referred to by the pronoun *कश्चिद्* But it is quite probable that Sumativijaya had before him the commentary of Vallabha while writing his own. The above is a paraphrase of Vallabha's words. They are,—“*शुद्धोऽत्र नायकतयाश्रितस्तस्य च विरहोन्मत्तत्वाद्दूतत्वे मेघप्रेरणमपि नायुक्तमिति &c.*” From this, it appears, that Vallabha must have lived before Sumativijaya, and Sumativijaya completed his commentary in the year 1548 A. D, so the time in which Vallabha may have lived would probably come to about

* S. P. Pandit's edition of *Raghuvams'a*, Part III, preface p 11-12

A. D. 1500 And this manuscript may therefore represent the Rājaputanā text.

N. From the Library of the Deccan College, Poona No. 160. XV. Collection of 1882-83. Paper, 8×3 inches Folia, 17. The average number of lines on each page is 18. Character, Devanāgarī after the Jaina form of writing. Date, none, about a hundred and fifty years old. It contains the text in the middle of the paper and above and below it is written the commentary entitled the Meghalatā * The commentator's name is not given. He appears to be a Jaina expositor of the text. This gloss was copied at शेषपुर i. e. Nagpoor. The word शेषपुर may either mean नागपुर or नागपट्टण i. e. Nāgāpattam of the Madras Presidency. If the word proved to be the city of Nagapore, the MS. may fairly be said to represent the text of the Central provinces, if not it may then represent the text of the Godavari Districts. This कथवृत्तिनी commentary is a mere gloss. It therefore does not deserve any further notice.

The following MSS. which come under the head of "Miscellaneous", and which are, therefore, designated by a common letter M., in the footnotes of the text, are such as cannot be said to represent definitely any particular part of India.

M1. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 25. V. Collection of 1872-73 Paper, 8×3 inches Folia, 22. The average number of lines on each page is 16. Character, Devanāgarī, after the Jaina form of writing Date, none, about a hundred and fifty years old. This Jaina MS. of the poem contains the text and an Avachuri or gloss probably by a Jaina Pandita whose name is not given. The text is written with bold letters in the middle of the paper and the Avachuri on the four

* The colophon at the end— इति श्रीमेघदूतानिदान महाकाव्य संपूर्ण इति । शेषपुर लिखितमस्ति । श्रीशान्तिनाथरसा । This is at the end of the text And the following is at the end of the commentary
इति श्रीकालिदासकृता मेघदूतकाव्यस्य वृत्तिमेघदूतानाम्नी समाप्तेयम् ॥ छ ॥

sides of the margin. The source of this कथभूतिनी Avachuri is unknown to us. It appears, however, that it must have probably come either from Gujarâtha or Rajaputana.

M2. From the Library of the Deccan College, Poona. No 64. IV. Collection of 1871-72. Paper, 8×3 inches. Folia, 13. The average number of lines on each page is 20. Character, Devanâgarî, after the Jaina form of writing. Date, none, about a hundred and fifty years old. This MS. is also a gloss on the text. It is not very important and so does not deserve any further notice. The country from which this MS is bought appears to be Rajaputana. At the end of it are written the following words— “इति मेघदूतकाव्यावच्छरि ॥ पणसार देवजी ॥ ॥”

M3. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 141. XVI. Collection A. of 1882-83. Paper, 5×3 inches. Folia, 26. The average number of lines on each page is 9. Character, Devanâgarî, after the Jaina form of writing. Date, 1612 of the Samvat year corresponding to 1556 A. D. * This MS. contains only the text of the poem. The paper of this is very old and considerably damaged. This too appears to have come from Rajaputânâ.

M4. From the Library of the Deccan College, Poona. No. 142. XVI. Collection A. of 1882-83. Paper, 8×3 inches. Folia, 19. The average number of lines on each page is 20. Character, Devanâgarî, after the Jaina form of writing. Date, none, about 75 years old. This Jaina MS. accompanies with an Avachuri written on the four sides of the margin and in the middle the text. It is not an important commentary and does not deserve to be noticed.

This too owes its source to Gujarâtha. The following name is written on the first page of it—साकरणजेउराजीजी. ॥

M5. From the Library of the Deccan College, Poona. No.

* The colophon at the end — इति श्रीकालिदासविरचित मेघदूताभिधान महाकाव्य समाप्त ॥ सवत् १६१२ वर्षे शके १४७८ प्रवर्तमाने अद्येह श्रीस्तंभतीर्थदास्तन्यनेदपाटजातीयदी०श्री श्रीनाथसुतहरिजी पठनार्थ ॥ शुभ भवतु ॥ कल्याण भूयात् ॥

158. XV. Collection of 1882-83. Paper, 7×3 inches Folia, 21 The average number of lines on each page is 7. Character, Devanāgarī, after the Jaina form of writing. Date, 1626 of the Samvat year corresponding to 1570 A. D. * The MS. is an incomplete commentary on the text.

This commentary is superior in every respect either to that of Vallabha or Sumativijaya; but unfortunately the fragment before us contains the commentary on the first 33 verses only. The paper of this is very old and almost damaged about the margin. It represents the text of the Gujarātha provinces.

M6. From the Library of the late lamented Bābā Saheb Phadanavisa of the Morobā Dādā family. Paper, 7½×3½ inches. Folia, 40. The average number of lines on each page is 15. Character Devanāgarī, after the Jaina form of writing. Date, none, about two hundred years old. This codex is a commentary on the poem This commentary is called Subodhikā † The author's name is Megharāja. § It has some quotations from Nitis and Subhāshitas. Sometimes this commentator gives some different readings and explains them. It is a mere gloss and does not therefore deserve any further notice. This expositor appears to have been a Jaina Srāvaka (ब्रमणक) of the Mārvāda countries. The codex may

* The colophon at the end runs thus.—इति श्रीकालिदासविरचितं महाकाव्यं समाप्त ॥ अंकलस्व [श्रव] रमध्ये जोशिरवाशकरेण लिखित ॥ सवत् १६२६ वर्षे भास्विनमासि सपूर्ण ॥

† The colophon at the beginning runs thus —नत्वाह परमात्मानमार्यामलमयान्वित । मेघदूतस्य काव्यस्य कुर्वे टीकां सुबोधिकां ॥ १ ॥ अस्य ग्रन्थस्य कर्ता कविकालिदासः कालिकालम्भवः शालकेन पृष्टः सन् । अस्ति कश्चिद्वाग्विशेषः अस्योपरि ग्रन्थचतुष्टयमकार्षीत् । अस्तीत्यनेन कुमारस्य कार्तिकेयस्य सभवो जन्म तत्सूचक कुमारसम्भवाख्य काव्यं कृतवान् । कश्चादेत्यनेन च मेघदूताभिध । मेघ एव दूतत्वेन संदेशहारिस्वात्प्रतिपादितस्तस्य सबन्धप्रतिपादक मेघदूताभिध काव्यं । वागिति रघुवंशसूचकं । रघुवंशाह च काव्य । विशेषेत्यनेन बद्धकृतवर्णनशास्त्रमिति । तत्रैव मेघदूताभिध काव्य कविकालिदासो रचयामास ॥

§ The colophon at the end is as follows —मेघदूतस्य काव्यस्य मेघराजेन साधुना । टीकान्तर समालोक्य कृतेयं सुखबोधिका ॥ १ ॥ विशोधनीया धीधनैः ॥ शनस्तु ॥ श्री. ॥ ग्रन्थासं श्लोक ॥

therefore be said to represent the text of Mālavāda territories.

M7. From the Library of the late lamented Balā Saleh Phadanavisa of the Morobā Dādā family. Paper, 10×4 inches. Folia, 30. Character, Devanāgarī Date, none, about a hundred and fifty years old. This codex is only a fragment containing the पूर्वमेघ and some eleven verses of the उत्तरमेघ The right hand margin of it is considerably damaged and some letters on that side have also been effaced. It contains the text and the Sanjivini of Mallinātha The text of Mallinātha in this codex is almost correct and faithfully copied out. This codex may be said to represent the text of Mahārāshtra.

M8. From the Library of Mr Sridhar S'āstrī Lmaye of Poona. Paper, 9×3 inches Folia, 59. Character, Devanāgarī Date, 1733 of the S'aka year corresponding to 1815 A. D. * This codex contains the text and the commentary of Mallinātha. It is mostly correct and exactly corresponds to the text as well as to the commentary of Mallinātha as given in Mr Krishna S'āstrī Bhatavadekar's edition. The peculiar advantage of this edition as well as, of the codices of Mallinātha's commentary of the text in this part of India, is that they are mostly free from interpolations and other kinds of fair glosses at the hands of some Pandits and scholars of northern and north-western parts of India By the bye some editions of the Sanskrit poems of the Nirṇaya Sagara series are, I presume to think, mere reprints of the Bengal editions and are not prepared with a view to supply the public with editions that are actually based on a sound criticism and patient collation.

* The colophon at the end of this runs thus—

इयं ग्रन्थः ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ श्रीगोपालकृष्णाय नमः ॥ श्रीकाशी-
विश्वेश्वराय नमः ॥ शके १७३३ ॥ जापतिनामसवस्सरे कार्तिकशुद्धचतुर्थासोम-
वासरे तद्विसे समाम् ॥ विपल्लवरे इत्युपनामकनागयणात्मजर्धनाथेन लिखितं
स्वार्थं परोपकारार्थं च ॥ यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया । यदि शुद्धम-
शुद्धं वा मम वो न विद्यते ॥ १ ॥ वक्रपृष्ठिकटिभीषाबद्धमुष्टिधोमुखं । कटेन
लिखितं ग्रन्थं यत्नेन परिपालय ॥ २ ॥ क्रूरकृतमपराधं क्षन्तुमर्हन्ति सन्तः ॥ शुभ
भवतु ॥ ॐ हृष्टदोषाच्छुभाविभ्रमाद्वा । यदर्थहीनं लिखितं मयात्र ॥ तन्मार्जयित्वा
परिशोधनीयं । क्लोपं न कुर्यात्खलु लेखनस्य ॥ ३ ॥ श्रीराम् ॥

This codex may also be said to represent the text of Mahārāshtra.

M9. From the Library of the late Mahā Mahopādhyāya Rāma Dikshita Apte of Poona Paper, 9×4 inches. Folia, 57. Character Devanāgarī, after the Kāyastha form of writing. Date, none, about a hundred and fifty years old. It contains the text and the commentary of Mallinātha most beautifully written. It is a very correct and trustworthy production. It has some marginal corrections and notes from some other commentary. It was procured for me by my friend Mr. D. L. Dikshita of the Fergusson College. This too represents the text of Mahārāstra.

M10. From the Library of the late lamented Bābā Saheb Phadanavisa of the Moroba Dādā family. Paper 10×4 inches Folia, 77. The average number of lines on each page is 8. Character Devanāgarī. Date, none, about a hundred years old. This is a fragment containing only the पूर्वमेव and 23 verses of the उत्तरमेव with the commentary of Mallinātha. It is a very legible, pretty correct, and mostly faithful copy. This also may safely be said to represent the text of the Mahārāshtra countries.

M11. From the Library of the late lamented Bābā Saheb Phadanavisa of the Moroba Dādā family. Paper, 10×4 inches Folia, 79. The average number of lines on each page is 10. Character, Devanāgarī. Date, none, about seventy-five years old. This codex contains the text and the commentary of Mallinātha. The first verse of this codex does not contain the commentary of Mallinātha, but it appears that it belongs to some other expositor whose name is unknown. The commentary of Mallinātha is given from the second verse to the end of the Kāvya. It is quite legible but incorrect. It also represents the text of Mahārāshtra.

M12. Under this group come four codices two of which include the commentary of Mallinātha and the other two only the text of the poet. They are all written in the Uriya characters. I was not able to see these MSS. myself, but my very obliging friend, Mr. Vamana Dāji Oka, the Headmaster of Sambalpore High School, Central Provinces, was so kind as to undertake the arduous work

of collating these MSS. for me, and it was thus that I obtained the various readings which are mentioned in the footnotes. Along with the readings he sent me a copy of Isvarachandra's edition of the poem and a written note, which runs thus —“The four MSS. which I collated for the purpose of your edition of the Meghadûta and designated by the letters A., B., C., D., are all written in the Uriya characters, according to a prevailing custom in these parts, on palmyra leaves. They appear to be about a hundred years old, possibly older, though none of these gives the date of its genesis. They were procured for me by my pupils from their relations to whom my thanks are due. They are, generally speaking, written clearly and legibly but, by no means, accurately. A. and C. contain the text only, while B. and D. include both the text and the commentary of Mallinâtha. About 30 stanzas in each of these manuscripts have no commentary. On a comparison of a number of passages, the commentary in the Bombay edition appears to agree very nearly with that of B. and D. As I found no alterations or additions of any moment, no variants are given. A complete list of various readings made after a very careful collation of these manuscripts is herewith sent.” These codices, may, therefore, be said to represent the text of the Central provinces of India.

M13. Under this group come seven MSS. two of which include the commentary of Mallinâtha as collated here, and the other five the commentaries of Bharata, Sanâtana, Râmanâtha, Haragovinda and Kalyânamalla. They are all written in Bengal Characters. The book which contains these commentaries was, it appears originally copied out for H. T. Colebrooke (No. 2019). This was brought for me from the India Office Library of England by my late lamented friend Mr. Anandoram Boorooah, the Officiating District Magistrate and Collector, Noakhally, Assam, through Dr. R. Rost. And he kindly sent it to me here through Dr. R.G. Bhandarkar. In this book the commentary of Mallinâtha is exactly the same as that of the printed books and the MSS. of Bengal. Of these five

expositors and of all other commentators except Mallinātha I took only such of the extracts as contained additional matter and also such interpretations of the original as materially differed from those of Mallinātha. As these commentaries are professedly so modern, they do not deserve any further notice. They all represent the text of Bengal. As I was already tired of the arduous task of collating so many manuscripts I did not think it necessary to collate these five expositors along with the others. I simply took down, the readings and the extracts of these and then handed the book over to Dr. R. G. Bhandarkar.

Besides the overwhelming number of codices and six other MSS. containing the commentary of Mallinātha (*i. e.* M7, M8, M9., M10, M11., and M13.) which have been regularly collated in preparing the present edition of the Meghadūta, I have also invariably made use of two other codices containing the text and the commentary of Mallinātha of my own collection. These two codices were very useful to me in ascertaining a doubtful reading either in the text of the poet or in the commentary of Mallinātha, and occasionally in expunging an obvious interpolation from the latter, whenever such a course was clearly sanctioned by several of the manuscripts that were left at my disposal.

In making out the commentary given in the present edition I have considered M7., M8., M9., M10., M11., and M13. and Mr. Bhātavadekar's edition as my principal guides. Preference has generally been given to M7., M8., M9, and Bhātavadekar's edition over M10., M11, and M13., but the latter three have not been less useful in their turn among other things in checking the occasional interpolations of M7., M8., and M9, in the form of grammatical notes and lexicographical quotations. Indeed one of the chief benefits that I think I have derived from the comparatively so large a number of codices used by me in the collation for the present edition, is that I was enabled in some places to free the commentary of Mallinātha from the various interpolations with which it is overgrown, and whose character as interpolations was

proved beyond doubt by the fact of their being entirely omitted by the majority of the best MSS. at my disposal. Specimens of such spurious comments as I have expunged from the commentary of Mallinātha will be found in the body of Mallinātha's text

With regard to the text, I have always given the reading which Mallinātha commented upon. Whenever the reading of the codices varied from that of Mallinātha's commentary, the former has been given in the various readings in the foot-notes. Most of these *variae lectiones* will derive additional interest from the fact that they are confirmed by so many other commentators on the poem.

PREFACE.

II.

Although the Meghadūta is the best and the unrivalled of Kālidāsa's poetical productions, nay the most favourite of the books read all over India * by those who have in their mind's eye the appreciation for the studies of Sanskrit outside Government schools and colleges, and although codices of it abound in every part of the country, and printed or lithographed transcripts of the work are not few, no critical edition of the entire poem has to my knowledge yet been published, at least in India, founded upon manuscripts carefully collated. Many editions of the poem have been published and given to the public by some learned Pandits and scholars of Calcutta and other parts of the country, but it would not be far from the truth to speak of those editions

* Besides the two editions of European scholars of this episode which we have collated along with the others, there are, as Dr Bhāu Dajī tells us, two other editions of this poem, one of which is published by Prof Johnson in England, and the other by Prof Max Muller at Königsberg. It shows then that this episode is not only read in India, but also in some parts of the European countries. Mons Fuache thinks there is nothing so perfect in the elegiac literature of Europe as the "Meghadūta" of Kālidāsa. See Dr Bhāu Dajī's essay on Kālidāsa, Jour. B. B. R. A. S. Vol. VIII, also The Literary Remains of Dr Bhāu Dajī p. 3. and 7.

that the only object of their editors seems to have been rather to give the most readable and the least difficult version of the poem and the commentary of Mallinātha than to attempt to find out by scrupulously sticking to the rules of sound criticism and to the patient collation of codices of the poet himself or his scholar Mallinātha * The poem of Meghadūta is often one of the Sanskrit text-books appointed for the P. E. and F. A. Examinations. And hence a critical edition of it has long been a desideratum. That the Meghadūta has always been read very generally throughout the country by students and Pandits of Sanskrit is amply testified by the large number of commentaries or glosses on it that are still extant. No less than twenty † have been explored and brought to light by the unceasing efforts of Government and many more may yet be found in course of time. I

* I had at first thought of giving a number of instances showing clearly wherein the Calcutta and other editions were not to be considered trustworthy, but the fact will be plain to any one who troubles himself to compare them with the present attempt at a correct edition and dispenses with the necessity of showing the defects of the Calcutta publications and their subsequent reprints at Bombay, which owing to their cheapness and superficial get-up must be allowed to do considerable service to the spread of Sanskrit studies, the only object I think that their editors had in view. Compare for example the commentary of the verses — I 1, I 2, I 4, I 6, I 9, I 14, I 16, I 21, I 22, I 24, I 25, I 26, I 28, I 30, I 32, I 36, I 37, I 38, I 40, I 41, I 42, I 43, I 44, I 45, I 46, I 47, I 48, I 49, I 51, I 53, I 54, I 55, I 58, I 59, I 60, I 61, I 65, I 67. II 1, II 2, II 4, II 6, II 7, II 8, II 9, II 10, II 13, II 14, II 15, II 16, II 17, II 20, II 21, II 23, II 25, II 26, II 27, II 28, II 30, II 31, II 32, II 34, II 35, II 36, II 37, II 38, II 39, II 40, II 41, II 42, II 43, II 44, II 45, II 48, II 49, II 51, II 53, and II 54. In fact in every verse there is some addition, omission or correction.

† 1 Mallinātha, 2 Vallabha, 3 Mahimāsīnhaḡaṃ, 4 Sumatīvijaya, 5 Lakṣmīnivāsa, 6 Megharāja, 7 Bhārata, 8 Saṇātana, 9 Rāmanātha, 10 Haragovinda, 11 Kalyāṇamalla, 12 Śāroddhāraṃ, 13 Meghalatā, and four other Avacharies—all these consulted by myself, 18 Dakṣiṇāvatā and 19 Nātha, referred to by Mallinātha, Śāroddhāraṃ, and other expositors. 20. Sarasvatītīrtha

have myself made use of seventeen of them, five of which were sent to me from the India Office Library, and all the rest (except two) belong to the Government of Bombay for whom they have been partly bought by Dr Buhler, Dr. Keilhorn, Dr Peterson and partly by our distinguished Orientalist Dr. R. G. Bhandarkar.

Most of these commentaries or *Arachuries* would appear to have been composed not with the object of supplying a want but with a view to follow the time-honoured custom of writing a commentary on Kālidāsa as a service to the poet and a duty of the writer. For a few of them hardly differ from each other in their explanations or in the number of quotations they give from the glossaries and other works of reference.

All these commentators or expositors so to speak are inferior in every respect to Mallinātha. Dr. Bhandarkar places Mallinātha in the end of the thirteenth and the beginning of the fourteenth century and this is the accepted date of the scholiast.*

Mallinātha is the most popular and well known commentator on this poem. He has named his commentary *Sanjurni* 're-inspiring with life' since, as he says, he composed it for the purpose of "re-inspiring with life the speech of Kālidāsa that was fainting under the trance produced by the poison of bad commentaries." This statement shows that he knew almost all the commentators that preceded his own. He actually names two older commentators, Dakṣhināvarta and Nātha, and refers to some by the pronoun *केचित्* or *अन्ये*. What particular commentators he refers to is not clear but it is not improbable that he had before him while writing his own some of the Jaina writers mentioned under the Roman figure *one* of this preface. His commentary is surely one of the best being very moderate and at the same time very learned. The scholia of Mallinātha appears in most instances very scrupulous as to preserving, as far as he could see and appreciate, the oldest and therefore most probably the original readings of the poet himself.

* See Dr. Bhandarkar's edition of *Mālatīmādhava*, preface page XII, also our second edition of *Raghuvamsa*, p. 6.

It is a running commentary in which each word of the text is first repeated and then very accurately explained. As a rule, Vallabha, Mahimāsībhagaṇī, and others have attempted to give satisfactory explanations and held short discussions in some places upon the dubious points pertaining to different questions of the text. But the commentary of Mallinātha excels by far all the others both in point of scholarship and judgment. And excepting him none of the so many commentators notice the genuine merit of the author as a poet, namely his masterly command over the language, the fertility of his imagination, the harmonious flow of his expressions, his excellence in tenderness and delicacy, his highly poetic description, his admirable versatility, the vastness and profundity of his learning, his manner of interweaving in poetry impressive universal truth couched in the happiest expressions which are peculiarly his own and above all that poetic charm which exercises an almost magic influence upon the reader's mind, all which have combined to raise Kālidāsa to the highest pinnacle of glory. Mallinātha's commentary abounds in quotations from lexicons, from Śrūtis, and Smṛitis, from Jyotiṣh and Tantra, from Pālakāpya on the art of training elephants and from शालिहोत्र, from various schools of grammar and rhetoric, from Vātsyāyana's Kāmasūtra, from Apastamba, Aśvalāyana, Kāmandaka, Bharata and Kṣhemendra, from dramatic works and Kāvyaś, from Rāmāyana and Mahābhārata, from numerous Purāṇas, Āgamas and Akhyāyikas. In fact his commentary is replete with a great deal of information and innumerable quotations. The style is easy and the expressions are peculiarly his own. The text that Mallinātha had before him or considered as genuine is given in the present edition. That interwoven in Pārs'vābhyudaya by Jināsena seems really to constitute a different redaction. My friend Mr. K. B. Pathaka who, I believe, is about to publish the text of the Meghadūta as given in Pārs'vābhyudaya by Jināsensūri, thinks that that text is the only one which has some historical value, for it was the current text of Kālidāsa's Cloud-messenger at the beginning of the ninth century

in the provinces of Karnatic, and hence the most genuine text of the immortal poet. The text commented upon by Vallabha, Sâroddhârini, Mahimasinhagani and others seems very little to differ, if at all, from the present one except that they do not, like Mallinâtha, discard the spurious verses and readings, almost all of which they notice as such, though in a manner far from disapproving. * The differences between our text on the one hand and that of the remaining several expositors on the other are somewhat considerable, though I do not find them to be so numerous as really to constitute a different redaction. They are, moreover, generally confined sometimes to single words or sometimes to groups of such words. A careful examination of the several commentaries has convinced me that a few only of the various readings have probably arisen from the ignorance of the scribes but they are mostly due to the unscrupulousness and the ignorance of the expositors and their desire to make the poet conform to their own ideas of what is good or bad, correct or incorrect, wise or unwise or decent or indecent, regardless of the historical worth of preserving the author's words or his expressions. In several passages I have actually found some commentators stating what is the reading of the poet and yet proposing to read † differently. Perhaps Mallinâtha is the only commentator on the poems of Kâ-

* See Sâroddhârini's commentary on the 11th stanza, उत्तरमेघ—
“पत्रच्छेदे इति पाठान्तरे नागवल्लीदलशकले &c.” Many instances of such comments may be added from several commentaries at our disposal.

† Thus Sâroddhârini on the 11th verse, उत्तरमेघ, “मुक्तालमस्तनपरिमलच्छिन्नसूत्रैश्च हरैः” इति मुख्य पाठः। “मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हरैः” इति पाठान्तरं। But the reading which Sâro has proposed for its text is as follows —“मुक्ताजालस्तनपरिमलैच्छिन्नसूत्रैश्च हरैः” &c. And also the same on 40th verse, उत्तरमेघ, “पूर्वाशास्यम्”—इति मूलपाठः २ e Kâlîdâsa's original reading. And the reading it has proposed for its text is —“यत् कारणाद् प्राणिनां स्पृहणीयेष्वपि पदार्थेषु एतदेव कुशलमेव “पूर्वाभाष्यम्” प्रथममाशंसनीयं प्रथमं कुशलमेव प्रष्टव्यमित्यर्थः. &c. Many more from Mahimasinhagani and others may be added to this.

līdāsa, that I have met with, having an ardent desire to find out and preserve as far as possible the readings of the poet himself, and studiously excluding the spurious substitutions of all single words and phrases, and the interpolations of whole stanzas with which the poem is seen overgrown in many codices, and it is no doubt owing to this his scrupulousness, that he is consulted most and that the other expositors are left in the shade and little known to the general public

In the present edition the various readings as found in so many commentaries and commentators are given in the footnotes. From these various readings the public will also judge that the text that Mallinātha has commented upon is generally the true text of the poet or at least most probably so. For even when the other expositors choose other readings, it is perhaps seldom that they do not notice those which we see form the subject of Mallinātha's commentary. At the end of the volume I have given copious notes illustrative of difficult points of the text as well as the commentary of Mallinātha. In these notes are embodied the extracts drawn from several commentaries and from various other sources. An attempt also is made in the notes to identify the geographical names of ancient countries, towns, rivers, mountains and important places as given by the poet in the पूर्वमेव. From my experience as a teacher of Sanskrit for a period extending over the last eighteen years first in my Sanskrit classes and afterwards fourteen years in the New English School, I have found that Mallinātha's commentary though a valuable assistance to young students requires, in some places explanations more clear and lucid in order that ordinary students may understand them. With this view I have attempted to give in the notes every possible information that the students may require for their examinations, and have added a literal English translation below the commentary of Mallinātha in each page. At the end of the notes are given two indices one of which contains the spurious stanzas with their readings and the other the

names of important places &c occurring in the पुराणेव. I must not forget to mention that the spurious verses as given in the Appendix A have all been commented upon by almost all these commentators except Mallinātha.

I have also endeavoured to give the literal meaning of the text without mixing up Oriental and Western ideas in order to make them agreeable to the taste of Englishmen. This mode of translation has been adopted by Mr. Pickford in his admirable translation of Bhavabhūti's Mahāvīracharita, and ably defended by him in his learned preface to that work. I fully concur with him in the opinion that it is ridiculously absurd to expect idiomatic English in a version of a Sanskrit poem. He says, "We often find a compound word in Sanskrit which cannot be rendered into English except by a long and intricate sentence with a dependent relative clause for each epithet and allusion. Moreover the frequent digressions and sudden transitions of Sanskrit compositions clearly mark them as alien from the thought and language of modern Europe. The canons which are with perfect fairness applied to modern versions of classical authors, are inadmissible with regard to translations from the Sanskrit." We must not therefore be surprised if such phrases as the "lotus-like face," "the moon-faced damsel," "limbs cool like a lump of snow," &c. excite the smiles of Englishmen unacquainted with Sanskrit. There are already some translations of the "Cloud-messenger" in English* in which the rendering is happy so far as English is concerned, but I venture to say that they do not, in many places, do justice to the beautiful pathos of the sentiments and expressions in which the poem, like all other poems of Kālidāsa, abounds. The results of the labours of European scholars

* G. A. Jacob's prose translation and H. H. Wilson's verse translation are generally known to the public, there may be some other versions in English but they are little known in this part of the country.

to reveal the beauties of oriental poetic and dramatic literature, are to a certain extent, marred by the fact that they try to adorn the Hindu beauty with a foreign garb worn exactly after a foreign fashion. While in my endeavour to decorate the Aryan beauty although necessity has compelled me to invest her with a foreign dress I have retained but little of the foreign fashion, thereby enabling the beholder to realize her genuine charms. In the translation of the Meghadûta, therefore, that I present to the learned public, I have attempted to preserve the sense of the Sanskrit expressions without sacrificing it to the beauty of English phraseology. How far I have succeeded in this attempt I leave it to public to decide. I have, however, tried to make the translations brief and expressive. In undertaking the English translation I have been convinced of the real difficulties that lie in the path of rendering the thoughts of an ancient and now defunct race of writers into the language of another race, so unlike in their traditions, usages, custom and modes of daily life. The reason is to be found in the difference of national habits and associations. I have tried my best, with the aid of dictionaries, to make the English rendering a good one, but owing to the poverty of my knowledge of English have not entirely succeeded. The critical reader will notice many defects and short-comings, which hope, he will judge indulgently.

Before concluding I must thank the owners of the several MSS, who kindly placed them at my disposal. Among these gentlemen were the late lamented Bâbâ Saheb Phadanavisa and Mahâ Mahopâdhyâya Râma Dikshita Apte by whose deaths their families have sustained a heavy loss. My thanks are also due to Mr. Sridhar Sâstri Limaye for allowing me the use of his MS.

My hearty thanks are also due to Mr. Vaman Daji Oka of Central provinces and Prof. S. B. Paranjape of the Râjâram

College, Kolhapur, both of whom kindly sent me the readings of some MSS. after having carefully collated them.

For the large number of MSS, which were placed at my disposal I am very highly indebted to Dr R G Bhandarkar whose kind advice, and occasional instructions and the general sympathetic help are highly valued and acknowledged every where by every worker in the field of Sanskrit literature. Owing to this supremely eminent scholar's efforts, most valuable MSS are being collected at the Deccan College library and it is to be hoped that the Indian Government will not, for several years to come, abandon the important work of buying up the Sanskrit manuscripts hidden away in private libraries and being therefore out of reach for outsiders, although our learned citizen Rava Saheb M C. Apte has established a valuable institution for the custody and preservation of MSS, still Government efforts are equally necessary for this important work, mere publication of lists being often useless. The old S'āstris who may be deemed living encyclopedias of ancient scholarship are fast disappearing from the scene, and their industry on this point is long at an end. It behoves us, therefore, to take the charge and to preserve and collect the repositories of our national lore from decay and obscurity.

Lastly I take an opportunity of expressing my sense of deep gratitude towards my friends Prof. D T Chandorkar of Fergusson College, and Mr K. G. Oka, Sanskrit teacher, New English School, for the material help they rendered when the book was in preparation. From these prefatory remarks it is now necessary to turn to the poet himself.

A SHORT DISSERTATION ON

Kālidāsa.

III.

Kālidāsa has been so to speak the darling of India for more than twelve hundred years. We obtain a documentary record* that even since so early as the seventh century A. D. his fame as an immortal poet has spread throughout the five divisions of India. His genius has been recognised and appreciated by poets and critics and admired by the literary public.†

* The Aihole inscription of Pulikēśi II., (634 A. D.) has an allusion to Kālidāsa — “येनाद्योजि नवेद्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेद्म । स विजयता रविकीर्ति कविताश्रितकालिदासभारविकीर्ति ” ॥ Ind Ant, Vol VIII, p 237. Another allusion is also found in Bana's introduction to his Harshacharita — “निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु । प्रीति-मधुरसार्द्रासु मज्जरीष्विव जायते” ॥ Dr P Peterson observes that “Bana's references to the younger poet, and to भास respectively, is that at the time he wrote the above verse Kālidāsa's plays had either not been written or were still far from occupying the prominent place in the nation's literature. Kālidāsa was therefore either a contemporary of (Bāna) or was his elder by little more than a generation.” Preface to Bana's कादम्बरी, p 81. The learned doctor afterwards changes his opinion as to the above remarks and says.— “I will say only in passing that I hope on some future occasion to show that what is true of Bhavabhūti is true of his great predecessor Kālidāsa. If that is so, a vista of antiquity opens up for our book. For it is certain now that Kālidāsa must be put earlier than has lately been very generally supposed. He stands near the beginning of our era, if indeed he does not overtop it, and date from the year one of Vikrama's era” Jour B B R. A S 1892, Vol XVIII, p 110.

† Another reference in chronological order to the great poet occurs in Kumārila's तन्त्रवार्तिक, Benares edition, p 133 “एवं च विद्वद्भ्यः नानिर्गता । प्रसिद्धरूप कविभिर्निरूपिता । “सतां हि सदेहपदेषु वस्तुषु । प्रमाण-मत करणप्रवृत्तयः” इति ॥” Thus Kumārila, the bitterest foe of Jainism and Buddhism flourished between 700 and 750 A. D., in other words he belongs to the first half of the eighth century. Jour B B R. A S Vol XVIII p 225, 231 and 238. Also Jināsena's Pārsavābhudaya Jour B. B R. A S Vol XVIII p 224 MS of the Kolhapur Jaina Matha. See also Malati-Madhava, Dr. Bhandarkar's edition A. II, p. 92 A. III, p 106.

Numerous editions of his works have been printed, voluminous commentaries have been written; various translations in the different dialects of the country have been made.* All these things bear ample testimony to the affectionate zeal and loving care with which his works have been and are being studied. From the snowy Himalaya in the north to Cape Comorin in the south there is not a single educated man who has not read at least a canto of his poems or an act of his dramas or some stanzas from this beautiful episode, the all in all of the poet.

But his fame is not confined to his birth-land only, it has travelled to distant lands and foreign climates. His genius like a load-stone attracts at once every one who comes in contact with it. It has thus attracted the scholars and distinguished orientalists of Europe and America. He is now known partly through originals, and partly through the medium of translations to the whole civilized world. Along the banks of the Rhine and along the banks of the Thames he is at this day read with as much enthusiasm and delight as he is read on the banks of the Ganges or on the banks of the Godavari. This "son of song" has passed through the fiery ordeal of foreign criticism and has elicited admiration from the critics of Europe. The lines of Goethe,† that celebrated poet, philosopher and

* Dr Bhau Daji's essay on Kālidāsa, *The Literary Remains*, p 2-5. Monier Williams's *अभिज्ञानशाकुन्तल*, 2nd edn p. 7.

† Thus translated by Mr E B Eastwick—"Wouldst thou the young years blossoms and the fruits of its decline,
And all by which the soul is charmed, enraptured, feasted, fed,
Wouldst thou the earth, and heaven itself in one sole name combine? I name thee, O Sakuntala! and all at once is said." Dr Bhau Daji's *Essay on Kālidāsa*, p 1. Monier Williams says—"No composition of Kālidāsa displays more richness of his poetical genius, the exuberance of his imagination, the warmth and play of his fancy, his profound knowledge of human heart, his delicate appreciation of its most refined and tender emotions, his familiarity with the workings and counter-workings of its conflicting feelings,—in short, more entitles him to rank as the Shakespeare of India." V K. Chiplunakar's *Essay on Kālidāsa* written in Marathi, p 14.

critic of Germany of whom it may be truly said that he was a man of all times and of all climes, are well known to everybody, Alexander Von-Humboldt has appreciated 'the richness of his creative * fancy.' Prof. Lassen has called him 'the brightest star in the firmament of Indian artificial † poetry.' Sir William Jones who first introduced him to the notice of the literary public of Europe has conferred upon him the title of 'the Indian Shakespeare' § M. Hippolyte Fauche has considered his Meghadūta to be without a rival in the whole elegiac literature of Europe ‡

About a poet of such world-wide repute, we are naturally led to ask the following questions,— When was he born and when did he die? Who were his parents? What was his dwelling place? Who were his friends and what were his surroundings? How did he live and how did he think? But in the case of our poet, all such queries are vain. Our curiosity in this matter is doomed to disappointment. The details about which we anxiously solicit information are lost for ever, and are beyond the hope of recovery. The life of Kālidāsa as of Shakespeare 'remains almost a blank and his very name a subject ¶ of contention'. About his private life absolutely no information that is trustworthy is available. The poet has observed a painful reticence regarding himself in his works. Throughout these, we fail to find even a passing allusion either to his own person or to any remarkable incident of his life. Nay he has not even affixed his name to his poetic productions. The evil

* "Kālidāsa the celebrated author of the 'Sakountala' is a masterly describer of the influence which Nature exercises upon the minds of lovers. Tenderness in the expression of feeling, and richness of creative fancy, have assigned to him his lofty place among the poets of all nations." *Alexander von Humboldt*. V K Chiplunakar's Essay on Kālidāsa, p 14. The Literary Remains of Dr Bhau Daji's Essay on Kālidās, p 1.

† Indische Alterthumskunde, II 49, 50, 398. Dr Bhau Daji's Essay on Kālidāsa, p 2.

§ Dr Bhau Daji's Essay on Kalidasa, p 5. V K Chiplunakar's Essay on Kālidāsa, p 14.

‡ Dr Bhau Daji's Essay on Kālidāsa, p. 7.

¶ Dr Bhau Daji's Essay on Kālidāsa, p. 5.

consequence has been that even the jingling rhymes of wretched poetasters, as the नलोदय* or व्योतिर्विदाभरण for instance have been palmed off as the poet's productions. †Nor has any of his one thousand and one commentators (including the Brahmanas and the Jainas) deigned to afford us any clue to the elucidation of this problem. § The personal history of this immortal poet is thus involved in an impenetrable mist of obscurity.

Tradition, it is true, has handed down through a succession of ages certain stories and anecdotes about him, but they are so marvellous as to be opposed to all historic credibility. Facts and fables have been so strangely and inextricably interwoven, that it is impossible to disentangle the one from the other.

With regard to his date also we are in the same state of uncertainty as with regard to his personal history. Here also we are not on *terra firma*, but on the quick-sand of tradition. The accounts preserved by tradition are so inconsistent and contradictory, that they defy human credibility. For instance there is one tradition that says that Kālidāsa flourished in the reign of Vikramaditya 56 B. C. ‡ But there is another tradition which says

* At last our profound Sanskrit scholar Dr R G Bhandarkar has found out the name of the author of नलोदय which has long been attributed to Kālidāsa. He says—"This is usually attributed to Kālidāsa; but in this manuscript the name of the author is given as रविदेव son of नारायण. There are one or two manuscripts in our collection in which also the same name occurs." Report on the search for Sanskrit Manuscripts, D C during the year 1883-84 p 16.

† Dr Bhau Daji's Essay on Kālidāsa p 10, S. P Pandit's edition of Raghuvamśa Vol, III p 29, Dr H Kern's preface to बृहत्संहिता of Varāhamihira, p 12, Prof Weber's History of Sanskrit Literature, p 201, and the notes thereon. Also on pages 260, 261, and 266 of the same. Prof. Max Muller's India what can it teach us, The renaissance of Sanskrit Literature, p 281 and the notes thereon.

§ Dr Bhau Daji's Essay on Kālidāsa, p 5.

‡ The word विक्रमादित्य signifies "The sun of valour", and was assumed by many kings of उज्जयिनी and of other kingdoms of India. Prof. Weber's History of Sans. Literature, p 201 notes.

that he was patronised by a king named Bhoja in the eleventh century. * Now it is impossible to reconcile these flagrant incon-

* Dr Bhau Daji says.— Mr Bently, on the authority of the भोजप्रबन्ध and the Ayin-i-Akbari, supposed the patron of learning to be the same as “Raja Vikram, successor to Raja Bhoja”, in the 11th century of the Christian Era Col Wilford and Mr James Prinsep place Kaidāsa in the 5th century, and Mountstuart Elphinstone adopts this date in his admirable History of India In Gujaratha, Malva, and the Deccan, Kaidāsa is believed, chiefly on the authority of the भोजप्रबन्ध, to have flourished at the court of Bhoja, the nephew of Munja, at उज्जयिनी, in the 11th century of the Christian Era. There have been several Bhojas as well as Vikramas or Vikramādityas at उज्जयिनी the last Bhoja having flourished in the 11th century of the Christian Era, and to reconcile the two suppositions, it is necessary to suppose that the Vikrama or Vikramāditya at whose court the “nine” learned men flourished was also styled “Bhoja.” Dr Bhau Daji’s Essay, p 6, 7., Prof Weber says — “But then, we know of a good many different Vikramas and Vikramādityas and, besides, a tradition which is found in some modern works, and which ought surely, in the first instance, to have been shown to be baseless before any such conclusion was adopted, states expressly (whether correctly or not is a question by itself) that king Bhoja, the ruler of Malva, who dwelt at Dhārā and Ujjayini, was the Vikrama at whose court the ‘nine gems’ flourished, and, according to an inscription, this king Bhoja lived about 1040—1090 A D” Prof Weber’s History of Sanskrit Literature, p 201—202 and the notes thereon, and see also the pages, 203 215 228. 230 261 319 of the same Max Muller’s India What can it teach us p 284 and the notes, S P. Pandit’s edition of Raghuvans’a, part III., p 30 note F Hall’s edition of वासवदत्ता, preface, pages 7, 8 and 9, foot-notes p 20 note of the same. Dr Kern’s preface to बृहत्संहिता, pages 15 and 16. Life and Essays of H T Colclbrooke, Essays Vol II. p 49 Wilson’s Hindu Theatre, Vol I p 185. Indian Antiquary, Vol I. 1872 p. 82, 83, 314—15 Indi Anti Vol II 1873. p 58, 272, 297 and 302 foot-note Ind Ant Vol. XII. 1883 p 94, 230, 234, 291, 293, 294, 295. Ind Anti Vol XI p. 125. footnote. Antiquary Vol XVIII Vikramāditya I (Western Chālukya), p 285, 1889. Vikramāditya V (West Chālukya), he had the *biruda* of त्रिभुवनमल्ल, 275,—note on the period of his death, and on the परोक्षम् used in connection with his successor p 272—73 Vikramāditya VI (West Chālukya), an inscription of शक—संवत् 998, which perhaps belongs to the beginning of his reign p 35 of the same volume. Indian Antiquary. Vol XIX 1890 Vikramāditya, a king men-

sistencies Traditions unless corroborated by documentary evidence from independent sources are worthless and are not entitled to serious consideration. Of this, however, further on.

It is now a patent fact that India is wanting in chronology. The want of historic faculty is a defect in our national character. Through the influence and inspiration of western education, our minds are being awakened to a sense of this defect, and some of our men although very few in number, are engaged in antiquarian researches with the laudable desire of unveiling the past. But no success has yet been attained, commensurate to the extent of their hopes or the magnitude of their efforts. Vast numismatic and paleographic evidence has been brought to bear upon the date of Kālidāsa, yet what may be said at the most about it, is that it has reached the region of probability but not of certainty.

Among antiquarians no unanimity exists upon this question of the date of Kālidāsa. Their divergencies have been very remarkable. We shall try in this dissertation to discuss the various dates assigned to Kālidāsa by them, and thus bring to a focus all the evidence bearing upon this point which has been hitherto collected by orientalists both at home and abroad.

I. M Hippolyte Fauche supposes the poet to have lived at the time of the posthumous * child who is said at the end of the last canto of Raghuvans'a to have succeeded to the throne. This would place Kālidāsa at the latest in the eighth century before Christ.

tioned in connection with प्रतापसिंह I, कल्हण says he is not "the enemy of the Śakas (शकारि) p 261 to 264 Vikramāditya I (West Chálukya) p 151 of the same Vikramāditya II (East Chálukya) p 435 of the same E H D p 41-45, 62-67, 74

* Dr. Bhau Daji's Essay on Kālidāsa, p 7 S P Pandit's edition of Raghuvamśa, part III, preface, p 27-28 Jour B B R A S. for 1861.

Against this date the following objections have been justly urged by Mr. Pandit in his edition of Raghuvams'a*.— (a) If Kálidása really lived in the reign of the posthumous child, we cannot suppose him to have described his ancestors and said nothing about the living king himself. (b) We do not know for certain that the nineteenth canto is the real conclusion of the poem. The end of the nineteenth canto is abrupt, the Raghuvams'a, unlike other works of the poet, does not end with a benedictory stanza † Tradition says that there is a sequel to the 'History of the solar kings' (c) From the fact that no more kings are described by Kálidasa it does not necessarily follow that no more kings had lived. Vishnu Purana mentions thirty seven princes to have lived after the voluptuous king Agnivarna §

Another very strong objection also, based upon style, may be legitimately urged against this date. It has been indisputably proved that Bhavabhūti belonged to the first decade of the 8th century A. D. ‡ Now if we would suppose Kálidasa to have lived in the 8th century B. C. there would be a distance of 16 centuries between them. ¶ Corresponding to this difference of time, there ought to be a considerable difference of style between the compositions of these two poets. The style of Kálidása ought to differ from that of Bhavabhūti as much as

* S P Pandit's Raghuvams'a, part III, preface, p 28 and the foot note

† त भावाय प्रसवसमयाकांक्षिणीनां प्रजाना-
मन्तगूढ क्षितिरिव नभोजीजमुष्टि दधाना ।
मौलैः सार्य स्यविरसचिवैर्हेमासिहासनस्या
राज्ञी राज्य विविवशशिषद्गर्तुरभ्याहताज्ञा ॥

§ S P Pandit's edition of Raghuvams'a, part III, preface, p. 25

‡ Dr R G Bhandarkar's Report on the Search for Sanskrit MS; during the year 1833-84, p 15. Dr Bhandarkar's edition of मालती-माधव, preface p XII, Prof Max Muller's India what can it teach us p 334

¶ Prof Weber's History of Sanskrit literature, p. 200

the Vedic differs from the classical. But no such marked difference is discernible. Almost the same spirit, the same manner of treatment, pervade the productions of both. The artificiality of diction which is observable in Bhavabhūti, will only justify us in supposing an interval of about six centuries at the most to have elapsed between him and Kālidāsa.*

II Sir William Jones places Kālidāsa in the first century preceding the Christian era † This date rests on no other foundation than that of tradition, which runs to the effect that there was once a king named Vikramāditya who after defeating the S'akas or Scythians established the Samvat era which commences 57 years before Christ Kālidāsa was the

* In his History of Sanskrit Literature, p 204 footnote, Prof Weber says—"In the Introduction to my translation of this drama, the *Mālavikāgnimitra*, I have specially examined not only the question of its genuineness, but also that of the date of Kālidāsa. The result arrived at is, in the first place, that this drama also really belongs to him,—and in this view Sankar Pandit, in his edition of the play concurs. As to the second point, internal evidence, partly derived from the language, partly connected with the phase of civilisation presented to us, leads me to assign the composition of Kālidāsa's three dramas to a period from the second to the fourth century of our era, the period of the Gupta princes, चन्द्रगुप्त, &c "whose reigns correspond best to the legendary tradition of the glory of Vikrama, and may perhaps be gathered up in it in one single focus." Prof Lassen has expressed himself to essentially the same effect. See *I Ak*, Vol II 457, 1158—1160, See also *I St*, Vol II 148, 415—417." In his *India what can it teach us*, p 301, footnote, Prof Max Muller says—"It seems almost impossible to give the opinions held by various Sanskrit scholars on the date of Kālidāsa, or on the dates of certain works ascribed to Kālidāsa, on account of their constantly varying opinions and the vague language in which they are expressed. Those who desire information on this point, may consult Professor Weber's *Sanskrit Literature*. That accomplished scholar seems to put Kālidāsa's three plays between the second and fourth centuries A D, the period of the Gupta princes, चन्द्रगुप्त, &c, see l c, p 204 note, but I am not quite certain that this is his real opinion."

† Dr Bhuu Daji's Essay on Kālidāsa, p 6

noblest of the nine men of genius who adorned the court of this Vikramāditya. A memorial verse gives the names of these nine gems as follows—

धन्वन्तरिः क्षपणकोऽमरसिंहशकु—
वेतालभट्टघटकपर्कालिदासा ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायाम्
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥ *

Here there are involved three questions of great importance which, for clearness sake, we shall discuss separately. They are as follows—

(a) Was there such a prince as Vikramāditya, the destroyer of Mlechchhas, the founder of the Samvat era, who reigned in the first century B. C. ?

(b) Was there only one prince bearing the name of Vikramāditya † or was Vikramāditya a title simply assumed by various princes of different dynasties ?

(c) Did the celebrated nine gems flourish in the court of that Vikramāditya who flourished in 56 B. C. ?

(a) The belief in a Vikramāditya of the first century before Christ rests upon tradition. But it is also confirmed

* S. P. Pandit's edition of Raghuvams'a, part III, preface pp 28—29 Max Muller's India what can it teach us pp 328—29 Dr Bhau Daji's Essay on Kalidasa, pp 9—10 J. B. B. R. A. S. 1860, p. 26 Prof. Weber's History of Sanskrit literature, p. 200 and the notes on pages 260, 261 and 266 of the same Dr H. Kern's preface to बृहत्संहिता, pp 12—17 Wilson's trans. of विष्णुपुराण, ed. by F. E. Hall, preface p. VIII footnote. Dr. Bhandarkar's Early History of the Dekkan, pp 41—46, 59—67, 74. Also see notes on page 34.

† Dr H. Kern's preface to बृहत्संहिता, pp 14, 15, 16, 17 and 20 Pandit's ed. of Raghuvams'a, part III, preface, pp 32—33 Prof. Weber's History of Sanskrit literature, pp 201, 202, 205 and 228. Dr Bhau Daji's Essay on Kalidasa, pp 6, 8, 9, 18, 19 and 35 Prof. Max Muller's India what can it teach us pp 281, 282, 283 and 301 Dr Hall's preface to वासवदत्ता, p. 6 Alberuni's India Vol II, chapter XLIX p. 6

by a *Paṭa'vali* composed by Merutungāch'rya, a Jaina Pandit.* Merutunga says that 'after Nabhovāhana, Garddabhilla ruled at Ujjayinī for 13 years, when S'rī Kālkāchārya, † on account of violence offered to his sister Sarasvatī, uprooted Garddabhilla, and established S'aka kings in Ujjayinī. They ruled there for 4 years. Garddabhilla's son Vikramāditya regained the kingdom of Ujjayinī, and having relieved the debt of the world by means of gold, commenced the Vikrama Samvat era. This took place 470 (453+17) years after Vīra's era. Vikrama's reign extended over 60 years. His son Vikramacharitra alias Dharmāditya ruled for 40 years. The next kings Bhāilla, Nailla, and Nāhada ruled for 11, 14 and 10 years respectively. The S'aka era now commenced 605 years after Vīra Nirvāna.' ‡

From this extract of the *Paṭa'vali*, it will be seen that there was a king named Vikramāditya who reigned 135 years ‡ before the commencement of the S'aka era.

There are some antiquarians who doubt the existence of this prince. They say that there is absolutely no documentary evidence whatever for the existence of such a prince as Vikramāditya in the first century B. C. ¶ Mr. Fergusson † has started the bold theory that what is called the era of Vikramāditya 56 B. C. was a date arrived at by taking

* The Literary Remains of Dr Bhau Daji, pp 129—142

† For the full account of this कालिकाचार्य or कालकाचार्य see 'The Literary remains of Dr Bhau Daji' p 120

‡ The Literary remains of Dr Bhau Daji, pp 131, 132, and 133

‡ The Literary remains of Dr Bhau Daji p 132

¶ Dr H. Kern, Prof Weber, Prof Max Muller, Dr Bhau Daji and other orientalists hold this opinion. The Literary remains of Dr. Bhau Daji p 9

† Journal of the Royal Asiatic Society, 1880. On the S'aka Samvat, and Gupta Eras, a Supplement to his paper on Indian Chronology, 1870.

the date of the great battle of Korur* in which Vikrama Harsha of Ujjayini finally defeated the Mlechchhas in 544 A. D. and by throwing back the beginning of the new era 6×100 (or 10×60) before that date i. e. 56 B. C Prof. Max Muller praises the architectonical genius of Mr. Fergusson and thinks that his theory will at last turn out to be correct † Why, however, 600 years were added to the new era by Vikramāditya is beyond the ken of Mr. Fergusson. 'Nothing short of a contemporaneous document dated less than 600 of the Vikrama era, would upset Mr Fergusson's

* Prof. Max Müller says that 'this battle of Korur is described by Albiruni in his account of the Saka era —

'The Saka era,' he writes, 'called by the Indians शककाल, is posterior to that of Vikramāditya by 135 years Saka is the name of a prince who reigned over the countries situated between the Indus (Dr Bhau Daji, J B B R A S VIII, p. 242, 1864) and the sea His residence was in the centre of the empire, in the country named आर्यावर्त.

The Indians represent him as born in another class than that of the Sakyas, some pretend that he was a शूद्र and a native of the town of Mansūra (Bahmanabad) There even some who say that he was not of the Indian race, and that he was born in Western countries The people had much to suffer from his despotism until they received aid from the East Vikramāditya marched against him, put his army to flight, and killed him in the territory of Korur, situated between Multan and the castle of Luny (in the Panjab?) This epoch became celebrated by the joy which the people felt at Saka's death, and it was selected for era, principally by astronomers On the other hand, Vikramāditya received the title of श्री, on account of the honour which he had acquired' But Albiruni adds that the date of the reign of this Vikramāditya does not allow us to identify him with the prince of the same name who ruled in Malva This battle of Korur may be the same as that of Multan, mentioned by Tarānātha, 'श्रीहर्ष' abolished the teaching of the Mlechchhas by massacring them at Multan असग and वसुबन्धु were his contemporaries (900 p B N), his predecessor was called गभीरपक्ष, his successor शील Ind Ant 1875, p 365 Max Muller's India what can it teach us. p. 282 Alberuni's India, Vol II chapter XLIX p 6

† Prof Max Muller's India what can it teach us pp 281—82. Prof. Weber's History of Sanskrit literature, p 203 footnote

theory' says Max Muller. * The Kāvi inscription † discovered by Dr. Buhler which gives the date 430 of the Vikrama Samvat for its grantor Jayabhata does not satisfy the Professor who strongly criticises it in his 'India, what can it teach us.' § But the several objections raised by him against the date given in that inscription ‡ have been fairly refuted by Dr. Fleet. 'Whatever may be the case', continues Dr. Fleet, 'as regards the reading of the second numerical symbol and the computation of the details of the date, the fact remains that the first numerical symbol is undoubtedly 400 and that we have here a date which can only be referred to the fifth century of the Vikrama era' ¶ And further on he gives a short summary of the arguments about the theory of the Gupta-era and Vikrama-era of Mr. Fergusson, and says that 'as regards the Gupta era, Mr. Fergusson took this opportunity of recording his impression (*id* p. 285) that his view of it "would never have been considered doubtful, had it not been that the chronology of that period had hitherto been based almost exclusively on numismatic researches" And, in repeating his conviction (*id* p. 281) that the commencement of the era was in A. D. 319, and (*id*. p. 270) that it was established in the reign of the अंघ्र king गोतमपुत्र, he also now maintained (*id* p. 271) that the era did not necessarily date from the accession of the king, or from his death, or from any specific event in his reign, but

* Prof. Max Muller's India what can it teach us. p. 284

† Indian Antiquary, 1876, p. 152 Prof. Max Muller says that 'Prof. Buhler's remark has not escaped me, but here again the reading of the figures is very doubtful, see Fleet, Indian Antiquary, 1876, p. 68, and Prof. Buhler himself admits now that there is no Samvat date on that plate' Max Muller's India what can it teach us p. 286, footnote.

§ Max Muller's India what can it teach us p. 286.

‡ Indian Antiquary, 1876, p. 152

¶ Indian Antiquary Vol XII. 1883. p. 293.

that, in order that dates in the new era might be easily convertible into the old era, the commencement of the new era was simply fixed by the expiration of four of Jupiter's Sixty—Year Cycles from the commencement of the *S'aka* era.

In respect of his theory that the *S'aka* era was established by कनिष्क, and of some others of his general results, I see no reason, at present, to dispute them, apart from the arguments on which they were based. But a few words seem necessary, in connection with the key-note to his whole paper, which is plainly to be recognized in his desire to find for the *Vikrama* era some origins other than its actual establishment in B. C 57, and, according to tradition, by a king *Vikrama* or *Vikramāditya*, actually reigning at that time. He had already thrown out this suggestion in his previous paper. And now he claimed that, granting the correctness of his other conclusions, there could be found (*id.* p. 271) no direct evidence for the existence of a *Vikrama* era in the first century, B. C., nor for a very long time afterwards, for so long, in fact that it was impossible to establish any connection between a king *Vikrama* and the original establishment of the era. Referring to two passages in the राजतरंगिणी, one of which * speaks of प्रतापादित्य, who was brought from another country to be crowned king of Kás'míra, as a kinsman of a king *Vikramāditya* who, the book states, was wrongly thought by some to be the *S'akári* or 'enemy of the *S'akas*', and the other of which † states that, at the time of the death of

* अथ प्रतापादित्याख्यस्तैरानीय दिगन्तरात् ।

विक्रमादित्यभूभर्तुर्ज्ञातिस्त्राभ्यविच्यत ॥ ६ ॥

शकारिर्विक्रमादित्य इति सभ्रममाश्रितैः *Rājataranginī* II 6, p 15.

अन्यैस्त्रान्यथा लेखि विसर्वादि कस्यचित् ॥ ७ ॥ *Calcutta edition*

† राक्षित्वा दशमासोना क्षमामेकत्रिंशत् समाः ।

तस्मिन्क्षणे हिरण्योऽपि शांतिं नि सततिर्ययौ ॥ १२५ ॥

तत्रानिहस्युज्जयिन्यां श्रीमान् हर्षांपराभिध ।

एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यङ्गु ॥ १२६ ॥

Hiranya of Kás'mîra, there reigned at Ujjain a powerful king Vikramáditya, who had the second name of Harsha, and who also had destroyed the S'akas; and quoting also Albérûni's explanation that the Vikramáditya who, according to the tradition given to him, conquered the S'akas a hundred and thirty-five years after the establishment of the Vikrama era, could not be identical with the founder of that era,—the conclusions at which he arrived were (*id.* p. 274) that the Vikramaditya who conquered the S'akas at the battle of Karûr, was हर्षविक्रमादित्य of Ujjain; that his death took place about A. D. 550, and the battle of Karûr, in A. D. 544; that, about or before A. D. 1000, when "the struggle with

भूपमङ्गुतसौभाग्य श्रीविद्धरभसाभजद् ।

विहाय हरिबाहुंश्च चतुरस्सागराश्च य ॥ १२७ ॥

लक्ष्मी कृत्वोपकरणं गुणो येन प्रवर्धते ।

श्रीमत्सुगुणिनोऽद्यापि तिष्ठत्युद्धतकन्धरा ॥ १२८ ॥

म्लेच्छोच्छेदय वसुधां हरेवतरिष्यत ।

शकान्विनाश्य येनाहौ कार्यभारो लघुः कृत ॥ १२९ ॥

नानादिगन्तराख्यात गुणवत्सुलभ नृपम् ।

त कविर्मातृगुप्ताख्य सभास्थानस्थमासद् ॥ १३० ॥

Hiranya also, after having governed the country during thirty-one years less ten months, died without leaving posterity 125 At the same time, the Srinat Vikramaditya, other-wise called Harsha, ruled in उज्जयिनी, as Emperor of all India 126

The goddess Sri served this king, who was blessed with unusual happiness, by attaching herself to him with pleasure, having, for him, abandoned the arms of Hari and the four Oceans 127

Making use of wealth as a means (of usefulness), he made the virtues flourish, and thus, till this day, men of talent sit with their heads high in the midst of rich people 128

Having first destroyed the Sakas, he made easy the burden of the work to Hari, who was to descend to the earth to exterminate the Mlechchhas 129

The Kavi, named मातृगुप्त, went to see the lord of the world whose fame had extended to distant countries, and who was then seated in the midst of an assembly of accomplished men, to whom he was always accessible. 130

the Buddhists was over, and a new era was opening for the "Hindu Religion," the Hindus sought to establish some new method of marking time, to supersede the Buddhist Saka era of कनिष्क, that, the Guptas and the kings of Valabhi having then passed away, and having also been insignificant and of doubtful orthodoxy, in looking back for some name and event of sufficient importance to mark the commencement of a new era, they hit on the name of Vikramāditya, as the most illustrious known to them, and his victory at Karūr as the most important event of his reign, and that then, since the date of that victory, A. D. 544,—was too recent to be adopted, they antedated the epoch by ten cycles of sixty years, thus arriving at B. C. 56 for their Vikrama era, and also, not content with this, devised another era, which they called the Harsha era, from the other part of his name, and the epoch of which was fixed in B. C. 456, by placing it ten even centuries before the date of the battle of Karūr. It is an actual fact, that the name of Vikrama does not occur in connection with the era of B. C. 57 until a comparatively late date * But Mr. Fergusson's arguments are vitiated throughout by the undue reliance which he placed on the quasi-historical records of the *Rājataranginī*. The early chronology of Kās'mira has still to be fixed, and the means of adjusting it are to be found in A. D. 533 as the date of Mihirakula, who, according to the book itself, reigned in the eighth century. B. C. And, if the date of Harsha-Vikramāditya of Ujjain is really dependent on the date of Haryana of Kās'mira, it certainly

* I am not prepared, observes the learned doctor, to specify the exact date. But the 'Gyāraspur' or 'Gyārispur' inscription (*Archaeol Surv Ind* Vol X p 33 and Plate XI) shows that the era was still known as the Malava era, in central India, down to about A. D. 880.

cannot be placed as early as the sixth century A. D. * And, after having taken a brief résumé of results of the work of preceding investigators such as Dr. Oldenberg, Mr. Thomas, Sir E. Clive Bayley, General Cunningham, Dr. R. G. Bhandarkar and Dr. A. F. R. Hoernle, the learned doctor arrives at the following conclusion. He says —

The Mandasôr Inscription of Mâlava-Samvat 529 †

“ The summary that I have given above will show sufficiently well the curious ingenuity that was displayed from time to time, in aiming at any settlement of the question rather than the correct one, and also the insufficiency of the arguments used in support of the true solution, even by those who perceived it.

* Corpus Inscriptionum Indicarum Vol. III Introduction p. 55—56

†

मालवानां गगस्थित्या याते शतचतुष्टये ।

त्रिनवत्यधिकेऽब्दानामृतौ सव्यघनस्वने ॥ १९ ॥

सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेऽह्नि त्रयोदशे ।

मंगलाचारविधिना प्रासादोऽयं निवेशित ॥ २० ॥

बहुना समतीतेन कालेनान्यैश्च पार्थिवैः ।

अशीर्यतेकदेशोऽस्य भवनस्य ततोऽधुना ॥ २१ ॥

स्वयंशोवृद्धये सर्वमत्युदारमुदारया ।

सस्कारितमिदं भूय श्रेण्या भानुमतो गृहम् ॥ २२ ॥

अत्युन्नतमवदातं नभःस्पृशन्निव [नभःस्पृशन्निव] मनोहर-शिखरैः ।

शशिभान्वोरभ्युदयेष्वमलमयूखायतनभूतम् ॥ २३ ॥

वत्सरशतेषु पंचसु विशत्याधिकेषु नवसु चाब्देषु ।

यातेष्वभिरम्यतपस्यमासशुक्लद्वितीयायाम् ॥ २४ ॥

स्पष्टैरशोकतरुकेतकसिंदुवार-

लोलतिमुक्तकलतामदयन्तिकानाम् ।

पुष्पोद्गमैरभिनवैरधिगम्य नून-

मैक्यं विजृम्भितशरे हरपू [धू] त देहे ॥ २५ ॥

मधुपानमुदितमधुकरकुशोपगतिनगणैकपृथुशाखे ।

काले नवकुसुमोद्गमदनुक्रान्तप्रचुररोधे ॥ २६ ॥

शशिनेव नभोविमलकौस्तुभमणिनेव शार्ङ्गिणो वक्षः ।

भवनवरेण तथेदं पुरमाखिलमलकृतमुदारम् ॥ २७ ॥

But of course it may be claimed that, as long as M. Renaud's translation of the statement regarding the circumstances under which the era of A. D. 319-20 or thereabouts was established, remained without correction, there was something to be said from the point of view that we had to deal with a mistake made by Albérûnt, laying in a confusion between a true Gupta era, anterior to A. D. 319, used by Early Gupta kings themselves, and another Gupta era, or more properly a Valabhî era, with an epoch of A. D. 319-20 or thereabouts, established, whether used or not by some member of the Valabhî family, and that he was right in respect of the historical event, from which, as he appeared to assert, this latter era took its origin. And, in default of definite evidence, settling the question—when by (*the reckoning from*) the tribal constitution of the Malavas four centuries of years, increased by ninety-three, had elapsed, in that season when the low thunder of the muttering of clouds is to be welcomed (*as indicating the approach of warmth again*),—on the excellent thirteenth day of the bright fortnight of the month सप्तम्य (पौष), this temple was established, with the ceremony of auspicious benediction—And, in the course of a long time, under other kings, part of this temple fell into disrepair, so now, in order to increase their own fame, the whole of this most noble house of the Sun has been repaired again by the munificent corporation,—(this temple) which is very lofty (*and*) pure, which touches the sky, as it were, with (*its*) charming spires, (*and*) which is the resting-place of the spotless rays of the moon and the sun at (*then*) time of rising. Thus, when five centuries of years, increased by twenty, and nine years had elapsed, on the charming second lunar day of the bright fortnight of the month तप्तम्य (फाल्गुन),—in the season when (कामदेव), whose body was destroyed by Hara, develops (*his number of five*) arrows by attaining unity with the fresh bursting-forth of the flowers of the अशोक and केतक and सिन्दुवार trees, and the pendulous अतिमुक्त creeper, and the wild jasmine,—when the solitary large branches of the नगण bushes are full of the songs of the bees that are delighted by drinking the nectar, (*and*) when the beautiful and luxuriant रोध्र trees swing to and fro with the fresh bursting forth of (*their*) flowers,—the whole of this noble city was decorated with (*this*) best of temples, just as the pure sky is decorated with the moon, and the breast of (the god) दार्दिन with the कौस्तुभ jewel.

one way or the other, perhaps the strongest argument against the views held by Mr. Thomas, General Cunningham, and Sir E. Clive Bayley, was to be found in the following anomalous position, which had occasionally been noticed more or less directly, but had never been disposed of. It was held by all that the Valabhî family came immediately after the Guptas. It was also held that in A. D. 318 or 319, some member of this family founded the city of Valabhî, and, in commemoration partly of that event, and partly of the Gupta rule having then ceased and the power having passed into his own hands, established the Valabhî era dating from then. And yet,—as it proved by, amongst other things, the fact that **भट्टारक**, the founder of the family, came only one generation before the year 207, the earliest date that we have in the era used in their own charters,—the founder of this era, and his successors, did not allow this era of their own, established under such memorable circumstances to supersede the Gupta era, but continued the use of the Gupta era for, in accordance with the three earlier starting-points given on page 32, f above, respectively 205, 294, and 318 years at least, (as is shown by the *Alinâ* grant of **शिलादित्य VII**, dated in the year 447), after the establishment of their own era! This surely involves an improbability far greater than any other, of whatever kind, that can be imagined in connection with the whole subject.

In order to arrive at any prospect of a final settlement of the question, what was wanted was a date for one of the Early Gupta kings, recorded in some era, capable of identification, other than that which was specially used by them in their own inscriptions. This has now, at length, been found in my new *Mandasôr* inscription, which, composed and engraved when the year 529 had expired from tribal constitution of the *Mâlavas*, gives us, through his feudatory **बन्धुवर्मन्**, the date of the year 493, expired, of the same era, for **कुमारगुप्त**.

This was not the first instance that had been obtained of the use of this era, which may for convenience be called the Málava era. For, it is obviously identical with the era which is alluded to in the कणख inscription * dated when the 795th year of the Málava lords had expired, and is also mentioned, under the specific name of the Málava-Kála, i. e. 'the Málava era', or 'the time of the Málavas', in a fragmentar inscription at 'Gyáraspur' or 'Gyárispur' in Central India, dated when the 936th year had expired.† But though, in commenting on this latter inscription, General Cunningham expressed the opinion § that this Málava era must be the same as the era of Vikramaditya of Ujjain, commencing in B. C. 57, this point has not hitherto been capable of proof; for the reason that neither of

* Edited by Dr Kielhorn in *Ind Ant* Vol XIII p 162 ff. The date (from the published text, p 164 f, line 14 f) runs—"सवत्सरशतैर्याते सप्तत्रयवर्षाणि सप्ताभिर्मासैश्चाना मन्दिरं धूर्जटे कृतम्,"—"in the year that is denoted) by seven expired centuries of years, coupled with ninety-five, of the Malava lords, (this) temple of (the god) धूर्जटे has been made"

† *Archaeol Surv. Ind* Vol. X p 32 f, and Plate XI. The date, part of which is broken away, (from the Plate) runs—"मासवक्रालच्छरदा षट्त्रिंशत्सयुतेष्वतीतेषु नदसु शतेषु,—when nine centuries of autumns, joined with thirty-six, have gone by, from (the commencement of) the Málava era (or, from the time of the Malavas)"—The counting of the era by autumns is followed also in line 21 of the Mandasôr inscription of यशोवर्मन् and विष्णुवर्धन, of Málava Samvat 589 expired, No 35, page 150. And it is worth noting, as being one of the points which identify the Málava era with the Vikrama era. It can hardly be doubted that the original scheme of the Vikrama years is the one commencing with the first day of the bright fortnight of कार्तिक (October-November). And कार्तिक is still the second month in the Hindu autumn according to the usual division of the six seasons. It seems, however, to be more properly the first autumn month, according to the true southern division of the seasons. And it appears also to have been the first month of a season, when the year was divided, in ancient times, into only three seasons.

§ *Archaeol Surv Ind* Vol X p 34

these two dates gave sufficient details for actual computation, or any other available grounds for historical identification. Nor does the Mandasôr inscription, now brought to notice, furnish any details for calculation. But in its mention of कुमारगुप्त, it answers the purpose equally well.

Turning to the Gupta inscriptions and coins, the earliest and latest dates that we have for कुमारगुप्त, are, respectively, Gupta-Samvat 96 and 130 odd. The first is established by his well known Bilsad pillar inscription, No 10, page 42; and the latter, by one of General Cunningham's coins.* Lest, however, the coin-date should be looked upon as at all doubtful, we must note also his मकुवार inscription, No. 11, page 42, dated Gupta-Samvat 129. And, of these extreme dates, we may take Gupta Samvat 113 as the mean

Applying this mean year to the various theories regarding the epoch of the Gupta era, it represents— (1) according to Mr. Thomas, A. D. 190-91, (2) according to General Cunningham, A. D. 279-80, (3) according to Sir E. Clive Bayley, A. D. 303-304, and (4) according to my own view, A. D. 432-33.

Next, applying to these figures the date of Mâlava-Samvat 493 expired, recorded for कुमारगुप्त in the inscription under notice, we find that the initial point of the Mâlava era must lie within a few years on either side of— (1) B. C. 301; (2) B. C. 214, (3) B. C. 190; and (4) B. C. 61-60.

The first three results, however, each entail the supposition of a brand-new era, hitherto unheard-of, and entirely unexpected. At the same time, as regards the second possible result of about B. C. 214, we must not overlook the existence of certain coins, found in large numbers at नागर in the north of Mâlavâ, about forty five miles north of कौदा, and originally brought to notice by Mr. Carlleyle,† which have on them the legend मालवानां जय,

* *id* Vol. IX. p 24, and Plate V No 7

† *id* Vol VI. pp 165 f, and 174 ff, see also *id* Vol X.V p 149 ff, and Plate XXXI. Nos. 19 to 25.

"the victory of the Málava," in characters ranging in General Cunningham's opinion, "from perhaps B. C. 250 to A. D. 250." These coins show that the Málavas existed, as a recognised and, important clan, long before the time when, as I consider, their "tribal constitution," which led to the establishment of their era, took place, and so also, in the other direction, does the mention of them in the Alláhábád pillar inscription, among the tribes subjugated by समुद्रगुप्त, show that, down to his time at least, they maintained tribal constitution and importance. And, if we were compelled to have recourse to a new era, these coins might justifiably induce us to select, as its epoch, B. C. 223, the date fixed by General Cunningham for the death of अशोक*; which would make the date of Málava-Samvat 493 correspond with A. D. 270, or well on into the first decade of Kumáragupta's reign according to General Cunningham's theory. But this entails, as I have said, the supposition of the existence of an era, of which not the slightest indication has ever yet been afforded by the very numerous inscriptions that have now been examined from all parts of the country, and this is an expedient that must by all possible means be avoided. And, further, it forces the कण्व inscription of Málava-Samvat 795, and the 'Gyáraspur' inscription of Málava-Samvat 936, back to respectively A. D. 572 and 713, periods to which, from their alphabets, they cannot possibly belong. And thus,—since, within certain limits, palæographical evidence must be followed,—it creates a palæographical difficulty that is insuperable. So also does the third result, to practically the same extent, and the first, to a still more marked degree.

The fourth result, on the contrary satisfies all the palæographical requirements of the case. And it brings us so very close to B. C. 57, the commencement of the well known Vikrama era,—which, by the tradition of later times, is closely connected with the country of the Málavas, through the name

* *Corp. Inscr. Indic.*, Vol I Preface p VII

of its supposed founder, king Vikramāditya, whose capital, Ujjain, was the principal city in Mālva,—that we are compelled to find in it the solution of the question, and to adjust the equation of the dates thus,—Gupta-Samvat 113 (the mean date for कुमारगुप्त) + A. D. 319–20 = A. D. 432–33; and Mālava-Samvat 493—B. C. 57–56 = A. D. 436–37, which, of course, falls well within the seventeen years of Kumaragupta's reign, remaining after this mean date.

My new Mandasôr Inscription, therefore, proves—(1) that any statement by Albêrûnî that the Early Gupta power came to an end in or about A. D. 319, must certainly be wrong,—(2) that, on the contrary, Kumâragupta's dynastic dates,—and, with them, those of his father Chandragupta II., and his son Skandagupta, which belong undeniably to the same series; and also any others which can be shewn to run uniformly with them,—must be referred to the epoch of A. D. 319–20, or thereabouts, brought to notice by Albêrûnî and substantiated by the वेरावल inscription of Valabhi—Samvat 945,—and (3) incidentally, that, under another name, connecting with the Mālava tribe, the Vikrama era did undoubtedly exist anterior to A. D. 544, which, as we have seen, at page 55 above, was held by Mr. Fergusson to be the year in which it was invented. These results are, of course, independent of the question whether the Early Guptas established an era of their own, with the abovementioned epoch, or whether they only adopted the era of some other dynasty.

The Determination of the exact epoch of the era. I have shewn, so far, that the Early Gupta dates, and with them, any others that can be proved to belong to the same uniform series, are to be referred to the epoch of A. D. 319–20, or thereabouts, brought to notice by Albêrûnî

and substantiated by the Verāwal inscription of Valabhi-Samvat 945.

It now remains to be shewn why, out of the three possible epochs of A. D. 318-19, 319-20, and 320-21, current, which appear, at first sight, to be deducible from Albérūnī's statements, we have to select, as the true and exact epoch, that of A. D. 319-20, equivalent to Ś'aka-Samvat 241 expired

This point is one that can be settled only by accurate calculations of the recorded dates, explained in detail, so that it may be seen that the process applied is satisfactory, and that the inferences drawn are correct.*

Thus, then, Mr. Fergusson's theory collapses and the tradition upon which our belief in the Vikramāditya of the first century B. C., really rests, is in this instance corroborated by a fact.

(b) With regard to the second question it may be observed that there were many Vikramādityas, not one only. For instance, the *Rājataranginī* makes mention of two Vikramādityas, who were the rulers at Ujjain. The first Vikramāditya is referred to as having placed Pratāpāditya one of his relatives, † and the second who flourished about 276 years after the first, as having placed मातृगुप्त, a great poet, upon the throne of Kāśmīra. § The *Rājataranginī* mentions a third Vikramāditya also, who, it is

* Dr Fleet's *Corpus Inscriptionum Indicarum* Vol III pp 65 to 69

† *Rājataranginī*, II line 6, page 15, Calcutta edition. See also the note on page 35 *Corpus Inscriptionum Indicarum* Vol. III Introduction, page 55 Dr Kern's Preface to बृहत्संहिता. pp. 7. 8 and 14.

§ इति निश्चित्य चतुर क्षपायामिव पार्थिवः ।

गूढ व्यसर्जयद्भूतान् काश्मीरीः प्रकृतीः प्रति ॥ १८९ ॥

भादिदेश च तान् यो वा दर्शयेच्छासन मम ।

मातृगुप्ताभिधो राज्ये नि शंक सोऽभिषिञ्चताम् ॥ १९० ॥

अथ प्राङ्मुखसौवर्णभद्रपीठप्रतिष्ठितः ।

सन्निपत्य प्रकृतिभिर्मातृगुप्ताऽभ्यषिञ्चत ॥ २४२ ॥

determined, ruled over Kās'mira about 592 A. D. * Vikramāditya was also a title assumed by many princes of the Chālukya Dynasty. †

c. But the third question is really germane to our present subject. Granting that a Vikramāditya, the enemy of the Śakas, flourished in the first century B. C., and was also the founder of the Samvat era, is there any authority or a documentary evidence other than the tradition to show that the celebrated nine gems flourished in the court of this Vikramāditya? The only work that connects the *Navaratnas* with the Vikramaditya of the

Having taken this firm resolution, the King secretly sent messengers that very night to the Council of Kasmira

And the following order, viz—"Let the person named मातृगुप्त, as soon as possible after he shows you this order, be installed king of Kāsmira

Then मातृगुप्त was placed upon a magnificent seat of gold facing the east, and being surrounded by the principal authorities, he was installed King with the usual ceremony

Rajatarangini, III pp. 28, 30 Calcutta ed. Dr Bhasu Daji's Essay on Kalidasa, p 38 Dr Max Muller's India what can it teach us p 313. Dr. Kern's preface to बृहत्संहिता p 7 Rev T. Foulkes of Bangalore also mentions a King named विजयबाहु alias Vikramaditya II, of the Bana dynasty who ruled over the western region of the भाँछ country The name occurs in the copper-plate inscriptions of a grant of land to certain learned Brāhmanas of उदयेदुमगल. Indian Antiquary, 1884 Vol XIII. p. 6 See also Indian Antiquary, 1872, Vol I p. 245.

*
 विक्रमाक्रान्तविश्वस्य विक्रमेश्वरकृतसुत ।
 तस्यासीद्विक्रमादित्यस्त्रिविक्रमपराक्रम ॥
 राजा ब्रह्मगलूनाभ्यां सचिवाभ्यां सम मही ।
 सोऽपासीद्वासवसमो द्वाचत्वारिंशति सम ॥
 चक्रे ब्रह्ममठं ब्रह्मा गलूनोलूनुकृत ।
 रत्नावल्याख्यया बभूवा विहारं निरमापयत् ॥

Rajatarangini, III, p 38 Calcutta edition

† See notes on page 35 Dr Bhandarkar's Early History of the Dekkan, pp 59 to 67, and the Genealogy of the Chālukya family given in page 74 of the same.

first century B. C. is the *ज्योतिर्विदाभरण* * bearing the name of Kālidāsa as its author. But Dr. Bhau Daji has well shown that the work is not the production of the author of the *Raghuvansā*.† Rāva Bahadur S. P. Pandit calls it a pretty Jaina forgery.‡ Dr Hall believes it to be not only pseudonymous, but of recent composition,‡ and Dr. Kern concurs in his opinion. ¶ The tradition that nine gems flourished at the court of a Vikramāditya is true, because it is confirmed by an inscription found at Buddha Gayā, ¶ a translation of which is given by Ch. Wilkins,

* See notes on page 39.

† Dr Bhau Daji's Essay on Kalidāsa, p 12.

§ Pandit's edition of *Raghuvansā*, part III, preface p 29

‡ Wilson's translation of *विष्णुपुराण*, edited by Dr F E. Hall, preface p VIII. footnote

¶ Dr H. Kern's preface to *बृहत्संहिता*, p 12 and p 17

¶ History of Sanskrit Literature, p 228, Prof Weber says that 'this tradition is distinctly contradicted, in particular, by a temple-inscription discovered at बुद्धगया, which is dated 1015 of the era of Vikramāditya (i.e. A D 949), and in which अमरदेव is mentioned as one of the 'nine-jewels' of Vikramā's court, and as builder of the temple in question. This inscription had been turned to special account by European criticism in support of its view, but Holtzmann's researches (*op cit* pp, 26-32) have made it not improbable that it was put there in the same age in which Amarasinha's dictionary was written, seeing that both give expression to precisely the same form of belief, a combination, namely of Buddhism with Vishnuism—a form of faith which cannot possibly have continued very long in vogue, resting as it does on a union of directly opposite systems. At all events, inscription and dictionary cannot lie so much as 1000 years apart,—that is a sheer impossibility. Unfortunately this inscription is not known to us in the original, and has only survived in the English translation made by Ch Wilkins in 1785 (a time when he can hardly have been very proficient in Sanskrit!) the text itself is lost, with the stone on which it was incised.' Max Muller's *India what can it teach us.* p 327. Dr Kern's preface to *बृहत्संहिता*, p 18-19 Asiatic Researches, Vol I, p 284. Dr. Fleet, in his *Corpus Inscriptionum Indicarum*, Vol III p 274, gives a Bodh-Gayā inscription of Mahānāman, the year 269 "संवत् २००+६०+९ चैत्रसुदि ७ ॥" The year 200 (and) 60 (and) 9, (the month) Chaitra, the bright

but the tradition that that Vikramāditya was the same as the Vikramāditya the founder of the Samvat era, is without any foundation in fact.

The objection based upon the style which was raised against the first date, also holds good in this case

III Mr. Bentley on the authority of the Bhojaprabandha composed by one Ballālamis'ra supposed the patron of learning to be the same as Rājā Vikrma successor to Rājā Bhoja in the 11th century of the Christian era. *

Now although we may not concur in the opinion of Rāva Bahadur Pandit that the Bhojaprabandha is a silly medley of absurd anachronisms, † still we must bear in mind that there were many princes who bore the title of Bhoja; § besides that the kings of Ujjayini might have been styled Bhojas ‡ as Ferishtah, does call Śīladitya Pratāpasīla by that name ¶

fortnight, the day 7 He says that 'the date of the present inscription has to be referred to the Gupta era, with the result of A D 588-89 ' See also the 68th page of the same

* Dr Bhau Daji's Essay on Kalidāsa p 6

† S P Pandit's edition of Raghuvansa part III, preface p 30 Dr Hall's preface to वासवदत्ता, p 7 and the foot notes

§ The Literary Remains of Dr Bhau Daji, p 7 Dr. Kern's preface to बृहत्संहिता, pp 15, 16 and 20 Max Muller's India what can it teach us pp 284, 321 note, 331 note Prof Weber's History of Sanskrit Literature, pp 195 note, 201, 202 note, 203, 215 note, 228, 230, 261 Dr Hall's preface to वासवदत्ता, pp 7 and the foot-note, 8 note, 9 note, 19 note, 20 note, 21 &c. Dr. Bhandarkar's Early History of Dekkan, pp 9, 10, 11.

‡ See notes on Bhoja above.

¶ Rājatarangini, III verses 332 and 333, p. 33 Calcutta edition Dr Hall's preface to वासवदत्ता, p 14 note Prof Weber's History of Sanskrit Literature, p 214 note. The Literary Remains of Dr Bhau Daji pp 14, 15, 16, 17, 18 Prof Max Muller's India what can it teach us p 289 and the foot-note Śīladitya (हर्षवर्धनकुमार-राज), ruler of North India (उत्तराण्य), 286, 297, 309, 317, 329; He is also called शिलदित्य of कान्यकुब्ज, 287. His true date, 288. शिलदित्यप्रतापशील, 288, 313 He is also called Bhoja, 290. He was

finally restored to the throne of उज्जयिनी, 313. J. R. A. S 1880, p 278 etc. Like Dhruva and Vikramādityas there were many Silādityas. See Seal's Buddhist Records of the Western World Vol I pp 210 n, 211 n, 213, 215, 216, 217, 218, 219—221, Vol II pp 170, 174, 193, 198, 223, 234, 235 n Silāditya of Ujjayini, Vol I, p 108 n Vol II, pp 261, 267 Silāditya VI of Valabhi, Vol II 267 a Corp Inscrp India Vol III p 171 Silāditya VII the year 447 Dr Bhau Daji says that the Silādityas have become as great a source of confusion in Indian chronology as the various Vikramādityas and Chandraguptas and, to prevent repetition, we shall here remark that the oldest Silāditya we read of in the Jaina records is the son of सुभगा, daughter of Devāditya Brāhmaṇa, of the village of Khata in गुर्जरदेश.

सुभगा became a widow in her childhood, but according to the chronicles of Gujarat (See A. K. Forbes's Rāsamālā, Vol I p 13), conceived afterwards by the Sun and gave birth to twins. The male child became renowned as Silāditya. He destroyed the King of Valabhi and became the lord of सौराष्ट्र, but was himself slain in the sack of Valabhi in A. D. 319 by the Mlechchhas or Sakas.

The second Silāditya was of the यदु family. He ruled over सौराष्ट्र at the commencement of the fifth century and has already been noticed.

The third Silāditya is the one noticed by Col. Tod as having been killed at the sack of Valabhi by barbarians in A. D. 524 ("Annals of Rājasthāna" Vol I p 217). Some important change appears undoubtedly to have occurred about this time in the government of Valabhi, as the date appears undoubtedly to correspond with the establishment of the dynasty of the Kings commencing with भट्टारकसेनापति, brought to light in Mr. Wathen's Valabhi copper-plate grants (J. R. A. S. Vol IV p 497—Prinsep's Indian Antiquities, by Thomas, Vol I p 252), their dates 365 and 380 being from the Valabhi, and not from the Vikramāditya Samvat, as hitherto supposed.

There are four Silādityas noticed in these "Grants" as belonging to the dynasty हर्षवर्धन of कनौज, the patron of बाण and Hiouen-Thsang, and the subject of a biography by both with extraordinary coincidence of facts, had, it appears, the title of "Silāditya" and the Chinese pilgrim, also gives the title to a king of Malva, who ruled about 60 years before this period (Gen. Cunningham's Ancient geography of India, p 492). The "*Rājataranginī*" applies the title to the son and successor of हर्षविक्रमादित्य of Ujjain. This exhausts the list of "Silāditya" known to us at present. See also Dr. Bhandarkar's Early History of Dekkan, p 40.

Col Tod gives A. D. 575, A. D. 665, and A. D. 1044 for the first, second and third Bhojas respectively. * From this it is difficult to determine which of the three Bhojas is particularly alluded to, as they all appear to have been patrons of science.

IV. Professor Lassen assumes Kālidāsa to have flourished in the second half of the second century after Christ, † at the court of Samudra-gupta, chiefly on account of the designation, 'Friend of poets', applied to that king in inscriptions. §

Now this date of Professor Lassen is based upon very insufficient evidence, since many other kings than Samudra-gupta have been described as 'Friends of poets,' as for instance S'ilāditya of Malvá, Harshavardhana of Kanauj, or S'ri Harsha of Kāshmirā ‡ According to Prof. Lassen's reasoning, Kālidāsa might have lived as well in the reign of any of these princes as in that of his समुद्रगुप्त.

V. Col Wilford, on the authority of the शशुञ्जयमाहात्म्य, a Jaina work composed by one धनेश्वरसूरि, places Kālidāsa in the fifth century of the Christian era, and is followed by James Prinsep and H. H. Wilson. Thus writes Col. Wilford —

* The Literary Remains of Dr. Bhau Dajī, p. 7—8. Col. Tod's Annals of Rājasthāna, Vol I, p. 92 old edī.

† Monier Williams, in his Indian Wisdom, page 494, fourth edition, says that 'Prof Lassen places Kālidāsa about the year 250 after Christ.'

§ The Literary Remains of Dr Bhau Dajī p 7 Prof. Lassen's *I. Al.* Vol II 451, 1158—1160 See also *I. St.* Vol II 148, 415-417, of Prof Weber Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol III p. 195 Allahabad Posthumous Stone pillar inscription of समुद्रगुप्त.

Speaking of this inscription Dr Fleet says that 'the round monolith sandstone column, thirty-five feet in height, on which this inscription is, dates from the third century B. C., as is shown by the famous edicts of अशोक on it'—

L. 5. "यस्य प्रज्ञानुषंगोचितसुखमनसः शास्त्रतत्त्वार्थभर्तुः ॥"

L. 5. Whose happy mind was accustomed to associate with learned people,—who was the supporter of the real truth of the scriptures.

‡ See notes on page 56 Dr. Hall's preface to वासवदत्ता. p 15 note. See notes on page 35. Max Muller's India, p 356.

“In the शत्रुजयमाहात्म्य * we read that after 466 years of the era are elapsed, then would appear the great and famous Vikramāditya, and then 477 years after him Śīlāditya or Bhoja would reign.”

The era referred to in this passage is, as has been clearly shown by the late Dr. Bhau Daji, not of Vikrama, but of Vīra i. e. Mahāvīra or Vardhamāna, the last of the Jaina Tīrthankaras. Col Wilford has confounded this Vīra with Vikramāditya who is also called Vīra Vikrama. Prof Wilson who assigns Kālidāsa to the fifth century on the authority of the same शत्रुजयमाहात्म्य is led into the same mistake as that of Col. Wilford and besides incorrectly assumes Śīlāditya of the शत्रुजयमाहात्म्य with Śīlāditya the son and the successor of Vikramāditya of Ujjain † Now there are as many Śīlādityas as there are Vikramādityas or Bhojas, § and the Śīlāditya referred to in the above passage of the शत्रुजयमाहात्म्य is a king of Valabhī who expelled the Buddhists from the Saurāshtra 477 years after Vikrama i. e. in 420 A. D. as we learn from the same work ‡

It is then evident from the above that the शत्रुजयमाहात्म्य does

* The Literary Remains of Dr Bhau Daji pp 14—18 Dr Hall's preface to वासवदत्ता p 11 note Max Muller's India what can it teach us p 282 Dr Buhler, however calls the शत्रुजयमाहात्म्य 'a wretched forgery of the 12th or 14th century' Dr H Kern's preface to बृहत्संहिता, p 15 Wilford's statements about शत्रुजयमाहात्म्य, As Res Vol IX p 156 Prof Weber's History of Sanskrit Literature, p 214. Prof Lassen, I Ak., Vol. IV p 761

† The Literary Remains of Dr Bhau Daji, pp. 14, 15, 16, 37 Asiatic Researches, Vol XV, p. 39 and 87 See notes on page 56

§ See notes on page 35

‡ See notes on page 57 The Literary Remains of Dr Bhau Daji. p. 15. Prof Weber's शत्रुजयमाहात्म्य, p 109, verse 286

सप्तसप्ततिमब्दांतामतिक्रम्य चतुःशतीम् ।

विक्रमाकर्काण्डिलादित्यो भविता धर्मवृद्धिर्कृत् ॥

सर्ग १४ श्लोक २८६ ।

not help us in the least in the matter of fixing the date of either Vikramāditya or Kālidāsa *

VI. The late Dr. Bhau Daji has fixed the first half of the sixth century † as the period during which Kālidāsa flourished, and in support of this view he has adduced several facts which are new, and various arguments which, if not convincing must at least be acknowledged to be very powerful § This is the date which has been acquiesced in by many of the celebrated antiqua-

* The tradition says that Kālidāsa the author of Raghuvansa and Sakuntalā was in the court of Vikramāditya who flourished in 57 B C

Another writer, who assumes the title of Kālidāsa, is the author of शत्रुपराभवग्रन्थ an astrological work treating of favourable opportunities for action, by determining the predominance of “स्वर” or ‘breath’ through the right or left nostril

The first and last verses are as follows —नत्वा सुरासुराशरोमपिरत्न—
रश्मि । चित्रीकृतांग्रियुगल हरिमादिदेव ॥ श्रीकालिदासगणक स्वरशास्त्रसार
वक्ष्याम्यह प्रबलशत्रुपराभवाख्य ॥ १ ॥
आसीत्कश्यपवशजोर्कतनयातीराधिवासो द्विज । श्रौतस्मार्तविचारसारचतुर
श्रीभानुभट्ट सुधी । तत्पुत्रोहरिभक्तिनिर्मलतनुर्ज्योतिर्विदामगणी । शास्त्र श-
त्रुपराभवाख्यमकरोत् श्रीकालिदास कवि ॥ २ ॥

Trans —“I, Kālidāsa Ganaka, after making obeisance to Hari, the आदिदेव, whose joint feet are resplendent with the rays of the jewels in the crowns of the Gods and Demons, proceed to give the substance of Svara Śāstra, called शत्रुपराभवग्रन्थ. “Deeply versed in the knowledge of the Śrutis and Smṛtis, and born in the race of कश्यप there lived on the banks of the वर्कतनया (Jumna) the talented भानुभट्टाह्वय His son, whose body has been purified by devotion to Hari, is the poet Kālidāsa, the first among astrologers He composed the शास्त्र, called शत्रुपराभव.

And the third writer who assumes the title of Kālidāsa is the author of ज्योतिर्विदामरण, the wretched Jaina forgery, The 20th verse of the 22nd chapter runs thus —“Having first composed three Kāvya : e the Raghuvansa and others, I composed several treatises on Vedic subjects (श्रुतिकर्मवाद), then from Kālidāsa proceeded the astrological treatise called ज्योतिर्विदामरण.

† The Literary Remains of Dr Bhau Daji, p. 37.

§ The Literary Remains of Dr. Bhau Daji, pp, 19—48, and the notes thereon.

rians of the present day; for instance, by Prof. Max Muller. * by Dr. Kern † and by Dr. Bhandarkar. §

We shall arrange the materials which have been collected and brought to bear upon this date, in the following order.

(a) It has been said above that Kālidāsa was one of the nine gems that adorned the court of a Vikramāditya. Now the date of Varāhamihira has been discovered by the late Dr Bhau Daji ‡ In a commentary on the Khandakhādya of Brahmagupta, an astronomer of 628 A. D. by Amarāja we have the following — ‘नवाधिकपञ्चशतसहस्रशके वराहमिहिराचार्यो दिव गत ॥’ Varāhamihira-chārya went to heaven in the 509th year of the S’akakāla, i. e. 587 A. D. ¶ H. T. Colebrooke had already assigned to him the close of the fifth century of the Christian era from a calculation of the position of the colures affirmed as actual in his time by Varāhamihira §

The date of Varāhamihira being fixed, the time of Kālidāsa and the other gems of the memorial verse and their patron Vikramāditya is also fixed.

(b) It is stated in the *Rājataranginī* that when Hiranya the ruler of Kāśmīra died without issue, Harshavikramāditya of Ujjain appointed a poet named Mātṛgupta who had come to

* Max Muller’s India What can it teach us p. 301, 301 note, 307 312

† Dr. Kern’s preface to बृहत्संहिता of Varāhamihira, p. 20

§ Dr. Bhandarkar’s Early History of the Dekkan, p. 11, and Dr. Bhandarkar, J. B. B. R. A. S. Vol. XIV, p. 24

‡ Dr. Bhau Daji’s Essay on Kālidāsa, p. 45 Dr. Bhau Daji says that ‘the latest and the most judicious writers on Hindu Astronomy have placed वराहमिहिर about A. D. 570.’ But in page 240 he says that ‘he flourished after A. D. 505.’ H. T. Colebrooke’s Essays, Cowell’s edition, Vol. II p. 415 Prof. Weber’s History of Sans. Literature, p. 254 J. R. A. S. Vol. I (1864) p. 392

¶ Dr. Fleet’s Corpus Inscriptionum Indicarum Vol. III appendix I p. 143 Jour. R. A. S. N. S. Vol. I p. 407, 392 (1864) Dr. Bhau Daji’s brief notes on the Age and Authenticity of the works of आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भट्टोत्पल, and भास्कराचार्य, p. 240

§ Dr. Bhau Daji’s brief notes on the age and authenticity of the

seek service at his court to the throne of Kās'mira. * Mātṛigupta ruled Kās'mira for four years and retired to वाराणसी as a यति when Pravarasena II, the nephew of Hiranya who had gone on a pilgrimage, returned to assume the throne † Dr Bhau Dajī thought that this Mātṛigupta who was for a time ruler of Kāsmīra was the great poet Kālidāsa, and he supported his theory by the following reasons.

(1) There always has been a tradition that Vikramāditya was so pleased with Kālidāsa that he bestowed on this poet half of his territories §

(2) Mātṛigupta is rather an appellation than a proper name and it conveys the same import as Kālidāsa The “त्रिकाण्डशेष,” a Sanskrit Vocabulary by Purushottama, gives रघुकार, मेघारुद्र, and कौटिलिजित् as synonyms of Kālidāsa ‡

(3) The *Rājataranginī* does not omit to notice the great Sanskrit poets in their respective historical periods Thus it mentions Bhavabhūti || as patronised by यशोवर्मन् of Kanoj But it never mentions Kālidāsa.

works of आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भट्टोत्पल, and भास्कराचार्य, p 239 H T Colebrooke's Essays Vol II Cowell's edition, p 434

* *Rājataranginī*, III lines, 125, 128, page 26, Calcutta edition See our notes on page 53 Dr Bhau Dajī's Essay on Kālidāsa p 21, verse 124 Max Muller's India what can it teach us, p 313.

† *Rājataranginī*, III Calcutta edition p 32 lines 230—302 Dr Bhau Dajī's Essay on Kālidāsa, p 48 Max Muller's India what can it teach us, p 313

§ The Literary Remains of Dr Bhau Dajī, p 48 Max Muller's India what can it teach us, p 313

‡ The Literary Remains of Dr Bhau Dajī, p 30 Max Muller's India what can it teach us, p 314

|| कविर्याक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवित ।

जितो ययौ यशोवर्मा तद्रूपस्तुतिवन्दिताम् ॥ १४५ ॥

Rājataranginī IV 145 Calcutta edn Dr Bhandarkar's edition of *Malatī-Madhava*, preface, page IX In his report on the search for Sanskrit MSS during the year 1883-84, page 15, Dr Bhandarkar says —“ We learn from Rajasekhara's प्रबन्धकोश that

(4) A Prakrit poem called the *सेतुकान्य* is described by its commentator to have been composed by Kalidasa at the request of Raja Pravarasena. An expression in the *वाराणसीदर्पण* of Sundara is explained by the commentator Rāmāśrama to be an allusion to Kalidasa who wrote the *Setu-Kāvya*. In a work on poetry called *Prataparudra* by Vidyanatha who was patronised by Prataparudra

आमराज converted by *वक्त्रभट्टि* was the son and successor of *यशोवर्मन्*, king of Kanoj. A king of the name of *वर्मन्* who was hereditary enemy of *आम*, ruled over the *गौड* country at that time, and *लक्ष्मणवती* was his capital. He had *वाक्पतिराज*, a poet, in his service, who composed a Prakrit poem entitled *गौडवध* or *गडडवहो*, after his patron had been killed by a neighbouring prince of the name of *यशोधर्म*. It would thus appear that *वाक्पतिराज* belonged to the next generation after *यशोवर्मन्*, and I have given reasons in the introduction to my edition of *मालतीमाधव* to believe that he belonged to the next generation after *Bhavabhūti* also. The *राजतरंगिणी* speaks of both the poets as having been patronised by *यशोवर्मन्*, wherefore it must be concluded that *वाक्पतिराज* first came into prominence in the latter part of his reign, while *Bhavabhūti* belonged to the first part. ***** *यशोवर्मन्* thus died between 807 and 811 of the era of Vikrama, i.e. about the year 753 A. D. Lalitaditya of Kāśmīra who subdued *यशोवर्मन्* reigned from 693 to 729 A. D. according to the chronology of the *राजतरंगिणी* as interpreted by General Cunningham by the use of the key furnished by *कल्हण* himself, viz. that Saka 1070 corresponded with the Kāśmīra year 24. The date of *Yasovarma*'s death now determined agrees well enough with this, at least it does not furnish any reason for supposing an error in *Kalhana*'s dates and applying a correction to them as General Cunningham afterwards did, though even the corrected date of *Lalitaditya*, 723-760 A. D., would be equally consistent with it. And *Bhavabhūti* must be referred to the last quarter of the seventh century and the first of the eighth. See also *Pandit's* edition of *गौडवध*, introduction, p. LXIX, and note in *गडडवहो*, p. 221, are the following

भवभूतजलहिण्गयकञ्चामयसकणा इव फुरन्ति ।

जस्य विसेसा अज्जवि विथडेसु कहाणिवेसेसु ॥ ७९९ ॥

com.—भवभूतिजलविनिर्गतकान्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति ।

यस्य विशेषा अज्जापि विक्कडेसु कथानिवेसेसु ॥ निबन्धेष्वाति क्वचित्पाठः ॥

See also Dr. Bhau Daji's Essay on Kalidasa, p. 37

of Telingana about the end of the 12th century, an Arya is quoted from the 'Setukavya' which is styled a "महाप्रबन्ध." Dandin praises the poem although written in Prakṛita as an 'ocean of the jewels of beautiful sentences' The work is alluded to in the Sāhitya Darpana or Mirror of Composition. The Rājatarangini states that Pravarasena had constructed a bridge of boats across the Vitastā (Hydaspes) on which the capital of Kāśmīra was then situated The construction of this very bridge is the subject of the Setukavya * Bāna's notice of Pravarasena and the Setukavya confirms the correction of the assertion of the commentator of the Setukavya that the poem was composed at the request of that King †

Dr. Bhau Dāji himself, however, brought forward some objections against his identification of Mātrigupta and Kālidāsa. Kālidāsa, he remarks, was a Sārasvata Brahmana, a worshipper of Śiva and Pārvatī, while Mātrigupta as ruler of Kāśmīra appears from the *Rājatarangini* to have conciliated the Buddhists and Jainas by prohibiting the destruction of

* The Literary Remains of Dr. Bhau Dāji, pp 39—40 Also Rājatarangini, Calcutta edition, p 34 lines 355—356 —

“वितस्तायां स भूपालो बृहत्सेतुमकारयत् ।

ख्याता ततःप्रभृत्येव तादृङ्गैसेतुकल्पना ॥ ३५६ ॥

Max Muller's India what can it teach us, p 314—315.

† Introduction to Haishacharita —

कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला ।

सागरस्य पर पार कापसेनव सेतुना ॥

निर्गुतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।

प्रीतिर्मधुरसाद्रासु मञ्जरीष्विन जायते ॥

Trans The glory of Pravarasena, bright as the white lotus, extended beyond the ocean by means of the Setu (Kavya), just as the monkey army crossed the ocean by the Setu (bridge)

Who is not enraptured with the sweet and good diction of Kālidāsa, as in clusters of flowers moist with honey.

See also Dr Bhau Dāji's Essay on Kālidāsa, p 40 Max Muller's India what can it teach us, p 315

living beings. * He also pleased the Vaiṣṇavas by constructing a temple to Viṣṇu, and the deities invoked in the *Setukāvya* are first Viṣṇu and then Śiva † This, in the opinion of Professor Max Muller, however, is no serious objection, for such was the character of that time that men like Matrīcheta ‡ began as worshippers of Śiva and then became Buddhists and like Lalitaditya erected statues to Buddha and Viṣṇu § What troubles the Professor is 'that Matrīgupta is spoken of in the *Rājataranginī* as a poet and yet never identified with the famous author of the *Sākuntala*. It is possible that Kalhana Pandit who is so well acquainted with literary history should have told the extraordinary career of Matrīgupta without giving a hint that this poet, raised to the throne of Kasmīra, was the famous Kālīdāsa' ¶

* *Rājataranginī* III, Calcutta edition, p 31, lines 258—268
The Literary Remains of Dr Bhau Dajī, pp 38—39

† The poem opens (i.e. the first four verses) with the praise of the god मधुमथन (The *Rājataranginī*, III p 31, verse 266 runs thus—स मातृगुप्तस्वाम्याख्य निमर्मे मधुसूदन । कालेनादत्त यद्ग्रामान्ममः श्वशुरसन्ने ॥), and the next four verses invoke the blessing of Śiva. The god मधुमथन of the *Setubandha* and the god मधुसूदन of the above verse of the *Rājataranginī*, appear to be one and the same deity. The निर्णयसागर edition says that the author of *Setubandhakāvya* was the king Pravarasena and not the author of *Raghuvansa*, and hence the authorship of Kālīdāsa to *Setukāvya* becomes doubtful. The colophon runs thus—

महाकविश्रीप्रवरसेनमहीपतिविरचित (इक्षुखवधापरनामक) सेतुबन्धम् ॥
Dr Bhau Dajī says—Matrīgupta in Kasmīra is said in the *Rājataranginī* to have established the worship of मधुमथन or Viṣṇu under the name of "मातृगुप्तस्वामी," and this is the only circumstance that creates a shade of doubt in our mind respecting the identity of मातृगुप्त with Kālīdāsa, who, in his extant works always invokes Śiva, and otherwise, appears to have been a devout Śaiva.

‡ Prof Max Muller says—"Thus I-tsing tells us that Matrīketa, who in his youth worshipped महेश्वर, became later in life a follower of Buddha and composed 400 hymns, and afterwards 150 hymns' India what can it teach us, p 302, 315 note

§ India what can it teach us, pp 307, 315 note.

¶ Max Muller's India what can it teach us, p 315 note.

Although the above leaves the identification of Mañigupta and Kālidāsa doubtful, still it clearly establishes the connection of Kālidāsa with the Śtukāvya and with Piavarasena II king of Kāśmīra. Mañigupta might have been a poet different from and contemporaneous with Kālidāsa. There is a commentary on the *Sa'kuntala* by Raghava Bhatta, son of Prithvidhara of Viśveśvara-pattana (Benares) in which he quotes Mañiguptaśārya with reference to the characteristics of dramatic composition.*

(c) The fourteenth verse of the *Meghadūta* and especially the last line † of it affords another datum for fixing the date of Kālidāsa. The verse bears, according to Mallinātha, two senses, one expressed and the other implied or 'suggested' in the language of the Alankarists. There is nothing particular in this verse bearing a double sense, as the works of Kālidāsa and Bana abound with verses and the *Meghadūta* itself contains many other verses of a similar nature. Now Mallinātha in the implied sense of the verse, discovers a pointed allusion in Kālidāsa's words 'Nīchula' and 'Dīnnaga' to two men who were the contemporaries of Kālidāsa, one, an intimate friend of his and the other his adversary ‡

* The Literary Remains of Dr Bhau Daji, pp 36-37 note. Throughout the commentary, observes the learned doctor, we meet with 17 verses, which, from their style appear to be the production of a great poet, and are not unworthy of Kālidāsa. One Sloka is quoted second-hand from Bhamaha, a commentator on the "प्राकृत-प्रकाश," who again quotes it from the "हयग्रीववधनाटक".

"हयग्रीववध मेण्डस्तद्रे दर्शयन्मम ।

आसमाप्तिं ततो नापन् साध्वसाध्विति वा वच ॥ २६४ ॥

अथ ग्रन्थयितुं तस्मिन् पुस्तकं प्रस्तुते न्यधात् ।

लावण्यनिर्माणभिया राजाद्य स्वर्णभाजनम् ॥ २६५ ॥

अन्तरङ्गतया तस्य तादृश्याकृतं सत्कृति ।

भर्तृमेण्ड कविर्मेने पुनरुक्तं श्रियोऽर्पणम् ॥ २६६ ॥

Rajataranginī, III p 31 Calcutta edition Max Muller's India what can it teach us, p 314 note

† दिङ्मागतानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥ १४ ॥

‡ See Mallinātha's commentary on the 14th verse. Max Muller's India what can it teach us, pp 306-307 Dr Bhau Daji's Essay on Kālidāsa p 49

£ bou' Nichula nothing absolutely is 'yet known except that the शब्दान्वय recognises Nichula as a proper name, being that of a poet. But दिङ्नाग or more properly दिङ्नागचार्य § is a celebrated name in the Prāmana S'āstra or Sanskrit logic

From the life of Bhagavat Buddha by Ratnadharमारजा (a Tibetan work) that Diñnaga and Dharmakīrti were the pupils of the Buddhist Arya Asanga ¶ in Prāmāna that is logic.

Again we learn from Vāchaspathiśra's न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका that Uddyotakaraçharya composed his न्यायवार्तिक, a commentary on Pakshila Svamin's न्यायभाष्य in order to clear away the erroneous interpretations of Diñnaga and others. *

This shows that Uddyotakara was the contemporary or immediate successor † of Diñnaga and that Diñnaga as befitting a pupil of the Buddhist logician Asanga was an authority on logic.

§ Max Muller's India what can it teach us p 307 Dr Bhanu Daj's Essay on Kalidasa, p 49 Prof Weber's History of Sans Literature, p 209 note Prof Cowell's preface to कुसुमाञ्जलि, p VII S P Pandit's preface to the Raghuvansa, part III p 68 Dr Hall's preface to वासवदत्ता p 9 J B B R A S Vol XVIII pp 229-230 J B B R A S Vol. XVII p 51

¶ Prof Max Muller's India what can it teach us pp 304-305, 309 311

* अथ भगवताक्षपारेण नि श्रेयसहेतौ शास्त्रे प्रणीते, व्युत्पादिते च भगवतः पक्षिलस्वामिना, किमपरमवशिष्यते यदर्थं वार्तिकारभ इति शका निराचिकीर्णं सूत्रकारोक्तप्रयोजनानुवादपूर्वकं वार्तिकारभप्रयोजनं दर्शयति 'यदक्षपाद' इति । यद्यपि भाष्यकृता कृतव्युत्पादनमेतत्तथापि दिङ्नागप्रभृतिभिरर्वाचीने कुहेतुसतमसमुत्थापनेनाच्छादितं शास्त्रं न तत्त्वनिर्णयाय पर्याप्तमित्युद्योतकरेण स्वनिबन्धेनोद्योतेन तदपनीयत इति प्रयोजनवानयमारभ ॥ Cowell's preface to कुसुमाञ्जलि, p VII

† In his paper read before the society Mr Pāthaka says — "The works of प्रभाचन्द्र and विद्यानन्द place at our disposal a mine of useful information प्रभाचन्द्र mentions, among other authors भगवान् उपवर्ष, दिङ्नाग, उद्योतकर, धर्मकीर्ति, भर्तृहरि शबरस्वामी, प्रभाकर, and कुमारिल. All these authors with the exception of भगवानुपवर्ष, are quoted by विद्यानन्द Bhagavan Upavarsha, S'abaisvamin, Dharmakīrti and Kumarila are also referred to by शक्राचार्य The अष्टसहस्री represents कुमारिल as refuting the views of धर्मकी-

Now उद्योतकर and धर्मकीर्ति are mentioned by Subandhu in his Vāsavadattā, the former by name and the latter, by the name बौद्धसगति', which, the commentator says, is the name of a work ति and प्रभाकर. From this circumstance we infer the chronological priority of the two last mentioned authors to Kumāṇila. वाचस्पतिमिश्र says that दिङ्नाग is refuted by उद्योतकर, and according to the Jaina श्लोकवार्तिक, उद्योतकर himself is attacked by धर्मकीर्ति

In his paper on the न्यायबिन्दुटीका, Dr Peterson says "in the Jesalmira fragment there is an interesting reference to Kumāṇila's critique of दिङ्नाग. The writer asserts that when कुमारिल rejects mental perception as that had been established from the scriptures (आगमसिद्ध) by Diṅnaga it was because he did not understand Diṅnaga's definition." This critique of दिङ्नाग occurs in Kumāṇila's श्लोकवार्तिक, chapter on प्रत्यक्ष. There is another reference to दिङ्नाग in the same work —

वासनाशङ्कभेदोत्थविकल्पप्रविभागत ।

न्यायविद्भिर्दिद्योक्त धर्मादौ बुद्धिमाश्रिते ॥ १६७ ॥

व्यवहारो न मानादे कल्प्यते व बहि स्थिते ।

अस्तीद वचन तेषामिदं तत्र परीक्ष्यताम् ॥ १६८ ॥

न्यायविद्भिरिति । न्यायविद्भिर्हि दिङ्नागाचार्यैरिमुक्त । सर्व एवायमनुमानानुमेयव्यवहारो बुद्ध्यारूढेन धर्मधर्मिन्यायेन न बहिः सत्त्वमपेक्षत इति । एतदपि लूषयति ।

In this passage सुचरितमिश्र says, Kumāṇila applies the expression न्यायविद्भिः to दिङ्नागाचार्य. It is obvious, therefore, that the Buddhist author of the Jesalmira fragment and the Brahmanical commentator सुचरितमिश्र are unanimous in holding that दिङ्नाग is criticised by कुमारिल. In his chapter entitled the शून्यवाद the मीमांसक controverts the Buddhist view denying the existence of the soul as distinct from the intellect. In explaining this part of the श्लोकवार्तिक, सुचरितमिश्र frequently cites the well-known verse of धर्मकीर्ति which is quoted by शंकर and सुरेश्वर (for मण्डनमिश्र), and thus leads us to infer that धर्मकीर्ति as well as दिङ्नाग is criticised by कुमारिल. This view is corroborated, as we have seen, by विद्यानन्द who in the अष्टसहस्री represents Kumāṇila as refuting a verse of धर्मकीर्ति.

These facts enable us to fix the chronological order in which दिङ्नाग, उद्योतकर, धर्मकीर्ति, भर्तृहरि and कुमारिल flourished. Each of these authors lived prior to the one named next after him. J. B. B. R. A. S. Vol. XVIII. 229—230.

£ bou' Nichula nothing absolutely is 'yet known except that the शब्दान्वय recognises Nichula as a proper name, being that of a poet. But दिङ्नाग or more properly दिङ्नागचार्य § is a celebrated name in the Prāmana S'āstra or Sanskrit logic

From the life of Bhagavat Buddha by Ratnadharमारजा (a Tibetan work) that Diñnaga and Dharmakīrti were the pupils of the Buddhist Arya Asanga ¶ in Prāmāna that is logic.

Again we learn from Vāchaspathiśra's न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका that Uddyotakaraçharya composed his न्यायवार्तिक, a commentary on Pakshila Svamin's न्यायभाष्य in order to clear away the erroneous interpretations of Diñnaga and others. *

This shows that Uddyotakara was the contemporary or immediate successor † of Diñnaga and that Diñnaga as befitting a pupil of the Buddhist logician Asanga was an authority on logic.

§ Max Muller's India what can it teach us p 307 Dr Bhanu Daj's Essay on Kalidasa, p 49 Prof Weber's History of Sans Literature, p 209 note Prof Cowell's preface to कुसुमाञ्जलि, p VII S P Pandit's preface to the Raghuvansa, part III p 68 Dr Hall's preface to वासवदत्ता p 9 J B B R A S Vol XVIII pp 229-230 J B B R A S Vol. XVII p 51

¶ Prof Max Muller's India what can it teach us pp 304-305, 309 311

* अथ भगवताक्षपारेण नि श्रेयसहेतौ शास्त्रे प्रणीते, व्युत्पादिते च भगवतः पक्षिलस्वामिना, किमपरमवशिष्यते यदर्थं वार्तिकारभ इति शका निराचिकीर्णं सूत्रकारोक्तप्रयोजनानुवादपूर्वकं वार्तिकारभप्रयोजनं दर्शयति 'यदक्षपाद' इति । यद्यपि भाष्यकृता कृतव्युत्पादनमेतत्तथापि दिङ्नागप्रभृतिभिरर्वाचीने कुहेतुसतमसमुत्थापनेनाच्छादितं शास्त्रं न तत्त्वनिर्णयाय पर्याप्तमित्युद्योतकरेण स्वनिबन्धेनोद्योतेन तदपनीयत इति प्रयोजनवानयमारभ ॥ Cowell's preface to कुसुमाञ्जलि, p VII

† In his paper read before the society Mr Pāthaka says — "The works of प्रभाचन्द्र and विद्यानन्द place at our disposal a mine of useful information प्रभाचन्द्र mentions, among other authors भगवान् उपवर्ष, दिङ्नाग, उद्योतकर, धर्मकीर्ति, भर्तृहरि शबरस्वामी, प्रभाकर, and कुमारिल. All these authors with the exception of भगवानुपवर्ष, are quoted by विद्यानन्द Bhagavan Upavarsha, S'abaisvamin, Dharmakīrti and Kumarila are also referred to by शक्राचार्य The अष्टसहस्री represents कुमारिल as refuting the views of धर्मकी-

"A little afterwards Vikramāditya lost his kingdom and was succeeded by a monarch" Śilāditya Pratapāsila of Ujjain, who widely patronised those distinguished for literary merit. Vasubandhu wishing to wash out the former disgrace came to the king and said "Māhārāja, by your sacred qualities you rule the empire and govern with wisdom. My old master Manorhita was deeply versed in the mysterious doctrine. The former king from an old resentment deprived him of his high renown. I now wish to avenge the injury done to my master. The king knowing that Manorhita was a man of superior intelligence approved of the noble project of वसुबन्धु. He summoned the heretics who had discussed with Manorhita. Vasubandhu, having exhibited afresh the former conclusions of his master, the heretics were abashed and retired."*

Now if we can fix the dates of this Vikramāditya and Asaṅga or Vasubandhu, we can fix those of Dīṇāga and also Kālidāsa who was according to Mallinātha (the tradition which Mallinātha puts forth is correct or not is a question by itself) his contemporary.

Hsüen Tshang (629—645 A. D.) says that sixty years before his time the throne was occupied by Śilāditya Pratapāsila † So that his reign, according to Dr Fergusson § ends

* Buddhist Records of the Western World Vol I pp 106—109

† Buddhist Records of the Western World Vol II p 261 Gen. Cunningham's Ancient Geography of India p 492.

§ Max Muller's India what can it teach us pp 288—289 and the note Journal of the Royal Asiatic Society, 1880, p 278 note. In a note of the Buddhist Records of the Western World Vol I p 106, Rev S. Beal says — "Manorhita is placed under विक्रमादित्यर्ष of Ujjain, and therefore lived about the middle of the 6th century A. D., according to Max Muller, *India*, p 290. This is supposed to be the same as Vikramāditya or Harsha of Ujjain, according to Dr J. Fergusson and Prof. M. Muller, the founder of the usual सवत् era, 56 B. C. The Chinese equivalent for his name is *chaou jih*, or "leaping above the sun," or, "the upspringing light", "the dawn." As to the mode in which this era of Vikrama-

in 580 A. D. He ruled, according to Ferishtah, fifty years 530—580, and was preceded by Vikramāditya whose reign would accordingly have ended in 530

Again Tibetan chronicler **रत्नधर्मराज** says that 900 years after the death of Buddha there appeared Arya Asanga and Vasubandhu *

Houen Thsang states that As'oka flourished 100 years after निर्वाण Now the date of As'oka is known 259—222 B C † Asanga and Vasubandhu thus appeared to have lived 541 A. D. Kāldāsa and his adversary Dīnāga the pupil of Vasubandhu must have lived about the same time.

ditya might have contrived, see Fergusson (*J R A S*, N S Vol XII p 273) The starting-point from which these writers suppose it came into use is 544 A D The expression of Vikramāditya of **आवस्ती**, is the same as Vikramāditya of **अयोध्या**, where we are told (Vassilief, p 219) he held his court The town of **आवस्ती** was in ruins even in Fahian's time (cap XX)

* Max Muller's India what can it teach us p 305

† In his India what can it teach us, p 306, Professor Max Muller says — "We had placed Vikramāditya in the first half of the sixth century, about 100 years before Houen-thsang If then we remember that Kanishka's birth is placed 400 years and Asanga 900 years after Buddha's death (see also Wassiljew, Buddhismus, p 52), we find an interval of 500 years between Kanishka and Asanga And if we are right in placing Kanishka's coronation 78 A D, we should get for Asanga and Vasubandhu about the second half of the sixth century, that is, nearly the same date at which we arrived before, on the evidence supplied by Houen-thsang" And futher in the notes he says — "This is a very common date for Kanishka with the Northern Buddhists, whether of his birth or of his coronation, may sometimes seem doubtful (Houen-thsang, II, 172) If we take 78, the beginning of the Saka era, as the date of Kanishka's coronation (**अभिषेक**), the initial date of Buddha's निर्वाण would have to be placed not as a real event, but for the purpose of chronological calculation only, at about 322 B C पार्श्व and वसुमित्र would belong to the same period as Kanishka

According to the same chronological system, अशोक is placed 100 years after Buddha's निर्वाण (Houen-Thsang, II, p 170), i. e. 222 B C, and this, if I am right in my rectification of the chronology

This may be seen from the following table — *

550—Vikramāditya Harsha of Ujjayini.

531—579. Khosru Nushirvân and Barzôî.

544 Battle of Kârur, 600 after 56 B. C., era of Vikrama.

Siddhasena Suri, a Jaina, helps in reckoning the era.

44. Matrigupta, ruler of काश्मीर, contemporary of भर्तृहरि.

Kalidâsa, contemporary of हिद्मग, वसुबन्धु, and असङ्ग.

mentioned with भारवि in inscription 634 A. D.

his सेतुकाव्य praised by Dandin (6th century).

quotes भास, सौमिल.

Varâhamihira, died 587.

” quotes आर्यभट, born 476.

” रामकसिद्धान्त by श्रीषेण, 505, based on
लाट, वासिष्ठ, विजयनदिन &c

of the Southern Buddhists, is the real date of his death (धम्मपद्
Introdu P XXXIX)

Again, the king of Himatala, who defeats the Kritiyas, who are
enemies of Buddhism, is placed 600 after बुद्धनिर्वाण, i. e. 278
A D (Hiouen-Thsang, II, p 179)

Hiouen-Thsang's is fully aware of the existence of three different
eras He says that some place the निर्वाण 1200 years ago (about
560 B C), others 1500 years ago (about 860 B C), but, he
adds, some assert that more than 900 and less than 1000 years
have now elapsed since Buddha's निर्वाण These were no doubt
the authorities who placed Kanishka 400 years after the निर्वाण,
and Hiouen-Thsang himself, about 960 years after Buddha (Hi-
ouen-Thsang, I, p 131) Wassiljew (Buddhismus, p 52) states
from Tibetan sources that after the death of गभीरपक्ष (p 282
n), the patron of Asanga (900 post बुद्धनिर्वाण) श्रीहर्ष was the
most powerful king in the west of India, and was succeeded
by his son शील It is curious to observe that in Tibetan litera-
ture Buddha's birth is supposed to have happened not long be-
fore the birth of Confucious (J B B R A S 1882, p 100)
It might be well to distinguish the Southern Buddhist era by
p B S from the Northern Buddhist era, p B N " See also
Dr Bhandarkar's Early History of the Dekkan, pp 21—22 note

* Prof Max Muller's India what can it teach us, p 290.
Indian Antiquary 1883, Vol XII, p 234.

- ” पौलिशसिद्धान्त by Paulus al Yunâni.
 ” वसिष्ठसिद्धान्त by विष्णुचन्द्र.
 ” सौरसिद्धान्त
 पैतामहसिद्धान्त, also सत्यभद्रन्त, बादरायण,
 &c.

Amarasinha, translated into Chinese 561—566.

जिष्णु, father of ब्रह्मगुप्त (born 598)

विद्वाग, criticised by उद्योतकर, who is mentioned by सुबन्धु,
 who is mentioned by बाण

मनोरथ, teacher of वसुबन्धु, disgraced, 900 p. B. N.?

550—600—Silāditya Pratāpasīla (Mālavā), called भोज
 by Ferishtah.

वसुबन्धु, restored, Pandit at नालंद, brother of असंग, died before
 569.

प्रभाकरवर्धन.

माधवगुप्त, तारक, सुषेण, at his court.

राज्यवर्धन (eldest son)

Defeats king of Mālavā

Is defeated by शशांक of कर्णसुवर्ण, an enemy of सुद्ध, or गुप्त
 of गौड.

Fei-tu, Chinese ambassador, 605.

610—650. शिलादित्यहर्षवर्धन (younger son), called कुमारराज,
 a वैश्य

His sister, राज्ञेश्वरी, wife of ग्रहवर्मन् who was killed by king of
 Mālavā

His minister भण्डि (Po-ni).

Alliance with भास्करवर्मन्, Kumāra of प्राग्ज्योतिष (कामरूप).

Wars with Pulakesin II of महाराष्ट्र, temp. Hiouen-Thsang
 (618—625, Ma Tuan-lin).

Defeated by Pulakesin II, सत्याश्रय, who began to reign
 609.

Chinese embassy to मगध, leaves 648, arrives after Silā's
 death.

Visited by Hiouen-Thsang, 629-645, by Alopen, 639.
 Dandin, दशकुमारचरित, काव्यादर्श, old
 Subandhu, वासवदत्ता, quoted by बाण.

” ” quotes उद्योतकर, धर्मकीर्ति, pupil of

असग

Ba'na हर्षचरित, कादंबरी, चण्डिकास्तोत्र, रत्नावली (धावक,)पार्वती-
 दण्डिग्रन्थक (a paraphrase of कुमारसम्भव attributed to बाण)-

मयूर, मयूरशतक

मानतुंगसूरी, भक्तमरस्तोत्र

नागग्रण.

आढ्यराज.

भर्तृहरि, died 650 (I-tsing)

जयादित्य (काशिका), died 660 (I-tsing).

ब्रह्मगुप्त, born 598

Though some of the links in this chronological system are still doubtful, the belief in the existence of a Vikramāditya in the first century B. C. may now be accounted for, while his real existence in the sixth century admits of little doubt

We have hitherto discussed the several views and theories held about the date of Kalidasa by the native as well as European investigators. It is now a patent fact that the Samvat era really commences from the year 57 B. C. and not at 544 A. D. as Dr. Fergusson supposes. Dr. Fleet's discovery of Mandasor inscription has completely exploded Dr. Fergusson's theory, * and has confirmed the tradition of Vikramaditya flourishing in B. C. 57. Prof. Lassen places Kalidasa in 250 A. D. † Prof. Weber assigns the composition of Kalidasa's three dramas to a period from the second to the fourth century of the Christian era, the period of the Gupta princes § &c.

* See pages from 45—51 of this Introduction

† See note on page 58

§ See notes on page 38. Also Prof. Weber's History of Sanskrit literature, p. 204 note. Max Muller's India what can it teach us, p. 301 note

Sir William Jones assigns to Kālidāsa a period preceding the Christian era. And this theory of that distinguished scholar receives an additional support from As'vaghosha's *बुद्धचरित*, a recent publication of Prof C B Cowell at Oxford † This book is a mine of useful information for those investigators who are particularly interested in the history of Sanskrit literature. Prof Cowell says that 'readers of the *Raghuvans*'s will well remember the description in the seventh canto, slokas 5—15, of the ladies of the city crowding to their windows to see prince अज as he passes by from the स्वयवर, where the princess भोज्या has chosen him as her husband. There is a striking parallel to this episode in the third book of *बुद्धचरित*, slokas 13—24, where the young prince makes his first entry into his father's capital,—that expedition, during the course of which he is to make his first acquaintance with old age as the inevitable shadow which dogs the steps of youth.'

बुद्धचरितम् —

ततः कुमार खलु गच्छतीति ।
श्रुत्वा स्त्रिय प्रेक्ष्यजनात्प्रवृत्ति ।
विद्वक्ष्या हर्म्यतलानि जग्मु ।
जनेन मान्द्येन कृताभ्यनुज्ञा ॥ १३ ॥
तद् सस्तकांचीगुणविभ्रिताश्च ।
सुप्तप्रबुद्धाकुललोचनाश्च ।
दृष्टान्तविन्यस्तविभूषणाश्च ।
कौतूहलेनापि भृता परीयुः ॥ १४ ॥
प्रासादसोपानतरुप्रणौड ।
काचीरवैर्नूपुरनिस्वनैश्च ।
विभ्रामयन्त्यो गृहपक्षिसचार ।
अन्येन्यवेगाच्च समाक्षिपन्त्य ॥ १५ ॥
कासाचिदासां तु वरांगनाना ।
जातत्वरणामपि सोत्सुकानां ।
गतिं गुरुत्वाज्जगृहुर्विशाला ।
श्रोणीरथा पीनपयोधराश्च ॥ १६ ॥

रघुवंशम् —

ततस्तश्लोकनतत्पराणा ।
सौत्रेषु चामीकरजालवत्सु ।
बभूवुरिस्थि पुरसुवरीणाम् ।
त्यक्तान्यक्रायाणि विचेष्टितानि ॥ ५ ॥
आलोकमार्गं सहसा ब्रजन्त्या ।
कयाचिदुद्दष्टनवान्तमान्त्य ।
बद्धु न राभानित एव तावत् ।
करेण रुद्धोऽपि च केशपाश ॥ ६ ॥
प्रसाधिकालम्बितमग्रपादम् ।
आक्षिप्य काचिद्भ्रवरागमेव ।
उत्सृष्टलीलागतिरागवासाद् ।
अलक्तकांकां पदवीं ततान ॥ ७ ॥
विलोचन दक्षिणमजनेन ।
सभाव्य तद्वचितवामेनत्रा ।
तथैव वातायनसनिकर्ष ।
ययौ शलाकामपरा वहन्ती ॥ ८ ॥

* See page 38 of this Introduction

† Anecdota Oxoniensia, Asian Series, Vol I part VII 'The *बुद्धचरित* of अश्वघोष,' edited from three MSS by E B. Cowell, Oxford 1893.

शीघ्रं समर्थापि तु गंतुमन्या ।
 गतिं निजग्राह ययौ न तूर्ण ।
 ह्रिया प्रगल्भानि निगूहमाना ।
 रह प्रयुक्तानि विभूषणानि ॥ १७ ॥
 परस्परोत्पीडनपिडिताना ।
 समर्दसशोभितकुण्डलाना ।
 तासा तदा सस्वनभूषणानां ।
 वातायनेष्वप्रशमो बभूव ॥ १८ ॥
 वातायनेभ्यस्तु विनि सृतानि ।
 परस्परोपासितकुण्डलानि ।
 स्त्रीणां विरेजुर्मुखपकजानि ।
 सक्तानि हर्षेष्विव पकजानि ॥ १९ ॥
 ततो विमानैर्युवतीकलापै ।
 कौतूहलोद्घाटितवातयानै ।
 श्रीमत्समतान्नगर बभासे ।
 विषद्विमानैरिष सास्त्रोभि ॥ २० ॥
 वातायनानामविशालभावाद् ।
 अन्योन्यगण्डार्पितकुण्डलानि ।
 मुखानि रेजु प्रमहोत्तमानां ।
 बद्धा कलापा इव पकजानां ॥ २१ ॥
 तस्मिन् कुमार पाथि वीक्षमाणा ।
 स्त्रियो बभुर्गामिव गतुकामाः ।
 ऊर्ध्वोन्मुखाश्चैनमुदीक्षमाणा ।
 नरा बभुर्गामिव गन्तुकामा ॥ २२ ॥
 कृष्टा च त राजसुत स्त्रियस्ता ।
 जाड्वन्त्यमान वपुषा स्त्रिया च ।
 धन्यास्य भार्येति शनैरवोचन् ।
 शुद्धैर्मनोभिः खलु नान्यभावाद् ॥ २३ ॥
 अयं किल व्यायतपीनबाहू ।
 रूपेण साक्षदिव पुष्पकेतु ।
 व्यक्तवा श्रियं धर्ममुपेक्ष्यतीति ।
 तस्मिन् हि ता गौरवमेव चक्रुः ॥ २४ ॥

जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या ।
 प्रस्थानभिन्नां न बबन्ध त्रीणि ।
 नाभिप्रविष्टाभरणप्रभेण ।
 हस्तेन तस्थाववलम्ब्य वास ॥ १७ ॥
 अधोचिता सत्त्वरमुत्थितायाः ।
 पदे पदे दुर्निमिते गलन्ती ।
 कस्याश्चिदासीद्ग्रासना तदानी ।
 अगुष्ठमूलार्पितसूत्रशेषा ॥ १८ ॥
 तासा मुखैरासवगव्यगर्भै ।
 व्याप्तान्तरा सान्द्रकुतूहलानाम् ।
 विलोलेनेत्रभ्रमैर्गवाक्षा ।
 सहस्रपद्याभरणा इवासन् ॥ १९ ॥
 ता राघव दृष्टिभिर्गपिबन्त्यो ।
 नार्यो न जग्मुर्विषयान्नगाणि ।
 तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां ।
 सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा ॥ २० ॥
 स्थाने वृता भूपतिभिः परोक्षै ।
 स्वयंवर सायुममस्त भोज्या ।
 पद्मेव नारायणमन्यथासौ ।
 लभेत कान्त कथमात्मतुल्यं ॥ २१ ॥
 परस्परं स्पृहणीयशोभ ।
 न चेद्विद्वद्ब्रह्मयोजयिष्यत् ।
 अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्न ।
 पत्युः प्रजानां वितयोऽभविष्यत् ॥ २२ ॥
 रतिस्मरौ नूनमिवावभृता ।
 राज्ञा सहस्रेषु तथा हि बाला ।
 गतेयमात्मप्रतिरूपमेव ।
 मनोहिज्जन्मन्तरसगतिस्र ॥ २३ ॥

'I can hardly doubt', observes Prof. Cowell, 'that Kāldāsa's finished picture was suggested by the rough, but vigorous outlines in अश्वघोष, he was the Buddhist Ennius, who gave the first inspiration to the Hindu Virgil. We must not forget here, that in Kāldāsa the description only belongs to an episode in the main poem,—in the Buddhist author it is a natural incident in one

of the most important chapters of the whole work Kālidāsa merely brings in a few characteristic details, as he is hurrying on to the marriage and the subsequent attack by the disappointed rivals, अश्वघोष dwells in a more leisurely way on the various attitudes and gestures of the women, in order to bring out in bolder relief the central figure of his hero. One verse certainly in अश्वघोष seems to me to have been directly taken and amplified by Kālidāsa'.

'As'vaghosha says, III 19, "The lotus faces of the women gleamed while they looked out from the windows, with their earrings coming into mutual proximity, as if they were real lotuses fastened upon the houses" Kālidāsa develops this crude sketch into a more finished picture, "The lattices, whose apertures were crowded with the intensely curious faces of women, perfumed with wine,—while their bee-like eyes fluttered restlessly,—seemed as though they were adorned with lotuses".

'We can prove', says Prof. Cowell, 'that Kālidāsa was not insensible to Buddhist influences, for in the twelfth book of the Raghuvans'a we have that remarkable trace of Buddhism, where it is said, in the description of Rāma's journey with Sita in the forest, "He every now and then fell asleep from fatigue on Sita's lap, resting under a tree whose shadow was motionless through his divine power" This well known miracle of Buddha's childhood does not occur in अश्वघोष, but it is given in the ललितविस्तर.

Lalitavistara —

Raghuvans'a —

सा च वृक्षाणां तस्मिन् समये छाया
परिवृत्ताभूत् । जबुच्छाया च बोधिसत्त्वे-
स्य कायं न विजहाति स्म । स त वृष्ट्वा आ-
श्चर्यप्राप्तं तुष्ट उदग्रमनसा प्रमुदितं प्रीति-
सौमनस्यं जातः शीघ्रं शीघ्रं त्वरमाणरूपो
राजानं शुद्धोदनमुपसक्रम्य गायामिरेभ्य-
भाषात । पश्य देव कुमारोयं जबुच्छायां
हि ध्यायति । यथा शक्रोऽथवा ब्रह्मा श्रि-
या तेजेन द्योभते ॥

प्रभावस्तम्भितच्छायम् आश्रितः
स वनस्पतिम् । कदाचिदङ्गे सीतायाः
शिश्ये किंचिदिव श्रमात् ॥ २१ ॥
Raghuvans'a XII 21.

यस्य वृक्षस्य छायाया निषण्णो वरलक्ष-
ण । सैन न जहते छायार्थं ध्यायन्त पुरु-
षोत्तमम् ॥

Lalitavistara XI p. 150. Biblio.

Indi. Series

No doubt there is a close similarity of style and language between the poetic compositions of Asvaghosha and Kālidāsa, nevertheless, it cannot be said that a poet of such towering intelligence as Kālidāsa whom the learned professor himself is pleased to call the 'Hindu Virgil', received his poetic inspirations from the charming song of Asvaghosha! Nor is it consistent to say that Kālidāsa's finished picture was suggested by the rough, but vigorous outlines in Asvaghosha. It may be that the style of the Sanskrit Language preceding the Christian era might have received a settled form, and might be in use in that admitted form throughout the then five divisions of India. And the similarity of style that is seen in the writings of these two poets, might have been the result of that settled form of the Language. Kālidāsa, who wrote several dramas and poems might not have felt the necessity of borrowing his style or imitating an idea or two from Asvaghosha's Buddhacharita. Roughness and barbarity of style are the general characteristics of Buddhist works in Sanskrit. The Lalitavistara and the Buddhacharita will furnish many examples of this. The above extract from the Lalitavistara is a sufficient proof of our remark. Kālidāsa's genius is seen throughout his works, and that such a poet might have taken a certain sloka from the Buddhacharita of Asvaghosha and amplified it in his Raghuvans'a, is certainly very curious. Prof. Cowell has not yet proved¹, from internal evidence, who has borrowed whom and how much of him. It is also possible that Asvaghosha might have copied Kālidāsa, since the dates of both these poets are not yet satisfactorily fixed * and finally accepted by all Orientalists.

* Sacred Books of the East Vol XIX Introduction, pp XXX. note, XXXI Prof Cowell's preface to Buddhacharita, p V.

So unless the date of any one of these be finally fixed with documentary evidence, no judgment of a final nature can decently be pronounced on this question. Again, granted that Kalidāsa was sensible to Buddhist influence still the well-known miracle to which Prof. Cowell alludes, and other supernatural wonders of this description are the common occurrences of almost all the *Puranas*, epics, and the artificial poetry of the Hindus.

And further on Prof. Cowell compares some parallels of Buddhacharita with those of the Rāmāyana and arrives at the following conclusion. He says,—“But these references are vague, and do not necessarily imply the previous existence of our present Rāmāyana.” But on what ground he comes to this conclusion it is impossible to assert.

‘In the thirteenth book we have’, observes Prof. Cowell, ‘the description of Buddha’s temptation by Māra and his three daughters, and as Māra is distinctly identified with काम the flower-armed god, we are at once reminded of the similar scene in the कुमारसम्भव, where काम discharges his arrow against Śiva. Māra says to Buddha, XIII. 11, “This arrow is uplifted by me,—it is the very one which was shot against सूर्यक, the enemy of the fish.”

“So too, I think, when somewhat probed by this weapon, even the son of इडा, the grand-son of the Moon, became mad, and ज्ञानन्तु also lost his self-control,—how much more then one of the feeble powers, now that the age has become degenerate!”

‘Māra is described in XIII. 7, 8, in very similar terms to the description of Kāma in the कुमारसम्भव, “Then having seized his flower-made bow and his five infatuating arrows, he drew near to the root of the अश्वत्थ tree with his children,—he the great disturber of the minds of living beings. Having fixed his left hand on the end of the barb and playing with the arrow, Māra thus addressed the calm seer as he sat on his seat, preparing to cross to the further side of the ocean of existence.”

‘We may surely compare,’ observes the professor, those lines in the कुमारसम्भव, III 64, where काम is described—

उमासमक्ष हरबद्धलक्ष्यं शरासनज्यां मुहुराममर्शं ॥

“In the presence of उमा, fixing his aim at Hara, he repeatedly ingered the bow-string.”

बुद्धचरितम् —

तस्मिंश्च बोधाय कृतप्रतिज्ञे ।
 राजर्षिवशप्रभने महर्षौ ।
 तत्रोपविष्टे प्रजहर्ष लोके ।
 तत्रास सद्धर्मरिपुस्तु मार ॥ १ ॥
 यं कामदेव प्रवदति लोके ।
 चित्रायुध पुष्पशर तथैव ।
 कामप्रचाराधिपति तमेव ।
 मोक्षद्विष मारमुदाहरन्ति ॥ २ ॥
 तस्यात्मजा विभ्रमहर्षदर्पा ।
 तिष्ठो रतिप्रीतितृषश्च कन्या ।
 पप्रच्छुरेन मनसा विकार ।
 स ताश्च ताश्चैव वचो बभूवे ॥ ३ ॥
 असौ मुनिर्निश्चयवर्म बिभ्रत् ।
 सत्त्वायुध बुद्धिशर विकृष्य ।
 जिगीषुरास्ते विषयान्मदीयान् ।
 तस्माज्ज मे मनसो विषद ॥ ४ ॥
 यदि ह्यसौ मामभिभूय याति ।
 लोकाय चारुप्रात्यपवर्गमार्ग ।
 शून्यस्ततोऽय विषयो ममाद्य ।
 वृत्ताच्छ्युतस्येव विदेहभर्तुः ॥ ५ ॥
 तद्यावदेवैष न लब्धचक्षुः ।
 मद्गोचरे तिष्ठति यावदेव ।
 यास्यामि तावद्गतमस्य भेत्तु ।
 सेतु नदीवेग इवाभिवृद्ध ॥ ६ ॥
 ततो वतु पुष्पमय गृहीत्वा ।
 शरांस्तथा मोहकराश्च पच ।
 सोऽश्वत्थमूल ससुतोऽभ्यगच्छत् ।
 अस्वास्थ्यकारी मनस प्रजानां ॥ ७ ॥
 अथ प्रशान्त मुनिमासनस्थ ।
 पारितीर्षु भवसागरस्य ।
 विषज्य सव्य करमाद्युधात्रे ।
 क्रीडञ्जशरेणमुवाच मारः ॥ ८ ॥
 उत्तिष्ठ भो क्षत्रिय मृत्पुभीत ।
 धरस्व धर्मं त्यज मोक्षधर्म ।
 बाणैश्च * * * विनीय लोकान् ।

कुमारसम्भवम् —

तथेति शेषामिव भर्तुराज्ञाम् ।
 आदाय मूर्ध्ना मदनः प्रतस्थे ।
 ऐरावतास्फालनकर्कशेन ।
 हस्तेन पस्पृशं तदगमिन्द्र ॥ १ ॥
 तस्मिन्वने सयमिनां मुनीनां ।
 तप समाये प्रतिकूलवर्ती ।
 सकल्पयोनैरभिमानभूतम् ।
 आत्मानमाधाय मधुर्जञ्जुभे ॥ २ ॥
 दृष्टिप्रपात परिहृत्य तस्य ।
 कामः पुरः शुक्रमिव प्रयागे ।
 प्रांतेषु ससक्तनमरुशाख ।
 ध्यानास्पद भूतपतेर्विवेश ॥ ३ ॥
 स देवदारुद्रुमवेदिकायाम् ।
 शार्दूलचर्मव्यवधानवत्याम् ।
 आसीनमासन्नशरीरपात ।
 त्रियम्बक सयमिन ददर्श ॥ ४ ॥
 स्मरस्तथाभूतमयुग्मनेत्र ।
 पश्यन्तदूरान्मनसाप्यधृष्यम् ।
 नालक्ष्यत्साध्वससन्नहस्त ।
 स्रत शर चापमपि स्वहस्तात् ॥ ५ ॥
 तां वीक्ष्य सर्वावयवानवद्यां ।
 रतेरपि ऋषीपदमादधानाम् ।
 जितेद्विद्ये शूलिनि पुष्पचापः ।
 स्वकार्यसिद्धिं पुनराशशसे ॥ ६ ॥
 उमापि नीलालकमध्यशोभि ।
 विस्त्रसयती नवकर्णिकारम् ।
 चकार कर्णच्युतपल्लवेन
 मूर्ध्ना प्रणाम वृषभध्वजाय ॥ ७ ॥
 कामस्तु बाणावसर प्रतीक्ष्य ।
 पतगवद्बहिमुख विविक्षु ।
 उमासमक्ष हरबद्धलक्ष्य ।
 शरासनज्यां मुहुराममर्शं ॥ ८ ॥
 प्रतिग्रहीतु प्रणथिप्रियत्वात् ।
 त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च ।
 समोहन नाम च पुष्पधन्वा ।

लोकान् परान् प्राप्नुहि वासवस्य ॥ ९ ॥
 पथा हि निर्यातुमय यशस्यो ।
 यो वाहित पूर्वतमेनरेन्द्रे ।
 जातस्य राजर्षिकुले विशाले ।
 भैक्षकमश्लाघ्यमिदं प्रपत्तु ॥ १० ॥
 अथाद्य नोत्तिष्ठसि निश्चितात्मा ।
 भव स्थिरो मा विमुच्य प्रतिज्ञां ।
 मयोद्यतो ह्येष शर स एव ।
 यः सूर्यके मीनरिपौ विमुक्त ॥ ११ ॥
 पृष्ट स चानेन कथंचिद्विद ।
 सोमस्य नम्राप्यभवद्विचित्त ।
 स चाभवच्छांतनुग्रवतत्र ।
 क्षीणे युगे किं वत दुर्बलोन्य ॥ १२ ॥
 तत्क्षिप्रमुत्तिष्ठ लभस्व सत्ता ।
 बाणो ह्ययं तिष्ठति लेलिहान ।
 प्रियाभिधेयेषु रतिप्रियेषु ।
 यं चक्रवाकेश्वरपि नात्सुजामि ॥ १३ ॥
 Buddhacharita, Canto XIII

Readers of Raghuvans'a will well remember Kālidāsa's peculiar way of using the Periphrastic Perfect and Future A parallel of this is also found in Buddhacharita

बुद्धचरितम् —
 यथावदेन दिवि देवसधा
 दिव्यैर्विशेषैर्महया च चक्रः ॥
 Canto VI, 58.

धनुष्यभोध समधत्त बाणम् ॥ ९ ॥
 अथेद्विद्यक्षोभमयुग्मनेत्र ।
 पुनर्वशीत्वाद्बलवन्निगूह्य ।
 हेतु स्वचेतोविकृतेर्द्विदुः ।
 दिशामुपातेषु ससर्जं दृष्टि ॥ १० ॥
 स दक्षिणापांगनिविष्टमुष्टि ।
 नतासमाकुचितसव्यपादम् ।
 ददर्श चक्रीकृतचारुचाप ।
 प्रहर्तुमभ्युद्यतमात्मयोनि ॥ ११ ॥
 तप परामर्शविद्वद्धमन्यो ।
 भ्रूभगदुष्टेक्ष्यमुखस्य तस्य ।
 स्फुरन्नुदार्चिं सहसा तृतीयाद् ।
 अक्ष्ण कृशानु किल निष्पपान ॥ १२ ॥
 क्रोध प्रभो सहर सहरोते ।
 यावद्भिर खे मरुतां चरति ।
 तावत्स बह्निर्भवनेत्रजन्मा ।
 भस्मावशेष मदन चकार ॥ १३ ॥
 Kumarsambhava, Canto III.

रघुवशम् —
 त पातयां प्रथममास पपात पश्चात् ॥
 Canto IX, 61
 प्रभ्रशयां यो नहुषं चकार ॥
 Canto XIII, 36.
 सयोजयां विधिवद्दास समेतबधुः ॥
 Canto XVI, 86

Some extracts illustrating the use of similar words and phrases are cited below

बुद्धचरितम् —
 क्वचित्प्रद्व्यौ विललाप च क्वचित् ।
 क्वचित्प्रचस्त्राल पपात च क्वचित् ।
 Canto VI 68
 तथापि पापीयसि निर्जिते गते ।
 दिशः प्रसेदु प्रबभौ निशाकर ।
 दिवो निपेतुशुवि पुष्पवृष्टय ।
 मराज योषेव विकल्मषा निशा ॥
 Canto XIII, 73
 वाता ववुः स्पर्शसुखा मनोज्ञा ।
 दिव्यानि वासांस्यवपातयत ।
 सूर्य स पुवाभ्यधिक चकाशे ।
 जञ्जवाल सौम्याचिरनीरितोऽग्नि ॥
 Canto I, 41.

रघुवशम् —
 क्वचित्पथा सचरते सुराणां ।
 क्वचिद्वनानां पततां क्वचिच्च ॥
 Canto XIII, 19.
 दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखा ।
 प्रदक्षिणाचिह्नविरागिराद्वे ।
 बभूव सर्व शुभशसि तत्क्षण ।
 भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ॥
 Canto III, 14.

And many more may be added to this list.

'The Buddhacharita,' observes Prof Cowell, 'is always called in the colophons of the different sargas a *माहाकाव्य*, and it certainly shows an acquaintance on its author's part with the teachings of the Hindu rhetoric or *अलंकार*. Of course the common figures *उपमा*, *उत्प्रेक्षा*, and *रूपक* occur everywhere, but we find now and then specimens of more elaborate ornament.' He then gives some specimens of the elaborate *Alankāras*, and finally makes some remarks on Asvaghosha's style. He says,—'The style of the poem is peculiar, as there is often a mixture of roughness and rusticity which unless we can account for it by corruption of the text, does not harmonise with the frequent attempts at ornament and polish. Some of the words used are only known to us from the early lexicons, as the *अमरकोश*, &c., as *e. g.* *विष्णु*, 'a dwelling,' which is a favourite word, and occurs four or five times (this word is also found in Kālidāsa's *Sakuntalā*, A IV), *कृशन*, 'gold,' II. 36, *गत्री*, 'a cart,' (*अमरकोश*, *हेमचन्द्र*), II 22, *लेख्यभ*, (*अमरकोश*), 'Indra,' VII 8, I may also mention *सम्राटक*, 'a charioteer,' III 27, which occurs in Pali, *रसा*, 'the earth,' V 5, *याचितक*, 'a loan,' XI 22, which occurs in Pāṇini IV 4, 21, and the *अमरकोश*, *दुष्कुह*, I 18, 'hard to be roused to wonder,' 'incredulous,' which occurs in the *हिंयावदान*, *धर्मन्* is used for *धर्म*, 'custom,' in V. 77 and XI 20.'

Thus then the universally settled form of the Sanskrit language, or in other words, the highest civilised form of the spoken language of India in which Asvaghosha wrote his works, was the same at a time when the celebrated poets Bhāsa, Saumilla and Kālidāsa also produced their works. There is no absolute certainty about the date of Asvaghosha. *Rev S. Beal says,—'I am told, however, by Mr Rockhill, that Tārānātha, the Tibetan author, mentions three writers of the name of Asvaghosha, the 'great one,' the younger, and one who lived in the eighth century A. D. This

* See Prof. Cowell's preface to *Buddhacharita*, p V, also *Sacred Books of the East*, Vol XIX, introduction, p. XXXI.

latter, who was also called Cura, could not be the Asvaghosha of our text, as the translation of the work dates from the fifth century. And as of the other two, one was called 'the great' and the other 'the younger,' it admits of little question that the बोधिसत्त्व would be the former. But in the Chinese Catalogues, so far as I have searched, there is no mention made of more than one writer called by this name, and he is ever affirmed to have been a contemporary of कनिष्क. In the boo' Tsah-pao-tsang-king. for instance, there are several tales told of the Kandan 'Kanika' or 'कनिष्क,' in one of which Asvaghosha is distinctly named as his religious adviser and he is there called the 'बोधिसत्त्व,' so that, according to evidence derived from Chinese sources, there seems no reason to doubt that the author of the book I have here translated was living at and before the time of the Scythian invasion of मगध under the Kandan king कनिष्क. With respect to the date of this monarch we have no positive evidence, the weight of authority sides with those who place him at the beginning of the Saka period, *i. e.* A. D. 78. It is therefore possible that the emissaries who left China A. D. 64 and returned A. D. 67 may have brought back with them some knowledge of the work of Asvaghosha called Fo-pen-hing, or of the original then circulating in India, on which अश्वघोष founded his poem. It is singular at least that the work of अश्वघोष is in five chapters as well as that translated by Ku-fa-lan. In any case we may conclude that as early as about A. D. 70, if not before, there was in India a work known as बुद्धचरित * (Fo-pen-hing)'

From the above extract it is clear that there is no positive certainty about the date of कनिष्क, and the date of अश्वघोष which is dependent on the date of कनिष्क is also uncertain. From the internal evidence of the style and language in which both the poets wrote their works, and of which some parallels have been quoted above, we may conclude that Asvaghosha may possibly have lived a century or 75 years before Kālidāsa and may have

* Sacred Books of the East, Vol XIX Introduction p XXXI.

been a contemporary of Bhāsa, Saumilla and others whom Kālidāsa in the prelude of his *Malavikāgnimitra* gives distinct priority. And it is also probable, nay almost certain, that Kālidāsa, the Virgil of the Hindus, may have lived some 40 years before the beginning of the Christian era, and may also have been a poet in the imperial court of Vikramāditya who began to reign from 57. B. C * And thus the theory of Sir William Jones carries weight and importance since it is supported by the facts and arguments which we have given above. The tradition which, as we learn from Mallinātha's commentary on the 14th [verse of Meghadūta, was current at his time, may now hardly be relied on.

Poona, } G. R. N.
25th December 1893. }

* See pages 51—52 of this Introduction. In his 'First century account of birth of Buddha,' J B B R A S Vol XVIII p 287, Dr Peterson says that 'Asvaghosha was a convert to Buddhism in manhood, and his verses are saturated with the legends of the Mahābhārata and the Rāmāyana, and with the style of Kālidāsa * * * * Whether it is possible to prove that he had read Kālidāsa's poems is a problem in which I invite your collaboration.'

बुद्धचरितम् —

धर्मार्थकामा विषय मिथोऽन्य
न वेशमाचक्रमुरस्य नीत्या ॥

I 13.

तस्मात्प्रमाणं न वयो न कालः
कश्चित्कचिच्छैष्ठ्यमुपैति लोके ।
राज्ञामुषीणां च हितान तानि
कृतानि पूर्वैरकृतानि पुनै ॥

B I 52

महात्मानि त्वय्युपपन्नमेत—
अग्न्यातिथौ त्याग्निनि धर्मकामे ॥

B I 62

An echo of Raghuvansa XVII 57.

न धर्ममर्थकामाभ्या बवाधे न च
तेन तौ । नार्थ कामेन कामं वा
सोऽथन सदृशस्त्रिषु ॥
तेजसां हि न वय समीक्ष्यते ॥

R XI I.

सर्व सखे त्वय्युपपन्नमेतत् ॥

Ku III 12

Compare also the verses I 70, I 71, I 72 of the Buddhacharita with V 5, V 6, V. 7, V 8, V 9, V 10 and V. 11, of the Raghuvansa of Kālidāsa

अथ
मेघदूतम्
संजीविन्या समेतम् ।

—०-०-०—
पूर्वमेघः ।
—०-०—

मातापितृभ्यां जगतो नमो वामार्धजानये ।

सद्यो दक्षिणदृक्पातसकुचद्वामदृष्टये ॥

अन्तरायतिमिरापशान्तये शान्तपानमचिन्त्यवैभवम् ।

तं नरं वपुषि कुञ्जर मुखे मन्महे किमपि तुन्दिलं महः ॥

शरणं करवाणि कामदं ते चरणं वाणि चराचरोपजीव्यम् ।

करुणामसृणैः कटाक्षपातैः कुरु मामम्ब वृत्तार्थसार्थवाहम् ॥

इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया ।

नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते ॥

“आशीर्निमास्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्” इति शा-
स्त्रात्काव्यादौ वस्तुनिर्देशात्कथा प्रस्तौति—

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः

शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।

यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु

स्निग्धच्छायातरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ॥ १ ॥

१. कश्चिदिति ॥ स्वाधिकारात्स्वनियोगात्प्रमत्तोऽन्वहितः ॥ “प्रमादो-
ऽनवधानत्वा” इत्यमरः । “जुगप्साविरामप्रमादार्थानामुपसख्यानम्” इत्यपा-
दानत्वम् । तस्मात्प्रमत्तः ॥ अत एवापराधोद्धृताः । कान्ताविरहेण गुरुणा दुर्भरे-

१ A certain *Yaksha*, swerving from his duty and being therefore spoiled of his glories by his lord's curse, of an year's duration, aggravated by separation from his wife made his abode amongst the hermitages on *Ramagiri* having dense *Nameru* trees and waters sanctified by ablutions of *Janaka's* daughter (*Sita*)

1. W. C1 C2. K1. K2. G1. G2. N.R. M. स्वाधि-
कारप्रमत्तः for स्वाधिकारात्प्रमत्तः. G2. K1. K2. W. N. M.
वर्षभोग्येन for वर्षभोग्येण.

तस्मिन्नद्रौ कविचिद्वलविप्रयुक्तः स कामी
 नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।
 आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
 वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥ २ ॥

ष । दुस्तरेणेत्यर्थः ॥ “गुरुस्तु गीष्पतौ श्रेष्ठे गुणौ पितरि दुर्भरे” इति शब्दार्ण-
 वे ॥ वर्षं सवत्सरं भोग्येन ॥ “कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे” इति द्वितीया । “अ-
 त्यन्तसयोगे च” इति समासः । “कुमति च” इति णत्वम् ॥ भर्तुः स्वामिनः
 शापेन । अस्तगमितो महिमा सामर्थ्यं यस्य सोऽस्तगमितमहिमा ॥ अस्तमिति
 मकारान्तमव्ययम् । तस्य “द्वितीया—” इति योगविभागात्समासः ॥ क-
 श्चिदनिर्दिष्टनामा यक्षो देवयोनिर्विशेषः ॥ “विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोऽगन्धर्वकिन-
 राः । पिशाचो गृह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः” इत्यमरः ॥ जनकतनयाया-
 सीतायाः स्नानैरवगाहनैः पुण्यानि पवित्राण्युदकानि येषु तेषु । पावनेष्वित्यर्थः ॥
 छायाप्रधानास्तरवश्छायातरवः ॥ शाकपार्थिवादित्वात्समासः ॥ स्निग्धाः सान्द्रा
 श्छायातरवा नमेरुवृक्षा येषु तेषु । वसतियोग्येष्वित्यर्थः ॥ “स्निग्धं तु मृच्छणे सा-
 न्द्रं” इति । “छायावृक्षां नमेरुः स्यात्” इति च शब्दार्णवः ॥ रामगिरेश्चित्र-
 कूटस्याश्रमेषु वसतिम् ॥ “वह्निवस्यतिभ्यश्च” इत्यौणादिकोऽतिप्रत्ययः ॥ च-
 क्रं कृतवान् ॥ अत्र काव्ये तत्र तत्र नगनगरार्णवादिवर्णनासम्भवात्समहाकाव्य-
 त्वः । रत्नो विप्रलम्भाख्यः शृङ्गारः । तत्राप्यनुमादादस्थाः । अतएवैकत्रानवस्था-
 न सूचितमाश्रमेष्विति बहुवचनेन ॥ सीता प्रति रामस्य हनूमत्सदृशं मनसि
 निधाय मेघसदृशं कविः कृतवानित्याहुः ॥ अत्र काव्यं सर्वत्र मन्दा-
 क्रान्तावृत्तम् । तदुक्तम्— “मन्दाक्रान्ता जलविषड्यैर्भ्रौ नतौ ताद्रू-
 चेद” इति ॥

२ तस्मिन्निति ॥ तस्मिन्नद्रौ चित्रकूटाद्रौ । अवलाविप्रयुक्तं क्रान्तावि-
 रही । कनकस्य वलयः कटकम् ॥ “कटं वलयोऽस्त्रियाम्” इत्यमरः ॥
 तस्य भ्रंशेन पातनं रिक्तं, शून्यः प्रकोष्ठः कूर्परादधःप्रदेशो यस्य स तथोक्तः ॥
 “कक्षान्तरे प्रकोष्ठः स्यात्प्रकोष्ठः कूर्परादधः” इति शाश्वतः ॥ विरहदुःखा-

2 Separated from his wife, with his fore-arm bare on account of the slipping of the gold bracelet, that pining *Yaksha*, having passed some months on that mountain, beheld, on the first day of *Āshadha* a cloud clinging around the top of the mountain, and as fine-looking as an elephant giving side-blows with his tusks in his sports of butting at a bank

2. K2. M प्रथमदिवसे for प्रथमदिवसे.

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेत्तः

कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥

त्क्रुश इत्यर्थः । कामी कामुकः स यक्षः । कतिचिन्मासाव् । अष्टौ मासानि-
त्यर्थः । “ शेषान्मासान्गमय चतुर ” इति वक्ष्यमाणत्वात् ॥ नीत्वा यापयित्वा ।
आषाढानक्षत्रेण युक्ता पौर्णमास्याषाढी ॥ “ नक्षत्रेण युक्त. काल ” इत्यण् ।
“ टिड्ढाणञ् ” इत्यादिना ङीप् ॥ साषाढ्यस्मिन्पौर्णमासीत्याषाढी मासः ॥
“ सास्मिन्पौर्णमासीति सज्ञायाम् ” इत्यण् ॥ तस्य प्रथमदिवसे अश्लिष्टसा-
नुमाक्रान्तकटम् । वप्रक्रीडा उत्त्वातकेलयः ॥ “ उत्त्वातकेलिः क्रीडाद्यैवप्र-
क्रीडा निगद्यते ” इति शब्दार्णवे ॥ तासु परिणतस्तिर्यग्दन्तप्रहारः ॥ “ ति-
र्यग्दन्तप्रहारस्तु गजः परिणतो मत ” इति हलायुजः ॥ स चासौ गजश्च स
इव प्रेक्षणीयः दर्शनीयः त मेघ ददर्श ॥ गजप्रेक्षणीयमित्यत्रेवलोपाह्वसोपमा ॥
कचित् “ आषाढस्य प्रथमदिवसे ” इत्यत्र “ प्रत्यासन्ने नभसि ” इति व-
क्ष्यमाणनभोमासप्रत्यासत्त्यर्थ “ प्रथमदिवसे ” इति पाठ कल्पयन्ति तदस-
गतम् । प्रथमातिरेके कारणाभावात् । नभोमासस्य प्रत्यासत्त्यर्थमित्युक्तमिति
चेन्न । प्रत्यासत्तिमात्रस्य मासप्रत्यासत्त्यैव प्रथमदिवसस्याप्युपपत्तेः । अत्यन्तप्र-
त्यासत्तेरुपयोगाभावेनाविवक्षितत्वात् । विवक्षितत्वे वा स्वपक्षेऽपि प्रथमदिव-
सान्तिमक्षणे मेघदर्शनकल्पनाया प्रमाणाभावेन तदसम्भवात् । प्रत्युतास्मत्पक्ष
एव कुशलसदेशस्य भाव्यनर्थप्रतीकारार्थस्य पुरत एवानुमानमुक्तं भवतीत्युप-
यागासाद्धिः ॥ ननु नभोत्तस्य नाय विवेक इति चेन्न । उन्मत्तस्य नानर्थस्य प्रती-
कारार्थं प्रवृत्तिरूपीति सदेश एव माभूत् ॥ तथा च काव्यारम्भ एवाप्रसिद्धः
स्यादित्यहो मूलच्छेदी पाण्डित्यप्रकर्षः । कथं तर्हि “ शापान्तो मे भुजगशय-
नादुत्थिते शाङ्गपाणौ ” इत्यादिना भगवत्प्रबोधावधिकस्य शापस्य मासचतु-
ष्टयावशिष्टस्योक्तिः । दशदिवसाधिक्यादिति चेत्स्वपक्षेऽपि कथं सा विशतिदि-
वमैर्न्यूनत्वादिति सतोष्टव्यम् । तस्मादीषद्वैषम्यमविवक्षितमिति सुष्ठूक्तं “ प्र-
थमदिवसे ” इति ॥

३ तस्येति ॥ राजानो यक्षाः ॥ “ राजा प्रभो नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रिय-
शक्रयोः ” इति विश्वः ॥ राज्ञा राजा राजराजः कुबेरः ॥ “ राजराजो धना-

3 Having some how or other placed himself in front of the cloud the cause of the production of longing, the follower of the king of the *Yakshas* meditated long with suppressed tears at the sight of a cloud the heart even of a man who is happy is agitated,—what then of him when the person longing for embraces round his neck is far away

3 W. K2 G1 G2. R. M. केतुकाधानं, K1. N. M. केतकीधानं for कौतुकाधानं.

प्रत्यासन्ने नमसि दयिताजीवितालम्बनार्थी

जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम् ।

स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घ्याय तस्मै

प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

धिपः ” इत्यमरः । “ राजाह सखिभ्यष्टच् ” इति टच्प्रत्यय ॥ तस्यानुचरो यक्षः । अन्तर्बाष्पो धीरादात्तत्वादन्तःस्तम्भिताश्रुः सत् । कौतुकाधानहेतोरभिलाषोत्पादकारणस्य ॥ “ कौतुकं चाभिलाषस्यादत्मवे नमैर्हर्षयोः ” इति विश्वः ॥ तस्य मेघस्य पुरोऽग्रं कथमपि । गरीयसा प्रयत्नेनेत्यर्थः ॥ “ ज्ञान-हेतुविवक्षायामध्यादि कथमव्ययम् । कथमादि तथाप्यन्त यत्नगौरवबाढयोः इत्युज्ज्वलः ॥ स्थित्वा चिरं दध्यौ चिन्तयामास ॥ “ध्ये चिन्तायाम् ” इति धातोर्लिट् ॥ मर्नाविकारोपशमनपर्यन्तमिति शेषः ॥ विकारहेतुमाह—मेघालोक इति ॥ मेघालोके मेघदर्शने सति सुखिनाऽपि प्रियादिजनसगतस्यापि चेत-श्चित्तमन्यथाभूता वृत्तिर्व्यापारो यस्य तदन्यथावृत्ति भवति । विकृतिमापद्यत इत्यर्थः । कण्ठाश्लेषप्रणयिनि कण्ठालिङ्गनार्थिनि जन दूरे संस्था स्थितिर्यस्य तस्मिन्दूरसंस्थे सति किं पुनः । विरहिणः किमुत वक्तव्यमित्यर्थः । विरहिणो मेघसदर्शनमुद्दीपनं भवतीति भावः ॥ अर्थान्तरन्यासोऽङ्कारः । तदुक्तं दण्डिना— “ ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासा वस्तु प्रस्तुत्य किञ्चन । तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः ” इति ॥

अथ समाहितान्तःकरणः सन् किं कृतवानित्याह—

४. प्रत्यासन्न इति ॥ स यक्षः । यश्चिरं दध्यौ स इत्यर्थः । नमसि श्रावणे ॥ “ नमः खं श्रावणो नभाः ” इत्यमरः ॥ प्रत्यासन्न आषाढस्यानन्तरं सनिकृष्टे । प्राप्ते सतीत्यर्थः । दयिताजावितालम्बनार्थी सत् । वर्षाकालस्य विरहदुःखजनकत्वाद् “ उत्पन्नानर्थप्रतीकारादनर्थोत्पत्तिप्रतिबन्ध एव वरम् ” इति न्यायेन प्रागेव प्रियाप्राणधारणोपायं चिकीर्षु इत्यर्थः । जीवनस्योदकस्य मूतं पट-बन्धो वस्त्रबन्धो जीमूतः ॥ पृषोदगादित्वात्साध । “ मूतं स्यात्पटबन्धेऽपि ” इति रुद्रः ॥ तेन जीमूतं जलयरेण प्रयोज्येन ॥ स्वकुशलमयीं स्वक्षेमप्रधानां

4 Desirous of sustaining the life of his wife, as the month of Śrāvana was drawing nigh, and therefore intending to send tidings of his welfare (to her) by the cloud, the Yaksha (himself) delighted, bade welcome, in words full of affection, to the cloud to whom an offering of fresh Kutaya flowers had been made

4. W. K1. GI G2. R. N. M. जीवितालम्बनार्थं, M. जीविता-लम्बनार्थाम् for जीवितालम्बनार्थी.; K2. M. संप्रत्यग्रैः. for स प्रत्यग्रैः.

धूमज्योतिःसलिलमरुतां संनिपातः क मेघः
संदेशार्थाः क पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

प्रवृत्तिं वार्ताम् ॥ “ वार्ता प्रवृत्तिवृत्तान्तः ” इत्यमरः ॥ हारयिष्यन्प्रापयिष्यन्
“ लट् शेषे च ” इति चकारात्क्रियार्थक्रियोपपदाद्लट्प्रत्ययः । जीवनार्थं कर्म
जीवनप्रदेनैव कर्तव्यमिति भावः ॥ हक्रोरन्यतरस्याम् ” इति कर्मसंज्ञाया विक-
ल्पात् । पक्षे कर्तरि तृतीया ॥ प्रत्यग्रैरभिनवैः कुटजकुमुमैर्गिरिमल्लिकाभिः ॥
“ कुटजो गिरिमल्लिका ” इति इलायुधः ॥ कल्पितार्थाय कल्पितोऽनुष्ठितोऽर्थः ।
पूजाविधिर्यस्मै तस्मै ॥ “ मूल्ये पूजाविधौवर्धः ” इत्यमरः ॥ तस्मै जीमूताय ॥
“ क्रियाग्रहणमपि कर्तव्यम् ” इति सप्रदानत्वाच्चतुर्थी ॥ प्रीतिप्रमुखानि प्रीतिपू-
र्बकाणि वचनानि यस्मिन्कर्मणि तत्प्रीतिप्रमुखवचनं यथा तथा । शोभनमा-
गतं स्वागतं स्वागतवचनं प्रीतं सन्व्याजहार । कुशलागमनं पप्रच्छेत्यर्थः ॥
नाथेन त्वत्र “ प्रत्यासन्ने नभसि ” इत्यत्र समाधानेन “ प्रत्यासन्ने मनसि ” इति
पाठः कल्पितः । प्रत्यासन्ने प्रकृतिमापन्ने सतीत्यर्थः । यस्तु तन्नेव पूर्वपाठवि-
रोधः प्रदर्शितः सोऽस्माभिः “ आषाढस्य प्रथमदिवसे ” इत्येतत्पाठविकल्प-
समाधानं नैव समाधायि ॥ ननु चेतनसाध्यमर्थं कथमचेतनेन कारयितुं प्रवृत्त
इत्यपेक्षया कविः समाधत्ते—

५. धूमेति ॥ धूमश्च ज्योतिश्च सलिलं च मरुद्वायुश्च तेषां संनिपातः स-
न्निपातो मेघः क । अचेतनत्वात्संदेशानर्ह इत्यर्थः । पटुकरणैः समर्थेन्द्रियैः ॥
“ करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि ” इत्यमरः ॥ प्राणिभिश्चेतनैः ॥ “ प्रा-
णी तु चेतनो जन्मी ” इत्यमरः ॥ प्रापणीयाः प्रापयितव्याः । संदिश्यन्त इति
संदेशास्त एवार्थाः क । इत्येवमौत्सुक्यादिष्टार्थोक्तत्वात् ॥ “ इष्टार्थोक्त
उत्सुकः ” इत्यमरः ॥ अपरिगणयन्नविचारयन्गुह्यको यक्षस्तं मेघं ययाचे याचि-
तवात् ॥ “ याच याच्नायाम् ” ॥ तथाहि । कामार्त्ता मदनातुराश्चेतनाश्चाचे-
तनाश्च तेषु विषये प्रकृतिकृपणाः स्वभावदीनाः । कामान्धानां युक्तायुक्तविवेकश-
ून्यत्वादचेतनयाच्ना न विरुध्यत इत्यर्थः ॥ अत्र मेघसंदेशयोर्विरूपयोर्घटनाद्वि-

5 Where (on one hand) a cloud, a conglomeration of smoke, fire, water and wind? and where (on the other) the matter of messages fit to be conveyed by animate beings (men) with able limbs? in his eagerness not considering this (incongruity) the *Yaksha* made his request to it, for those who are overcome by love are naturally incapable of discriminating between animate and inanimate objects

5. M. प्रणयरूपणाः for प्रकृतिकृपणाः

मेघदूतम् ।

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां

जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।

तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं

याच्या मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

षमालकार तदुक्तम्—“ विरुद्धकार्यस्यात्पत्तिर्विज्ञानार्थस्य वा भवेत् । विरूपव-
टना चासौ विषमालकृतिस्त्रिधा ” इति । सा चार्थान्तरन्यासानुप्राणिता तत्सम-
र्थकत्वेनैव चतुर्थपादे तस्योपन्यासात् ॥ सप्रति याच्याप्रकारमाह—

६ जातमिति ॥ हे मेघ । त्वा भुवनेषु विदिते भुवनविदिते ॥ “ निष्ठा ”
इति भूतार्थे क । “ मतिबुद्धि—” इत्यादिना वर्तमानार्थत्वेऽपि “ क्तस्य च व-
र्तमाने ” इति भुवनशब्दस्य षष्ठ्यन्ततानियमात्समासो न स्यात् । “ क्तेन च
पूजायाम् ” इति निषेधात् । पुष्कराश्चावर्तकाश्च केचिन्मेघानां श्रेष्ठास्तेषां वशे
जातम् । महाकुलप्रसूतमित्यर्थः । कामरूपमिच्छाधीनविग्रहम् । दुर्गादिसंचारक्ष-
ममित्यर्थः । मघोन इन्द्रस्य प्रकृतिपुरुष प्रधानपुरुष जानामि । तेन त्वत्प्रभुत्वा-
भिजात्यादिगुणयोगित्वेन हेतुना विधिवशाद्देवायत्तत्वात् ॥ “ विधिर्विधाने दैवे
च ” इत्यमरः ॥ वशमायत्ते ॥ “ वशमिच्छाप्रभुत्वयोः ” इति विश्वः ॥ दूरे
बन्धुर्यस्य स दूरबन्धुर्वियुक्तभार्योऽहं त्वय्यर्थित्वं गतः ॥ ननु याचकस्य याच्या-
या याच्यगुणीत्कर्षः कुत्रोपयुज्यत इत्याशङ्क्य देवाद्याच्याभङ्गेऽपि लाघवदोषा-
भाव एवोपयोग इत्याह—याच्ञेति ॥ तथाहि अधिगुणेऽधिकगुणे पुंसि विषये
याच्या मोघा निष्फलापि वरमीषत्प्रियम् । दातुर्गुणाढ्यत्वात्प्रियत्व याच्यावै-
फल्यादीषत्प्रियत्वमिति भावः ॥ अधमे निर्गुणे याच्या लब्धकामापि सफलापि
न वरम् । ईषत्प्रियमपि न भवतीत्यर्थः ॥ “ देवादृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीब मना-
क्प्रिये ” इत्यमरः ॥ अर्थान्तरन्यासानुप्राणितः प्रयोऽलकारः । तदुक्तम् दण्डिना—
“ प्रेयः प्रियतराख्यानम् ” इति ॥ एतदाद्ये पादत्रये चतुर्थपादस्थेनार्थान्तर-
न्यासेन पञ्जीवितमिति सुव्यक्तमेतत् ॥

6 I know thee (to be) born in the world-renowned race of the
Pushkaras and the *Āvartakas* (and to be) India's chief officer, wearing
any shape at will, therefore I, separated from my relation (wife) by
the power of fate, have (preferred myself to) become thy suppliant
better a request (though) unsuccessful (made) to a worthy person than
one (made) to a base one and successful

6. P. M. पुष्कलावर्तकानाम् for पुष्करावर्तकानाम्. M.
वंध्या for मोघा

सैतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः

संदेशं मे हर धनपतिक्रोधाविश्लेषितस्य ।

गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां

बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः

प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसत्यः ।

कः संनद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां

न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥ ८ ॥

७. सतप्तानामिति ॥ हे पयोद । त्वं सतप्तानामातपेन वा प्रवासविरहेण वा सञ्चरितानाम् ॥ “ सतापः सञ्चर समौ ” इत्यमरः ॥ शरणं पर्यादानेनात-
पस्विन्नानां प्रोषितानां स्वस्थानप्रेरणया च रक्षकोऽसि ॥ “ शरणं गृह्णति शत्रोः ” इ-
त्यमरः ॥ तत्तस्मात्कारणाद्धनपते कुचेरस्य क्रोधेन विश्लेषितस्य प्रियाया वि-
योजितस्य मे मम संदेशं वार्तां प्रियाया हर । प्रिया प्रति नयेत्यर्थः ॥ संबन्धसा-
मान्यं षष्ठी । संदेशहरणनावयो सतापं नुदत्यर्थः ॥ कुत्र स्थाने सा स्थिता त-
त्स्थानस्य वा किं व्यावर्तकं तत्राह—गन्तव्येति ॥ बहिर्भूतं बाह्यम् ॥ “ बहि-
र्देवपञ्चजनेभ्यश्च ” इति ऊय ॥ बाह्य उद्याने स्थितस्य हरस्य शिरसि या च-
न्द्रिका तथा धौतानि निर्मलानि हर्म्याणि धनिकभवनानि यस्यां सा तथो-
क्ता ॥ “ हर्म्यादि धनिना वासः ” इत्यमरः ॥ अनेन व्यावर्तकमुक्तम् ॥ अ-
लका नामालकेति प्रसिद्धा यक्षेश्वराणां वसतिः स्थानं ते तव गन्तव्या । त्वया
गन्तव्येत्यर्थः ॥ “ कृत्यानां कर्तरि वा ” इति षष्ठी ॥

मदर्थं प्रस्थितस्य ते पथिकाङ्गनाजनाश्वासनमानुषाङ्गिक फलमित्याह—

८. त्वामिति ॥ पवनपदवीमाकाशमारूढं त्वाम् । पञ्चान्वृतं गच्छन्ति ते
पथिकाः ॥ “ पथः षक्च ” इति षक्प्रत्ययः ॥ तेषां वनिताः प्राप्ति-

7 Thou art, O cloud, the shelter of the afflicted, convey, therefore, to my beloved a message from me separated (from her) by the anger of the god of wealth thou shouldst repair to the abode of the lord of the *Yakshas*, *Alakā* by name, having palaces illumined by the moonlight (issuing) from the head of *Siva* residing in the outer garden

8 The women whose husbands are abroad, sustaining themselves by the hope (of their return), will with the ends of their curls lifted

7. M. धनपतेः क्रोधं for धनपतिक्रोधं.

8. P. W. B C2 G2. K1. N. R. M. आश्वसन्त्यः for आश्वसत्यः ; P. अयमिव for अहमिव.

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः ।

गर्भाधानक्षणपरिचयान्ननमाबद्धमालाः

सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥९॥

भर्तृका ॥ प्रत्ययात्प्रियागमनविश्वासात् ॥ “ प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहे-
तुषु ” इत्यमरः ॥ आश्वसत्यो विश्वसिताः ॥ श्वसिधातोः शन्नन्तात् “ उभितश्च ” इति
ङीप् ॥ तथोद्गृहीतालकान्ता दृष्टिप्रसारार्थमुन्नम्य धृतालकाग्राः सत्यं प्रेक्षि-
ष्यन्ते । अत्युत्कण्ठतया द्रक्ष्यन्तीत्यर्थः ॥ मदागमनेन पथिकाः कथमागमिष्य-
न्तीत्यत्राह—तथाहि । त्वयि संनद्धे व्यापृते सति विरहेण विधुरा विवशा जायां
क उपेक्षेत ॥ न कोऽपीत्यर्थः ॥ अन्योऽपि मद्द्वयतिरिक्तोऽपि यो जनोऽहमिव
परार्थीनवृत्तिः परायत्तजीवनको न स्यात् । स्वतन्त्रस्तु न कोऽप्युपेक्षेतेति
भावः ॥ अत्रार्थान्तरन्यासोऽलंकारः ॥ तदुक्तम्— “ कार्यकारणसामान्यविशे-
षाणां परस्परम् ॥ समर्थेन यत्र सोऽर्थान्तरन्यास उदाहृतः ” इति लक्षणात् ॥

निमित्तान्यपि ते शुभानि दृश्यत इत्याह—

९. मन्द मन्दमिति ॥ अनुकूलपवनो वायुस्त्वां मन्दं मन्दम् । अतिम-
न्दमित्यर्थः ॥ अत्र कथञ्चिपीप्सायामेव द्विरुक्तिर्निर्वाह्या । “ प्रकारे गुणव-
चनस्व ” इत्येतदाश्रयणे तु कर्मधारयवद्भावं सुब्लुकि मन्दमन्दमिति स्यात् ।
तदेवाह वामनः—“ मन्द मन्दमित्यत्राप्रकारार्थेद्विर्भावः ” इति ॥ यथा सदृश-
म् । भाविफलानुरूपमित्यर्थः ॥ “ यथा सादृश्ययोग्यत्वरीप्सास्वार्थानतिक्रमे ”
इति यादवः ॥ नुदति प्रेरयति । अयं सगन्धः सगर्वः । सबन्धीति केचित् ॥
“ गन्धो गन्धक आर्मादे लेशे सबन्धगर्वयोः ” इत्युभयत्रापि विश्वः ॥ ते तव
वामो वामभागस्थः ॥ “ वामस्तु वक्रं रम्ये स्यात्सव्ये वामगतौऽपि च ” इति

up, behold thee borne on the wind's path (i e the sky) when thou
art soaring in the sky, what other man, whose life might not be
dependent upon another (man) as mine is, would leave his wife
(alone) distressed by separation

9 A favourable breeze is driving thee very gently and auspiciously
and this proud *Chataka* is warbling sweetly on thy left side, the
female cranes too, arranged in wreathes in the sky in order to experi-
ence the happiness of gestation, are sure to wait upon thee (who art so)
lovely to the sight

9. K2. M. तायदधुः, W. G1 G2. K1. N R. M
ते सगर्वः, M. ते सबन्धुः for ते सगन्धः ; W. M. गर्भाधानक्षमपरिचयं,
M गर्भाधानस्थिरपरिचय for गर्भाधानक्षणपरिचयात्. ; R. नयनसुखदं,
for नयनसुभग. P. reads this stanza as 10th.

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-

मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।

आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां

सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥१०॥

शब्दार्णवे ॥ चातकः पक्षिविशेषश्च मधुर आरव्य नदति व्याहरति ॥ इदं निमित्त-
हृदयं वर्तते । वार्तेष्यते चापरं निमित्तमित्याह-गर्भेते ॥ गर्भं कुक्षिस्थो जन्तुः ॥
“ गर्भोऽपवरके ह्यग्नौ सुते पनसकण्टके । कुक्षौ कुक्षिस्थजन्तौ च ” इति याद-
वः ॥ तस्याधानमुत्पादनं तदेव क्षण उत्सवः ॥ सुखहेतुत्वादिति भावः ॥
“ निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः ” इत्यमरः ॥ तस्मिन्परिचयाद-
भ्यासाद्धेतोः खे व्योम्नि । आबद्धमाला । गर्भाधानसुखार्थं त्वत्समीपे बद्धपङ्कज-
इत्यर्थः ॥ उक्तं च कर्णोदये— “ गर्भं बलाका दधतेऽभ्रयोगान्नके निबद्धा-
बलयः समन्तात् ” इति ॥ बलाका बलाकाङ्गना नयनसुभग दृष्टिप्रियं भवन्त-
नूनं सत्यं सेविष्यन्ते ॥ अनुक्लमारुतचातकशब्दितबलाकादर्शनानां शुभसूच-
कत्वं शकुनशास्त्रे दृष्टं तद्विस्तरभयान्नालेखि ॥ न च तस्या नाशाद्वतस्वलनाद्वा
निरर्थकस्त्वत्प्रयास इत्याह—

१०. तां चेति ॥ हे मेघ । दिवसानामवशिष्टदिनानां गणनायां सख्याने
वत्परामासकाम् ॥ “ तत्परे प्रसितासक्तौ ” इत्यमरः ॥ अतएवाव्यापन्नाममु-
ताम् । शापावसाने मदागमनप्रत्याशया जीवन्तीमित्यर्थः । एकः पतिर्यस्याः
सैकपत्नी ताम् । पतिव्रतामित्यर्थः ॥ “ नित्यं सपत्न्यादियुः ” इति ङीप् ।
नकारश्च ॥ भ्रातुर्मेजायां भ्रातृजायाम् । मातृवन्नि शङ्क दर्शनीयामित्याशयः ।
तां मत्प्रियामविहतगतिरविच्छिन्नगतिः सन्नवश्यं द्रक्ष्यसि चालोकयिष्यसि एव ।
तथाहि । आशातिवृष्णा ॥ “ आशा दिगतिवृष्णयोः ” इति यादवः ॥ बध्यतेऽ-
नेनेति बन्धो बन्धनम् । वृन्तमिति यावत् । आशैव बन्ध आशाबन्ध ॥ कर्त्ता ॥
प्रणयि प्रेमयुक्तमतएव कुसुमसदृशम् । सुकुमारमित्यर्थः । अत एव वि-
प्रयोगे विरहसद्यःपाति सद्याभ्रशनशीलमङ्गनानां हृदयं जीवितम् ॥ “ हृदयं जीवि-
ते चित्ते वक्षस्याकृतयोः ” इति शब्दार्णवे ॥ प्रायशः प्रायेण रुणद्धि प्रतिब-
ध्नाति ॥ अर्थान्तरन्यासः ॥ सप्रति सहायसपत्तिश्चास्तीत्याह—

10 Besides, with thy course unimpeded, thou wilt, assuredly, find
thy brother's (: e my) faithful wife engaged in counting the
remaining days, and (therefore) alive for the tie of hope generally
supports the heart of women, (which is) loving, flower-like and
liable to sink during separation.

10. K1. M. अवहितगतिः for आविहतगतिः . K2. सद्यः-
चातप्रणयि for सद्यःपाति प्रणयि. P. reads this stanza as 9th.

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
 तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः
 आ कैलासाद्विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
 संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥११॥
 आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
 वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैर्द्वितं मेखलासु ।
 काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
 स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥१२॥

११. कर्तुमिति ॥ यद्गर्जित ॥ कर्तुं ॥ महीमुच्छिलीन्ध्रामुद्भूतकन्दलिका-
 म् ॥ “ कन्दल्या च शिलीन्ध्रा स्यात् ” इति शब्दार्णवे ॥ अत एवावन्ध्या
 सफला कर्तुं प्रभवति शक्नोति । शिलीन्ध्राणा भाविमस्यसपत्तिमूचकत्वादिति
 भावः ॥ तदुक्तं निमित्तनिदाने—“ कालाभ्रयोगादुदिताः शिलीन्ध्राः सपन्नम-
 स्यः क्रियन्ति धात्रिम् ” इति ॥ तच्छ्रवणसुभगं श्रोत्रसुखम् ॥ लोकस्येति
 शेषः । ते तव गर्जितं श्रुत्वा मानरोत्फुल्लमानसे सरस्यन्मनसः । उत्सुका इति
 यावत् ॥ “ उत्क उत्मनाः ” इति निपातात्साधु ॥ कालान्तरं हिम-
 दुष्टत्वाद्विमस्य च हंसानां रोगहेतुत्वादप्यत्र गता हंसाः पुनर्वर्षासु मानसमेव ग-
 च्छन्तीति प्रसिद्धिः ॥ विसकिसलयानां मृणालाग्राणां छेदैः शकलैः पार्थेयवन्तः ।
 पथि साधु पाथेयं पथि भोज्यम् ॥ “ पथ्यतिथिवसतिस्वपतर्दञ्ज् ” ॥ तद्वन्तः ।
 मृणालाग्रशकलसम्बलवन्त इत्यर्थः । राजहंसा हंसविशेषः ॥ “ राजहंसास्तु
 तं चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः ” इत्यमरः ॥ नभसि व्योम्नि भवतस्त्वत् । आ कै-
 लासात्कैलासपर्यन्तम् ॥ पदद्वयं चैतत् ॥ सहायाः सयात्राः ॥ “ सहायस्तु
 सयात्रः स्यात् ” इति शब्दार्णवे ॥ संपत्स्यन्ते भविष्यन्ति ॥

१२. आपृच्छस्वेति ॥ प्रिय सखायप्रियसखम् ॥ “ राजाहंसखिभ्यश्च ”
 इति टच् समासान्तः ॥ तुङ्गमुन्नतं पुंसां वन्द्यैर्नराराधनीयै रघुपतिपदैः

11 And on hearing thy thunder which is pleasant to the ear and
 able to make the earth full of mushrooms shooting (from it) and
 (therefore) fertile, the swans eager for (going to) the lake *Mānasa*,
 furnished with bits of sprouts of lotus-stalks as viaticum, will become
 thy companions in the sky as far as the mount *Kailāsa*

12 Embrace and bid farewell to thy dear friend, this lofty
 mountain, bearing on his sides (slopes) the foot-marks of the lord of

11. W. G1. G2. K1. K2 R. N. M. उच्छिलीन्ध्रातपत्रां
 for उच्छिलीन्ध्रामवन्ध्याम्.

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं

संदेशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ।

खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र

क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य ॥ १३ ॥

रामपादन्यासैर्मैखलासु कटकेषु ॥ “अथ मेखला । श्रोणिस्थानेऽद्विकटके कटिबन्धेभवन्धने ” इति यादवः ॥ अङ्कित चिह्नितम् । इत्य सखित्वान्मह-
न्वात्पवित्रत्वाच्च सभावनाहम् । अमु शैल चित्रकूटाद्रिमालिङ्गचापृच्छस्व साधो
यामीत्यामन्त्रणेन सभाजय ॥ “आमन्त्रगसभाजने । आप्रच्छनम् ” इत्यमरः ॥
“आडि नुप्रच्छयोरुपसख्यानम् ” इत्यात्मनेपदम् ॥ सखित्व निर्वाहयति—
काल इति ॥ काले काले प्रति प्रावृत्कालम् । सुहृत्समागमनकालश्च का-
लशब्देनोच्यते ॥ वीप्साया द्विरुक्तिः ॥ भवतः सयोग सपर्कमेव चिरविरहज-
मुष्ण बाष्पमुष्माण नेत्रंजल च ॥ “बाष्पां नेत्रजलाष्मणोः ” इति विश्वः ॥
मुञ्चतो यस्य शैलस्य स्नेहव्यक्तिः प्रेमाविर्भावो भवति । स्निग्धाना हि चिरविर-
हसगताना बाष्पपातो भवतीति भावः ॥

सप्रति तस्य मार्गं कथयति—

१३ मार्गमिति ॥ हे जलद । तावदिदानीं कथयतः । मत्त इति शेषः ।
त्वत्प्रयाणस्यानुरूपमनुकूल मार्गमध्वानम् ॥ “मार्गो मृगपदे मासि सौम्यर्क्षेऽन्वे-
षणेऽध्वनि ” इति यादवः ॥ शृणु । तदनु मार्गश्रवणानन्तरं श्रोत्राभ्यां पेयं
पानार्हम् ॥ अतितृष्णया श्रोतव्यमित्यर्थः ॥ पेयग्रहणात्संदेशस्यामृतसाम्यं ग-
म्यते ॥ मे संदेशं वाचिकम् ॥ “संदेशवाग्वाचिक स्यात् ” इत्यमरः ॥ श्रो-
ष्यसि ॥ यत्र मार्गे खिन्नः खिन्नोऽभीक्ष्ण क्षीणबलः सच ॥ “नित्यवीप्सयोः”

the Raghus (1 e Rama) worthy of men's adoration, which (1 e the
mountain) after uniting with thee from time to time (1 e every mon-
soon) manifests his affection for thee by dropping a hot tear due to
long separation

13 First hear me describe the path suited to thy journey, along
which thou wilt have to proceed, resting thy foot (for repose) on
mountains, whenever (thou art) completely exhausted, and drinking of
the light water of rills wheiever exceedingly wasted away, after
that, O cloud, thou shalt hear my message fit to be drunk in with
(both) ears

13. P मार्गं मत्तः for मार्गं तावद्. M. °प्रयाणानुरूपं for ° प्र-
याणानुरूप. P. श्रवणबन्धम् for श्रोत्रपेयम् P. W. C1 C2. R M.
उपभुज्य for उपभुज्य. K1. K2. R जलद तदनु for तदनु जलद.

अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
 दृष्टे त्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ।
 स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं

दिङ्गागानां पयि परिहरन्स्थूळहस्तावलेपान् ॥१४॥

इति नित्यार्थे द्विर्भावः ॥ शिखरिषु पर्वतेषु पद न्यून्य निक्षिप्य । पुनर्वलला-
 मार्य कनिद्विश्रम्येत्यर्थः । क्षीण क्षीणोऽभीक्ष्ण कृशाङ्गः सन् ॥ अत्रापि कृदन्त-
 त्वात्पूर्ववद्विरुक्ति ॥ स्रोतसा परिलुप्त गुरुत्वदोषरहितम् । उपलास्फालनस्वाद-
 त्त्वात्पथ्यमित्यर्थः ॥ तथा च वाग्भट — “ उपलास्फालनक्षेपविच्छेदैः खदि-
 तोदकाः । हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्या नद्यो भवन्त्यम् ” इति ॥ पयः पानी-
 यमुपभुज्य शरीरपोषणार्थमभ्यवहृत्य च गन्तासि गमिष्यसि ॥ गमेलुट् ॥

१४. अद्विरिति ॥ पवनो वायुर्द्रश्चित्रकूटस्य शृङ्गं हरति किंस्वित् ॥ किंस्विच्छब्दो
 वितर्कायै चादिषु पठितः ॥ इति शङ्कयोन्मुखं भिरुन्नतमुखीभिः ॥ “ स्वाहाचोप-
 सर्जनादसयोगोपवाच ” इति ङीप् ॥ मुग्धाभिर्मूढाभिः ॥ “ मुग्ध सुन्दरमूढयोः ”
 इत्यमरः ॥ सिद्धानां देवयोनिविशेषाणामङ्गनाभिश्चकितचकित चकितप्रकार
 यथा तथा ॥ “ प्रकारे गुणवचनस्य ” इति द्विर्भावः । दृष्टोत्साहो दृष्टोद्योगः
 सन् । सरसा आद्रा निचुलाः स्थलवेतसा योमस्तस्मात् ॥ “ वानीरे कविभेदे
 स्यान्निचुलः स्थलवेतस ” इति शब्दार्णवे ॥ अस्मात्स्थानादाश्रमात्पयि नमो-
 मार्गे दिङ्गागानां दिग्गजानां स्थूला ये हस्ताः करास्तेषामवलेपानां क्षेपान्परिहरन् ॥
 “ हस्तो नक्षत्रभेदे स्यात्कोभकरयोरपि ” इति । विश्वः ॥ उदङ्मुखः सन् ।
 अलकाया उदीच्यत्वादित्याशयः ॥ खमाकाशमुत्पतोद्गच्छ ॥ अत्रेदमप्यर्थान्तरं
 ध्वनयति—रसिको निचुलो नाम महाकविः कालिद सस्य सहाध्यायः परापा-
 क्षितानां कालिदासप्रबन्धदूषणानां परिहर्ता यस्मिन्स्थाने तस्मात्स्थानादुदङ्मुखा
 निर्दोषत्वादुन्नतमुखः सन्पयि सारस्वतमार्गे दिङ्गागानाम् ॥ पूजायां बहुवच-
 नम् ॥ दिङ्गागाचार्यस्य कालिदासप्रतिपक्षस्य हस्तावलेपान् हस्तविन्यासपूर्वका-
 णि दूषणानि परिहरन् ॥ “ अवलेपस्तु गर्वे स्याल्लेपेन दूषणेऽपि च ” इति

14 From this place abounding in wet canes, mount up to the sky, facing the north, avoiding in thy path the blows from the massy trunks of the quarter-elephants, and having thy effort marked with astonishment by the simple wives of the *Siddhas*, with their faces raised up in doubt whether the wind is bearing away the crest of the mountain

14. W. M. वहति हरति ; W. K2. M. दृष्टोच्छ्रायः for द-
 शोत्साहः ; M. °हस्तावलेपान् for °हस्तावलेपान्.

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता-
 द्बल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य ।
 येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
 बर्हेणैव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥१५॥
 त्वय्यायत्तं ऋषिफलमिति भ्रूविकारानभिज्ञैः
 प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ।
 सद्यःसीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
 किञ्चित्पश्चाद्ब्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥ १६ ॥

विश्वः॥ अद्वैतकल्पस्य ॥ दिङ्मागाचार्यस्य शृङ्ग प्राधान्यम् ॥ “ शृङ्ग प्राधा-
 न्यस्थिताश्च ” इत्यमरः ॥ हरीति हेतुना सिद्धैः सारस्वतसिद्धैर्महाकविभिर्ब्र-
 न्नासिरेष्टोत्साहः सन्धमुत्पत्तौचैर्भवेति स्वप्रबन्धमात्मानं वा प्रति कवेरुक्ति-
 रितिम् “ ससर्गतो दोषगुणा भवन्तीत्येतन्मृषा येन जलाशयेऽपि । स्थित्वानु-
 क्तं ८. १. चुलश्चलन्तमात्मानमारक्षति सिन्धुवेगात् ” इत्येतच्छ्लोकनिर्माणात्तस्य
 कवेरे चुलसज्ञेत्याहुः ॥

न्तः. रत्नेति ॥ रत्नच्छायानां पद्मरागादिमणिप्रभाणां व्यतिकरो मिश्रण-
 श्यास्य दर्शनीयमाखण्डलस्येन्द्रस्यैतद्धनु खण्डम् ॥ एतदिति हस्तेन निर्देशो
 शिवतः ॥ पुरस्तादग्रे बल्मीकाग्राद्वामलूरविवरात् ॥ “ वामलूरश्च नाकुश्च
 ल्मोक पुनपुसकम् ” इत्यमरः ॥ प्रभवत्याविर्भवति । येन धनुःखण्डेन ते तव
 याम वपुः । स्फुरितरुचिनोज्ज्वलकान्तिना बर्हेण पिच्छेन ॥ “ पिच्छबर्हे नपु-
 स्के ” इत्यमरः ॥ गोपवेषस्य विष्णोर्गोपालस्य कृष्णस्य श्यामं वपुरिव । अ-
 तितरा कान्ति शोभामापत्स्यते प्राप्स्यति ॥

१६. त्वयीति ॥ कृषेर्हलकर्मण. फल सस्यं त्वयि ॥ अधिकरणविवक्षाया

15 Here rises in front from the mouth of an anthill, a piece of
 Indra's bow as fine-looking as an intermingling of the rays of jewels,
 whereby thy dark body will attain to a great splendour as that of
 Vishnu dressed as a cowherd does by means of a peacock's plumes
 of glittering lustre

16 Being drunk in by the eyes, of the country dames, moist from

15. P रत्नच्छायव्यतिकरः for रत्नच्छायाव्यतिकरः, W. M.
 आलप्स्यते for आपत्स्यते.

16. C1. C2 K2. M. भ्रूविलासानभिज्ञैः for भ्रूविकारानभिज्ञैः.
 P. W. N M. °सुरभिक्षेत्रं for °सुरभि क्षेत्रम्. K2 M. प्रवल द
 गती for ब्रज लघुगतिः ; W. G1. N. M. किञ्चिदेव for भूय एव.

त्वामासारप्रशमितवनोपष्ठवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ।

न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय

प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥१

सप्तमी ॥ आयत्तमधीनम् ॥ “अधीनो निम्न आयत्त” इत्यमरः ॥ इति प्रीत्या स्निग्धै । अकृत्रिमप्रेमादिरित्यर्थः । भ्रूविकाराणां भ्रूविलासानामनभिज्ञै । त्वादितिशेषः । जनपदवधूनां पल्लीयोषिता लोचनैः पीयमानः सादर वीक्ष्य सन् । माल मालाख्यं क्षेत्रं शैलप्रायमुन्नतस्थलम् ॥ “मालमुन्नतभूतलम्” त्पलमालायाम् ॥ सद्यस्तत्कालमेव सिरैर्हलैस्तत्क्षण्येन कर्षणेन सुरभिं घ्रायथा तथारुह्य । तत्राभिवृष्येत्यर्थः ॥ “सुरभिर्घ्राणतर्पणः” इत्यमरः । त्वश्वाद् व्रजं गच्छ ॥ लघुगतिस्तत्र निर्वृष्टत्वात्क्षिप्रगमनः मन् ॥ “लघु द्रुतम्” इत्यमरः ॥ भूयः पुनरप्युत्तरेणैवोत्तरमार्गेणैव व्रज ॥ तृतीयाविधान्यादिभ्य उपसख्यानम् ॥ इति तृतीया ॥ यथा कश्चिद्बहुवल्गुं पत्रचित्क्षेत्रे कलत्रे गूढं विहृत्य ॥ “क्षेत्रं शरीरकेदारे सिद्धस्थानयोः” इति विश्वः ॥ दाक्षिण्यमङ्गमयान्निचिमार्गेण निर्गत्य पुनः सर्वाध्यक्षरतिं तद्वदिति ध्वनिः ॥

१७. त्वामिति ॥ आम्नाश्चूताः कूटेषु शिखरेषु यस्य स आम्नकूटं सानुमानपर्वतः ॥ “आम्नश्चूतो रसालोऽसौ” इति । “कूटोऽस्त्री शिखरः” इति चामरः ॥ आसारो धारावृष्टिः ॥ “धारासपात आसारः” इत्यमरः प्रशमितो वनोपप्लवो दावाग्रियेन तम् । कृतोपकारमित्यर्थः । अध्वश्रमेण व्याप्तं त्वा साधु सम्यङ्मूर्ध्ना वक्ष्यति वोढा ॥ वह्नेर्हृद् ॥ तथाहि । क्षुद्रः कृपणोऽपि ॥ “क्षुद्रो दास्रे कृपणे नृशसे” इति यादवः ॥ संश्रयाय संश्रयणाय मित्रे सुहृदि “अथ मित्रं सखा सुहृद्” इत्यमरः ॥ प्राप्ते आगते सति । प्रथमसुकृतापेक्षया पूर्वोपकारपर्यालोचनया विमुखो न भवति । यस्तथा तेन प्रकाशेणोच्चैरुन्नतः स

affection and ignorant of the amorous sportings of the eye-brows because the fruit of husbandry depends upon thee, mount instantly to the elevated hilly spot called *Mala* so as to make it fragrant by reason of the upturning of the plough, and having gone a little westward proceed again in the northerly direction at a quick pace

17 On its summit the mountain *Amrakuta* will well bear thee (who art) overcome by the fatigue of the journey and whose showers have allayed (its) forest conflagration, even a low man, out of regard to former favours done, turns not his back on a friend who comes (to him) for refuge, much less will one so exalted.

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ।

नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥१८॥

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं
तोयोत्सर्गद्भुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः ।

रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णा
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥१९॥

आम्रकूट. किं पुनर्विमुखो न भवतीति किमु वक्तव्यमित्यर्थः ॥ एतेन प्रथमावस-
थे सौख्यलाभात्ते कार्यसिद्धिरस्तीति सूचितम् । तदुक्तं निमित्तनिदाने— “ प्र-
थमावसथे यस्य सौख्यं तस्याखिलेऽध्वनि । शिवं भवति यात्रायामन्यथा त्वशु-
भं ध्रुवम् ” इति ॥

१८. छन्नेति ॥ हे मेघ । परिणतैः परिपक्वैः फलैर्योतन्त इति तथोक्तैः ।
आषाढे वनचूताः फलान्ति पच्यन्ते च मेघवातेनेत्याशयः । काननाम्रैर्वनचूतैश्छ-
न्नोपान्त आवृतपार्श्वोऽचल आम्रकूटाद्रिः स्निग्धवेणिसवर्णे मसृणकेशबन्धच्छा-
ये । श्यामवर्ण इत्यर्थः ॥ “ वेणी तु केशबन्धे जलस्रुतौ ” इति यादवः ॥ त्व-
यि शिखरं शृङ्गमारूढे सति ॥ “ यस्य च भावेन भावलक्षणम् ” इति सप्तमी
॥ मध्ये श्यामः शेषे मध्यादन्यत्र विस्तारे परितः पाण्डुर्हरिणः ॥ “ हरिणः पाण्डु-
रः पाण्डुः ” इत्यमरः ॥ भुवः स्तन इव । अमरमिथुनानाम् । खेचराणामिति
भावः । प्रेक्षणीया दर्शनीयामवस्था नूनं यास्यति । मिथुनग्रहणं कामिनामेव स्त-
नत्वेनोत्प्रेक्षां समवतीति कृतम् । यथा परिश्रान्तः कश्चित्कामी कामिनीनां
कुचकलशे विश्रान्तः सन्स्वपिति तद्वद्भवानपि भुवो नायिकायाः स्तन इति ध्वनिः ॥

१९. स्थित्वेति ॥ हे मेघ । वने चरन्ति ते वनचराः ॥ “ तत्पुरुषे कृ-

18 When thou, resembling an oiled plait of hair, hast mounted on its top, the mountain, with its sides covered with forest-mango-trees glittering with ripe fruit, wilt, like the earth's breast dark in the middle and white on the rest of its surface, surely attain to a condition worthy of being gazed at by the pairs of celestial beings.

19 After resting for a short time on that (mountain) having

18. M. मेघश्यामः for मध्ये श्यामः ;

19. P. तस्मिन्स्थित्वा for स्थित्वा तस्मिन्. W. G1. G2. B. K1. M. तोयोत्सर्गद्भुततर°, M. तोयोत्सर्गल्लिघुतर° for तो-
योत्सर्गद्भुततर°. R. M. वन्ध्यपादे M. बन्ध्यपादे for विन्ध्यपादे.

तस्यास्तिकैर्वनगजमदैवासितं वान्तवृष्टि-
जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ।

अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्षयति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥२०॥

ति बहुलम् ” इति बहुलग्रहणादलङ्घ्यभवति ॥ तेषा वधूभिर्मुक्ताः कुञ्जा लतागृहा
यत्र तस्मिन् ॥ “ निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे ” इत्यमरः ॥ तत्र
ते नयनाविनीदोऽस्तीत्यर्थः । तस्मिन्नाम्रकूटे । मुहूर्तमल्पकालम् । न तु चिग
स्वकार्यविरोधादिति भावः ॥ “ मुहूर्तमल्पकाले स्याद्वाटिकाद्वितयेऽपि च ”
इति शब्दार्णवे ॥ स्थित्वा विश्रम्य । तोयोत्सर्गेण “ त्वामासार—” इत्युक्तव-
र्षणेन द्रुततरगातिर्लाघवाद्देतोरतिक्षिप्रगमनः सत् । तस्मादाम्रकूटात्प्रगमनन्तर
तत्पर वर्त्म मार्गं तीर्णोऽतिक्रान्तः । उपलै पाषाणैर्विषमे विन्ध्यस्याद्रे पादे प्र-
त्यन्तपर्वते ॥ “ पादाः प्रत्यन्तपर्वताः ” इत्यमरः ॥ विशीर्णा समन्ततो विष्टम-
राम् ॥ एतेन कस्याश्चित्कामुक्याः प्रियतमचरणपातोऽपि ध्वन्यते ॥ रेवां
दाम् ॥ “ रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेखलकन्यका ” इत्यमरः ॥ गजस्याङ्गं
शरीरे भक्तयो रचनाः । रेखा इति यावत् ॥ “ भक्तिर्निषेवणे भागे रचनाया-
म् ” इति शब्दार्णवे ॥ तामा छेदैर्भङ्गिभिर्भाभिर्विरचिता भूतिं शृङ्गारमिव भसि-
तमिव वा ॥ “ भूतिर्मातङ्गशृङ्गारे जातौ भस्मनि सपदि ” इति विश्वः ॥ द्र-
क्ष्यासि । अयमपि महास्ते नयनकौतुकलाभ इति भावः

२०. तस्या इति ॥ हे मेघ । वान्तवृष्टिरुद्गीर्णवर्षः सन् । कृतवमनश्च
व्यज्यते । तिकैः सुगन्धिभिस्तिक्तगमवाद्भिश्च ॥ “ तिको रसे सुगन्धौ च ”
इति विश्वः ॥ वनगजमदैवासितं सुरभिः भावितं च । हिमवद्विन्ध्यमलया गजाना प्र-
भवा इति विन्ध्यस्य गजप्रभवत्वादिति भावः । जम्बूकुञ्जैः प्रतिहतरय प्रतिबद्धवे-

bowers enjoyed by foresters' wives, thou crossing over to the road
next to it at a pace quickened by the discharge of water, wilt see the
(river) *Narmada* spread out at the foot of the mountain *Vindhya* uneven
on account of rocks, like a decoration on an elephant's body made by
scattered marks of painted streaks

20 With thy rain vomited (i.e. discharged), thou canst proceed
after having sucked the water of the river which is scented with the
fragrant ichor of wild elephants and the current of which is retarded
by clusters of *Jambu* trees, the wind will not be able, O cloud, to shake
thee (thus) full of substance, for every thing becomes light when
empty, while fullness contributes to solidity

20. R.M. तीक्ष्णैः for तिकैः; K2. M. जम्बूखण्डं for जम्बूकुञ्जं.

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धकृद्धै-

राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम् ।

जग्धवारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः

सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥ २१ ॥

गम् । सुखपेयमित्यर्थः । अनेन लघुत्व कषायभावना च व्यज्यते । तस्या
वैयास्तीयमादाय गच्छेत्रज । हे घन मेघ । अन्तः सारो बल यस्य त त्वाम-
निल आकाशवायुः । शरीरस्थश्च गम्यते । तुल्यितु न शक्यति शक्तो न भवि-
ष्यति । तथाहि । रिक्तोऽन्तःसारशून्यः सर्वोपि लघुर्भवति । प्रकम्प्यो भव-
तीत्यर्थः । पूर्णता सारवत्ता गौरवायाप्रकम्प्यत्वाय भवतीत्यर्थः ॥ अयमत्र ध्वनिः ।
आदौ वमनशोधितस्य पुसः पश्चाच्छ्लेष्मशोषणाय लघुतिक्तकषायाम्बुपानाल्ल-
व्वलस्य वातप्रकीर्णो न स्यादिति । यथाह वाग्भटः— “ कषायाश्चाहिमास्त-
स्य विशुद्धौ श्लेष्मणो हिताः । किमु तिक्तकषाया वा ये निसर्गात्कफापहाः ॥
कृतशुद्धेः क्रमात्पीतपेयादेः पथ्यभोजिनः । वातादिभिर्न बाधा स्यादिन्द्रियैरिव
योगिनः ” इति ॥

२१. नीपामिति ॥ सारङ्गा मतङ्गजाः कुरङ्गा वा ॥ “ सारङ्गश्चातके भृङ्गे
कुरङ्गे च मतङ्गजे ” इति विश्वः ॥ अर्धरूरेकदेशोद्भूतैः केसरैः किञ्चलकैर्हरित
पालाशवर्णं कपिशं श्यामवर्णम् । श्यामारुणमिति यावत् ॥ “ पालाशो हरितो
हरिश्च ” इति । “ श्यावः स्यात्कपिशो धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते ” इति चामरः ॥
हरितं च तत्कपिशं च । “ वर्णो वर्णेन ” इति समासः ॥ नीपं स्थलकदम्ब-
कुसुमम् ॥ “ अथ स्थलकदम्बके । नीपः स्यात्पुलके ” इति शब्दार्णवे ॥ दृ-
ष्ट्वा संप्रेक्ष्य । विदित्वेति यावत् । तथा कच्छेष्वनूपेष्वनुकच्छम् ॥ “ अव्ययं
विभक्ति— ” इत्यादिना विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः ॥ “ जलप्रायमनपं स्यात्पुसि
कर्च्छस्तथाविधः ” इत्यमरः ॥ आविभूर्ताः प्रथमाः प्रथमोत्पन्ना मुकुला यासां
ताः कन्दलीभूमिकदलीः ॥ “ द्रोणपर्णी स्निग्धकन्दा कन्दली भूकदल्यापि ”
इति शब्दार्णवे ॥ जग्ध्वा भक्षयित्वा ॥ “ अदो जाग्धिः— ” इति जग्ध्वादेशः ॥
अरण्येष्वधिकसुरभिप्रतिघ्राणतर्पणम् ॥ “ दग्धवारण्येषु ” इति पाठे “ दग्धम् ”

21 After seeing the *Kadamba* flower green and brown on account of its halfgrown filaments, after eating on every bank the plantain trees on which first buds have appeared, and after smelling the very fragrant odour of the ground in forests, the elephants (or antelopes) will indicate the path of thee, the sprinkler of waterdrops

21. P. W G1. G2 K1. K2. R. N. M.
दग्धवारण्येषु for जग्धवारण्येषु. M. नवजलमुचः for जललवमुचः.

अम्भोविन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः

श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः ।

त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः

सोत्कण्ठानि प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि ॥ २२ ॥

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः

कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते ।

शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः

प्रत्युद्यातः कथमपि भवान्गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥ २३ ॥

इत्यादिकविशेषणम् ॥ अर्थवशात्कन्दलीश्च दृष्ट्वैत्यन्वयो द्रष्टव्यः ॥ उभर्या भूमे-
गन्धमाघ्राय जललवमुचो मेघस्य ते तव मार्गे सूचयिष्यन्त्यनुमापयिष्यन्ति । यत्र
यत्र वृष्टिकार्यं नीपकुसुमादिकं दृश्यते तत्र तत्र त्वया वृष्टमित्यनुमीयत इति भावः ॥
प्रक्षिप्तमपि व्याख्यायते—

२२. अम्भ इति ॥ अम्भोविन्दूनां वर्षोदविन्दूनां ग्रहणे । “ सर्वसहापति-
तमम्बु न चातकस्य हितम् ” इति शास्त्राद्भ्रूस्पृष्टोदकस्य तेषां रोगहेतुत्वादन्त-
राल एव स्पर्शकारे । चतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः कौतुकात्पश्यन्तः श्रेणीभूता ब-
द्धपङ्क्तिः ॥ अभूततद्भावे च्चिः ॥ बलाका बकपङ्क्तिः परिगणनयैका द्वे तिस्र इ-
ति सख्यानेन निर्दिशन्तो हस्तेन दर्शयन्तः सिद्धाः स्तनितसमये त्वद्दर्शितकाले
सोत्कण्ठान्युत्कण्ठापूर्वकाणि प्रियसहचरीणां सभ्रमेणालिङ्गितान्यासाद्य । स्वयग्रह-
णाल्लेषसुखमनुभूयेत्यर्थः । त्वा मानयिष्यन्ति । त्वन्निमित्तत्वात्सुखलाभस्येति भावः ।

२३ उत्पश्यामीति ॥ हे सखे मेघ । मत्प्रियार्थं यथा तथा द्रुतं क्षिप्रम् ॥

22 The *Siddhas*, marking the *Chataka* birds expert in catching the drops of rainwater, and pointing out the female cranes arranged in rows by counting (them one by one), will think highly of thee after receiving at the time of thy thundering, eager and hurried embraces from their dear wives.

23. I foresee thy delay, O friend, on every mountain fragrant with *Kutaja* flowers, though (thou art) desirous of going speedily for my

22. W G1. G2. K1. R N. M. °ग्रहणभसाच्च for °ग्रह-
णचतुराच्च. W. C2. M. सोत्कण्ठानि for सोत्कण्ठानि. K1. M.
संभ्रमालिङ्गितानि for सभ्रमालिङ्गितानि.

23. M. सनयनजलैः for सजलनयनैः ; K1. M. प्रत्युद्यातः
for प्रत्युद्यातः

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-
नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्या ।

त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः

संपत्स्यन्ते कतिपयादिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥ २४ ॥

लघु क्षिप्रमर द्रुतम् ” इत्यमरः ॥ यियासोर्यातुमिच्छोरपि ॥ यातेः सन्नन्ता-
दुप्रत्ययः ॥ ते तव ककुभैः कुटजकुसुमैः सुरभौ सुगन्धिनि ॥ “ ककुभ कुट-
जेऽर्जुने ” इति शब्दार्णवे ॥ पर्वते पर्वते प्रतिपर्वतम् ॥ वीप्साया द्विरुक्तिः ॥
कालक्षेप कालविलम्बम् ॥ “क्षेपो विलम्बे निन्दायाम्” इति विश्वः ॥ उत्पश्याम्यु-
त्प्रेक्षे ॥ विलम्बहेतु दर्शयन्नाशुगमन प्रार्थयते—शुक्लेति ॥ सजलानि सानन्दबाष्पाणि
नयनानि येषा तैः शुक्लापङ्क्तिर्मयूरैः ॥ “ मयूरो बर्हिणो बर्ही शुक्लापाङ्गः शिरस्वा-
वलः ” इति यादव ॥ केकाः स्ववाणीः ॥ “ केका वाणी मयूरस्य ” इत्य-
मरः ॥ स्वागतीकृत्य स्वागतवचनीकृत्य प्रत्युद्यातः प्रत्युद्गतः । मयूरवाणीकृता-
तिथ्य इत्यर्थः । भवान्कथमपि यथाकथञ्चिदाशु गन्तु व्यवस्येदुद्युञ्जति ॥ प्रार्थने
लिङ् । “ शेषे प्रथम ” इति प्रथमपुरुषः । शेषश्चायं भवच्छब्दो युष्मदस्मच्छ-
ब्दव्यतिरेकात् ॥ “ स्वागतीकृत्य केका ” इत्यत्र केकास्वारोप्यमाणस्य स्वा-
गतवचनस्य प्रकृतप्रत्युद्गमनोपयोगात्परिणामालकारः । तदुक्तमलकारसर्वस्व—
“ आरोप्यमाणस्यप्रकृतोपयोगित्वे परिणामः ” इति ॥

२४. पाण्ड्वति ॥ हे मेव । त्वय्यासन्ने सनिकृष्टे सति दशार्णा नाम जन-
पदाः सूचिभिन्नैः सूचिषु मुकुलाग्रेषु भिन्नैर्विकसितैः ॥ “ केतकीमुकुलाग्रेषु
सूचिः स्यात् ” इति शब्दार्णवे ॥ केतकैः केतकीकुसुमैः पाण्डुच्छाया हरिण-
वर्णा उपवनानां वृतयः कण्टकशाखावरणा येषु ते तथोक्ता ॥ “ प्राकारो वर-
ण सालः प्राचीरं प्रान्ततो वृतिः ” इत्यमरः ॥ तथा गृहबलिभुजा काकादि-
ग्रामपक्षिणा नीडारम्भैः कुलायनिर्माणैः ॥ “कुलायो नीडमस्त्रियाम्” इत्यमरः ॥
चित्याया इमानि चैत्यानि रथ्यावृक्षाः ॥ “चैत्यमायतने बुद्धविम्बे चोद्देशपाद-
पे” इति विश्वः ॥ आकुलानि सकीर्णानि ग्रामेषु चैत्यानि येषु ते तथोक्ता । तथा

good greeted by the peacocks with their eyes full of (joyful) tears,
and their cries having been made (by them) into a welcome, thou
must try somehow or other to move on rapidly

24 Whilst thou art near, the country of *Dasārṇa* will become lovely
by (having) *Jambu* forests dark-coloured with ripe fruit, will have
the hedges of its groves white-coloured with *Ketaka* flowers open at

24. W. M. नीडारम्भे for नीडारम्भैः. W. K2. M. फलपरि-
णतिश्यामं, N. M. परिणतिफलश्यामं for परिणतफलश्यामं.

विश्रान्तः सन्व्रज वननदीतीरजातानि सिञ्च-
नृद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि ।

गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां

छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥ २७ ॥

२७. विश्रान्त इति ॥ विश्रान्तः सस्तत्र नीचैर्गिरौ विनीताध्वश्रमः स-
न् । अथ विश्रान्तेरनन्तरम् । वनेऽरण्ये या नद्यस्तासा तीरेषु जातानि स्वयं-
रूढानि । अकृत्रिमाणीत्यर्थः “ नदनदी—” इति पाठे “ पुमान्निध्या ” इत्ये-
कशेषो दुर्वारः ॥ तेषामुद्यानानामारामाणां सबन्धीनि यूथिकाजालकानि माग-
धीकुसुममुकुलानि ॥ “ अथ मागधी । गणिका यूथिका ” इत्यमरः ॥ “ की-
रकजालककलिकाकुङ्कुलमुकुलानि तुल्यानि ” इति हलायुधः ॥ नवजलकणैः
सिञ्चन्नाद्रीकुर्वन् ॥ अत्र सिञ्चतेराद्रीं करणार्थत्वाद्ब्रव्यस्य करणत्वम् । यत्र तु-
क्षणमर्थस्तत्र द्रवद्रव्यस्य कर्मत्वम् । यथा “ रेतः सिक्त्वा कुमारीषु ” । “ सु-
खैर्निषिञ्चन्तमिवामृत त्वचि ” इत्येवमादि । एव किरतीत्यादीनामपि “ रजः
किरति मारुतः ” । “ अवाकिरन्वयोवृद्धास्त लाजैः पौरयोषितः ” इत्यादिष्व-
र्थभेदाश्रयणेन रजोलाजादीनां कर्मत्वकरणत्वे गमयितव्ये ॥ तथा गण्डयोः क-
पोलयोः स्वेदस्यापनयनेन प्रमार्जनेन या रुजा पीडा ॥ भिदादिद्वादशप्रत्ययः ।
तथा क्लान्तानि म्लानानि कर्णोत्पलानि येषां तेषां तथोक्तानाम् । पुष्पाणि लु-
नन्तीति पुष्पलाव्य पुष्पावचायिका. स्त्रियः ॥ “ कर्मण्यण् ” । “ टिड्ढाण-
ञ्—” इत्यादिना ङीप् ॥ तासां मुखानि । छायाया अनातपस्य दानात् ।
कान्तिदानं च ध्वन्यते ॥ “ छाया सूर्यप्रिया कान्ति. प्रतिबिम्बमनातपः ” इ-
त्यमरः ॥ कामुकदर्शनात्कामिनीनां मुखविकाशो भवतीति भावः । क्षणपरि-
चित. क्षणं ससृष्टः सन् । न तु चिरम् । व्रज गच्छ ॥

27 Being (thus) refreshed proceed,—sprinkling with fresh water—drops the buds of the great-flowered jasmine sprung up (spon-
taneously) on the banks of the forest rivers, and by casting a shadow,
coming into momentary contact with the faces of female flower-ga-
therers having their ear-lotuses withered by injury (caused) by the
wiping of the sweat from their cheeks

27. P. वननदीतीरजाना निषिञ्चन्, W. R. N. K2. M. नगनदी-
तीरजातानि सिञ्चन्, G1 G2 K1. M. नवनदीतीरजातानि सिञ्चन् for
वननदीतीरजातानि सिञ्चन्. K1. N. M. गण्ड° for गण्ड°. M.
‘छायादानक्षण° for° छायादानात्क्षण°.

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
 सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ॥
 विद्युदामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
 लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥ २८ ॥
 वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाश्रीगुणायाः
 संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।
 निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः संनिपत्य
 स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ २९ ॥

२८. वक्र इति ॥ उत्तराशामुदीचीं दिशं प्रति प्रस्थितस्य भवतः पन्था उज्जयिनीमार्गो वक्रो यदपि । दूरो यद्यपीत्यर्थः ॥ विन्ध्यादुत्तरवाहिन्या निर्विन्ध्यायाः प्राग्भागं कियत्यपि दूरे स्थितोज्जयिनी । उत्तरपथस्तु निर्विन्ध्यायाः पश्चिम इति वक्रत्वम् ॥ तथाप्युज्जयिन्या विशालानगरस्य ॥ “ विशालोज्जयिनी समा ” इत्युत्पलः ॥ सौधानामुत्सङ्गेषूपरिमाणेषु प्रणयः परिचयः ॥ “ प्रणयः स्यात्परिचये याच्नायाः सौहृदेऽपि च ” इति यादवः ॥ तस्य विमुखः पराङ्मुखो मा स्म भूः । न भवेरित्यर्थः ॥ “ स्मोत्तरे लङ् च ” इति चकारादाशीरर्थे लुङ् । “ न माञ्चोगे ” इत्यङागमप्रतिषेधः ॥ तत्रोज्जयिन्या विद्युदाम्ना विद्युल्लताना स्फुरितेभ्यः स्फुरणेभ्यश्चकितैर्भीतैर्लोलापाङ्गैश्चलकटाक्षैः पौराङ्गनाना लोचनैर्न रमसे यदि तर्हि त्वं वञ्चितः प्रतारितोऽसि । जन्मवैफल्यं भवेदित्यर्थः ॥

सप्रत्युज्जयिनीं गच्छतस्तस्य मध्येमार्गं निर्विन्ध्यासबन्धमाह—

२९. वीचीति ॥ हे सखे । पथ्युज्जयिनीपथे वीचिक्षोभेण तरङ्गचलनेन

28 Though the road is a circuitous one for thee who hast set forth on a journey to the North, yet do not be averse to forming an acquaintance with the roofs of the palaces of उज्जयिनी; if thou art not gratified by the eyes of the townswomen there, having tremulous outercorners frightened by the flashes of lightning-streaks, thou art (indeed) defrauded (of the object of thy life)

29 Meeting on thy way the river निर्विन्ध्या, which has for its

28. G2 K1. M. उत्तरस्या, N उत्तराया for उत्तराशाम्. W. M. मा च भूः for मा स्मः भूः. W. K2. M. °स्फुरणचकितैः for स्फुरितचकितैः P. यत्र for तत्र P. वञ्चितः स्याः for वञ्चितोऽसि.

29. R. N. M. वीची° for वीचि°. M. °क्कणित° for °स्तनित°.

वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धुः

पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रांशिभिर्जीर्णपर्णैः ।

सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती

कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥ ३० ॥

स्तनितानां मुखराणाम् ॥ कर्तारं क. ॥ विहगानां हंसानां श्रेणिः पङ्क्तिरेव का-
ञ्चीगुणो यस्यास्तस्या. स्वलितेनोपलस्वलनेन मदस्वलितेन च सुभग यथा तथा
ससर्पन्त्या. प्रवहन्त्या गच्छन्त्याश्च तथा दर्शिता प्रकटिता आवर्तोऽम्भसा भ्रम एव
नाभिर्यया ॥ “स्यादावर्तोऽम्भसा भ्रमः” इत्यमरः ॥ निःक्रान्ता विन्ध्यान्निर्विन्ध्या
नाम नदी ॥ “निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या” इति समासः । “द्विगुप्राप्ता
पन्नालम्—” इत्यादिना परवलङ्गिताप्रतिषेध. ॥ तस्या नद्याः सनिपत्य सगत्य ।
रसो जलमभ्यन्तरे यस्य सः । अन्यत्र रसेन शृङ्गारेणाभ्यन्तरोऽन्तरङ्गो भव ।
सर्वथा तस्या रसमनुभवेत्यर्थः ॥ “शृङ्गारादौ जले वीर्ये सुवर्णे विषशुक्रयो ।
तिकादावमृते चैव निर्यासे पारदे ध्वनौ ॥ आस्वादे च रस प्राट्” इति श-
ब्दार्णवे ॥ ननु तत्प्रार्थनामन्तरेण कथं तत्रानुभवो युज्यत इत्यत आह—स्त्री-
णामिति ॥ स्त्रीणां प्रियेषु विषये विभ्रमो विलास एवाद्यं प्रणयवचन प्रार्थना-
वाक्य हि ॥ स्त्रीणामेष स्वभावो यद्विलासैरेव रागप्रकाशनम् । न तु कण्ठत इ-
ति भावः ॥ विभ्रमश्चात्र नाभिसदर्शनादिरुक्त एव ॥

निर्विन्ध्याया विरहावस्था वर्णयस्तन्निराकरणं प्रार्थयते—

३०. वेणीति ॥ अवेणी वेणीभूत वेण्याकारं प्रतनुस्तोकं च सलिलं यस्याः

gudle-sting, rows of birds noisy by the tumult of the waves, which
glides onward in a manner charming on account of (its) stumbling
(against rocks), and which displays its navel-like-eddies, partake
of its waters, for amorous sports are women's first expression of
desire to their lovers

30 By thee alone, O amiable one, that measure can be adopted by
which this river, — having its scanty water for a braid of hair, bearing

W. G2 K1. R. N. M रसाभ्यन्तरं for रसाभ्यन्तरः; N. M.
प्रणयि वचनं for प्रणयवचनं.

30. P. W G1. G2. K2. R. N M. °सलिला तामतीतस्य,
K1 M. B. °सलिला सात्वतीतस्य, M °सलिला साप्यतीतस्य, M.
°सलिला तामतीतस्य for °सलिलासावतीतस्य. M सिन्धुम् for सिन्धुः.
W. K2. M. शीर्णपर्णैः, R. M. जीर्णपत्रैः for जीर्णपर्णैः. M. असुभ-
ग° for सुभग. K2. M. व्यञ्जयन्तीम् for व्यञ्जयन्ती.

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धा-

न्पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ।

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां

शेषैः पुण्यैर्हतमिव दिवः कान्तिमत्स्वण्डमेकम् ॥ ३१ ॥

सा तथोक्ता । अन्यत्र वेणीभूतकेशपाशेति च ध्वन्यते । रोहन्तीति रुहा* ॥ इगुपध-
लक्षण कप्रत्यय ॥ तटयो रुहा ये तरवस्तेभ्यो भ्रश्यन्तीति तथोक्तैः । जीर्णपणैः शुष्क-
पत्रैः पाण्डुच्छाया पाण्डुवर्णा । अत एव हे सुभग । विरहावस्थया पूर्वोक्तप्रका-
रया ॥ करणेन ॥ अतीतस्यैतावन्त कालमतीत्य गतस्य । प्रोषितस्येत्यर्थः । ते
तव सौभाग्यं सुभगत्वम् ॥ “ हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च ” इत्युभयपदवृ-
द्धि ॥ व्यञ्जयन्ती प्रकाशयन्ती । स खलु सुभगो यमङ्गना, कामयन्त इति भा-
वः । असौ पूर्वोक्ता सिन्धुर्नदी निर्विन्ध्या ॥ “ स्त्री नद्या ना नदे सिन्धुर्देश-
भेदेऽम्बुधौ गजे ” इति वैजयन्ती ॥ येन विविना व्यापारेण कार्यं त्यजति स
विधिस्त्वयैवोपपाद्यः । कर्तव्य इत्यर्थः । स च विविरेकत्र वृष्टिरन्यत्र सभोग-
स्तदभावनिबन्धनत्वात्कार्यस्येति भावः ॥ इय पञ्चमी मदनावस्था । तदुक्त र-
तिरहस्ये—“ नयनप्रीति प्रथम वित्तासङ्गस्ततोऽथ सकल्पः । निद्राच्छेदस्त-
नुता विषयनिवृत्तिर्ज्ञापनाश ॥ उन्मादो मूर्छा मृतिरित्येताः स्मरदशा दशैव
स्युः ” इति ॥ “ तामतीतस्य ” इति पाठमाश्रित्य सिन्धुर्नाम नद्यन्तरमिति
व्याख्यानं तु सिन्धुर्नाम कश्चिन्नदः काश्मीरदेशेऽस्ति । नदी तु कुत्रापि नास्ति-
त्युपेक्ष्यमित्याक्षते ॥

३१ प्राप्येति ॥ विदन्तीति विदाः ॥ इगुपधलक्षणः कः ॥ ओकसो वेद्यस्या-
नस्य विदाः कोविदाः ॥ ओकारलोपः पृषोदरादित्वात्साधु* ॥ उदयनस्य वत्सराज-
स्य कथाना वासवदत्ताहरणाद्यद्भुतोपाख्यानानां कोविदास्तत्त्वज्ञा ग्रामेषु ये वृद्धा-
स्ते सन्ति येषु तानवन्तींस्तत्रामजनपदान्प्राप्य तत्र पूर्वोद्दिष्टा पूर्वोक्ता “ सौधी-

a pale complexion on account of the withered leaves fallen from the
trees growing on its banks and (thus) manifesting by its condition
during separation the good fortune of thee who hast been away (so
long) — casts off its draught (emaciation)

31 On reaching the country of the *Avantis*, having its old villag-
ers well-versed in the legends of *Udayana*, proceed to the afore-
said city of *Ujjayini* great in wealth, another brilliant portion of

31. W. M. अवन्तीम् for अवन्तीन्. B. M. ज्ञानवृद्धां, W.
M. ग्रामवृद्धाम् for ग्रामवृद्धान्. P उपसर for अनुसर. K2. स्वचरितं
for सुचरितं. P. K1. कृतमिव for हृतमिव.

दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ।

यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः

शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥ ३२ ॥

स्तद्विप्रणयविमुखो मा स्मभूरुज्जयिन्वा ।” इत्युक्ता श्रीविशाला सपत्तिमहताम् ॥
“शोभासपत्तिपद्मासु लक्ष्मीः श्रीरिव दृश्यते” इति शाश्वतः । विशालां पुरीमुज्ज-
यिनीमनुसर व्रज ॥ कथमिव स्थिताम् । सुचरितफले पुण्यफले स्वर्गोपभोगलक्ष-
णे स्वल्पीभूते । अत्यल्पावशिष्टे सतीत्यर्थः । गा भूमि गतानाम् ॥ “गौरिला
कुम्भिनी क्षमा” इत्यमरः ॥ पुनरपि भूलोकगतानामित्यर्थः । स्वर्गिणा स्वर्गवतां
जनानां शेषैर्भुक्तशिष्टैः पुण्यैः सुकृतैर्हृतमानातिम् । स्वर्गार्थानुष्ठितकर्मशेषाणां
स्वर्गदानावश्यभावादिति भावः । कान्तिरस्यास्तीति कान्तिमदुज्ज्वलम् ।
सारभूतमित्यर्थः । एकं भुक्तादन्यत् ॥ “एके मुख्यान्यकेवलाः ” इत्यमरः ॥
दिवः स्वर्गस्य खण्डमिव स्थितामित्युत्प्रेक्षा । एतेनातिक्रान्तसकलभूलोकनगरसौ-
भाग्यसारत्वमुज्जयिन्वा व्यज्यते ॥

३२. दीर्घीकुर्वन्निति ॥ यत्र विशालाया प्रत्यूषेष्वहर्मुखेषु ॥ “प्रत्यूषो-
ऽहर्मुख कल्यम् ” इत्यमरः ॥ पटु प्रस्फुटम् । मदकलं मदेनाव्यक्तमधुरम् ॥
“ ध्वनौ तु मधुरास्फुटे । कलः ” इत्यमरः ॥ सारसानां पक्षिविशेषाणाम् ॥
“ सारसो मैथुनी कामी गोनन्दः पुष्कराङ्गय ” इति यादवः ॥ यद्वा सारसा-
नां हसानाम् ॥ “ चक्राङ्गः सारसो हस ” इति शब्दार्णवे ॥ कूजितं स्त
दीर्घीकुर्वन् । सतानयन्नित्यर्थः । यावद्वात शब्दानुवृत्तेरिति भावः । एतेन
प्रियतमः स्वचाटुवाक्यानुसारि क्रीडापक्षिकूजितमविच्छिन्नाकुर्वन्निति च ग-
म्यते । स्फुटितानां विकसितानां कमलानामामोदिनं परिमलेन सह या मैत्री

heaven, as it were, brought down by the remaining merits of those
who had dwelt in heaven and come down (again) to the earth when
the fruit of their virtuous deeds had diminished

32 Where, at dawn, the breeze from the (river) *S'upra* prolong-
ing the shrill cry of *Sarasa* birds sweet and indistinct through intoxica-
tion (of passion), sweet-scented by its contact with the fragrance
of blown lotuses, (and) agreeable to the body, dissipates the languor
of women (brought on) by enjoyment, like a lover who uses coaxing
when soliciting enjoyment

32. K1 R. N. M. पटुमदकलं for पटु मदकलं. M स्फुरितं.
for स्फुटितं. P. W. K1. K2. R. N. M. सिप्रावातः. for शिप्रावातः.

हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शङ्खशुक्तीः

शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ।

दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणां च भङ्गा-

न्संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः ॥३३॥

संमर्गस्तेन कषायः सुरभिः ॥ “ रागद्रव्ये कषायोऽस्त्री नियासे सौरभे रसे ” इति यादवः ॥ अन्यत्र विमर्दगन्धीत्यर्थः ॥ “ विमर्दोऽत्ये परिमलो गन्धे ज- नमनोहरे । आमोदः सोऽतिनिर्हारी ” इत्यमरः ॥ अङ्गानुकूलो मान्यात् गात्रसु- स्वस्पर्शः । अन्यत्र गाढालिङ्गनदत्तगात्रसवाहन इत्यर्थः । भवभूतिना चोक्त- म्—“ अशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसवाहनानि ” इति ॥ सवाद्यन्ते च सुरतश्रान्ताः प्रियैर्युवतयः । एतत्कविरेव वक्ष्यति—“ सभोगान्ते मम समुचितो हस्तसवाह- नानाम् ” इति ॥ शिप्रा नाम काचित्त्रत्या नदी तस्या वातः शिप्रावातः ॥ शिप्राग्रहण शैत्यद्योतनार्थम् ॥ प्रार्थना सुरतस्य याच्ना तत्र चाटु करोतीति तथो- क्तः । पुनः सुरतार्थं प्रियवचनप्रयोक्त्यर्थः ॥ कर्मण्यण्प्रत्ययः ॥ प्रियतमो वल्लभ इव स्त्रीणां सुरतग्लानिं सभोगखेदं हरति नुदति । चाटुक्तिभिर्विस्मृतपूर्वगतिखे- दाः स्त्रियः प्रियतमप्रार्थना सफल्यन्तीति भावः ॥ “ प्रार्थनाचाटुकारः ” इ- त्यत्र “ खण्डितनायिकानुनीता ” इति व्याख्याने सुरतग्लानिहरणं न स- भवति । तस्याः पूर्वं सुरताभावात्पश्चात्तनसुरतग्लानिहरणं तु नेदानान्तिनकोपश- मनार्थचाटुवचनसाध्यामित्युपेक्षैवोचिता विवेकिनाम् ॥ “ ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेऽप्याकषायिता ” इति दशरूपके ॥

इतः परं प्रक्षिप्तमपि श्लोकत्रयं व्याख्यायते—

33. हारानिति ॥ यस्यां विशालायां कोटिशो विपणिषु पण्यवीथिका- सु ॥ “ विपणिः पण्यवीथिका ” इत्यमरः ॥ रचितान्प्रसारिताम् ॥ इदं वि- शेषणं यथालिङ्गं सर्वत्र सबध्यते ॥ ताराञ्जुद्वात् ॥ “ तारो मुक्तादिसुद्वौ त- रणे शुद्धमौक्तिके ” इति विश्वः ॥ तरलगुटिकान्मध्यमणीभूतमहारत्नान् ॥ “ तरलो

33 And where having seen in crores brilliant central gems, pearl- strings, conches and shells, (and) emeralds green as young grass and with the shoots of their rays jetting forth, and pieces of corals spread in market-places we imagine the oceans to have only water remaining to them

33. P. तरलघटिकां, G2. K1. R. M. तरलगुटिकां for तरलगुटिकां. M. शुक्तिशंखान् for शङ्खशुक्तीः R. K1, M. यस्यां द- दृष्ट्वा, M. दृष्ट्वा यस्याः for दृष्ट्वा यस्या M. तायमात्रा विशेषाः for तोयमा- त्रावशेषाः.

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे

हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः ।

अत्रोद्धान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पा-

दित्यागन्तूनरमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ॥ ३४ ॥

हारमध्यगः” इत्यमरः ॥ “पिण्डे मणौ महारत्ने गुटिका बद्धपारदे” इति शब्दार्ण-
वे । हारान्मुक्तावलीः । तथा कोटिशः शङ्खाश्च शुक्तीश्च मुक्तास्फोटाश्च ॥ “मु-
क्तास्फोटः स्त्रिया गुक्तिः शङ्खः स्यात्कम्बुरस्त्रियौ” इत्यमरः ॥ शष्प बाल-
तृण तद्वच्छयामान् ॥ “शष्प बालतृण घासो यवस वृणमर्जुनम्” इत्यम-
रः ॥ उन्मयूखप्ररोहानुद्गतरस्याङ्कुरान्मरकतमणीन्गारुडरत्नानि । तथा विदु-
माणा भङ्गान्प्रवालखण्डाश्च दृष्ट्वा सलिलनिधयः समुद्रास्तोयमात्रमवशेषो येषां
ते तादृशाः सलक्ष्यन्ते । तथानुमीयन्त इत्यर्थः । रत्नाकरादप्यतिरिच्यते र-
त्नसंपाद्भिरिति भावः ॥

३४. प्रद्योतस्येति ॥ अत्र प्रदेशे वत्सराजो वत्सदेशाधीश्वर उदयनः ।
प्रद्योतस्य नामोज्जयिनीनायकस्य राज्ञः प्रियदुहितरं वासवदत्तां जह्रे जहार ।
अत्र स्थले तस्यैव राज्ञः प्रद्योतस्य हैम सौवर्णं तालद्रुमवनमभूत् । अत्र नल-
गिरिर्निम्बदत्तस्तदयिो गजो दर्पान्मदात्स्तम्भमालानमुत्पाट्योद्धृत्योद्धान्त
उत्पत्य भ्रमणं कृतवान् । इतीत्यभूताभिः कथाभिरित्यर्थः । अभिज्ञः पूर्वोक्त-
कथाभिज्ञः कोविदो जन आगन्तून्देशान्तरादागतान् ॥ औणादिकस्तुन्प्रत्य-
यः ॥ बन्धून्यत्र विशालाया रमयति विनोदयति ॥ अत्र भाविकालकारः । त-
दुक्तम्—“अतीतानागतं यत्र प्रत्यक्षत्वेन लक्ष्यते । अत्यद्भुतार्थकथनाद्भा-
विकं तदुदाहृतम्” इति ॥

34 And where the people versed (in legends) amuse their foreign
brethren with stories like the following —That here the king of the
Yatsas (Udayana) carried away the darling daughter of Pradyota,
that here the same king had a golden palm-grove, that here, forsooth,
the elephant *Nalagiri* tearing out through fury the post (to which it
was tied), roamed about in a wild manner

34. G1. G2. K1. K2. R. N. M. नलगिरिः for नलगिरिः.
G1. उन्मूल्य for उत्पाट्य. R. M. गमयति for रमयति.

पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः

शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात् ।

योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः

प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ॥ ३५ ॥

जालोद्रीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधपै

बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः ।

हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा

लक्ष्मीं पश्यंललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥ ३६ ॥

३५. पत्रेति ॥ हे जलद । यत्र विशालायां वाहा इयाः पत्रश्यामाः पला-
शवर्णा अत एव दिनकरहयस्पर्धिनो वर्णतो वेगतश्च सूर्याश्वकल्पास्तथा शैलो-
दग्रा शैलवदुन्नता करिणः प्रभेदान्मदस्त्रावाद्धेतोस्त्वमिव वृष्टिमन्तः । अग्र
नयन्तीत्यग्रण्यः ॥ “ सत्सूद्विष—” इत्यादिना किप् ॥ “ अग्रग्रामाभ्यां न-
यतेः ” इति वक्तव्याणत्वम् ॥ योधानामग्रण्यो भटश्रेष्ठाः संयुगे युद्धे प्रतिद-
शमुखमभिरावण तस्थिवासः स्थितवन्तः । अत एव चन्द्रहासस्य रावणामेव-
णान्क्षतान्येवङ्काश्चिह्नानि तैः ॥ “ चन्द्रहासो रावणासावसिमान्नेऽपि च कचि-
त् ” इति शाश्वतः ॥ प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः प्रतिषिद्धभूषणकान्तयः । शस्त्रप्र-
हारा एव वीराणां भूषणमिति भावः ॥ अत्रापि भाविकालकारः ॥

३६. जालोद्रीर्णैरिति ॥ जालोद्रीर्णैर्गवाक्षमार्गनिर्गतैः ॥ “ जाल गवाक्ष आ-

35 (And) where there are horses as green as the leaf (of a tree)
and (therefore) rivalling with those of the sun, elephants as big as
mountains and raining like thee by reason of the flowing of ichor
(from their temples), (and) best warriors who had on the battle-
field held their own against the ten-faced (*Ravana*) and the lustre
of whose ornaments has been obscured by the scars of wounds (caused)
by *Chandrahâsa* (the sword of *Râvana*)

36 With thy body swollen by the incense (used) for perfuming
the hair and escaping through the casements, with the presents (in
the form) of dances given (to thee) by peacocks through fraternal

36. K1. R. N. M. °संस्कारधूमैः for °संस्कारधूपैः, G1. भुवन°
for भवन°. P नृत्योपहारः, M. नृत्योपचारः for नृत्योपहारः. P. W.
G1 G2. K1. K2. R N M. अध्वस्विन्नान्तरात्मा for अध्वखेद नयेथा °
P G1. G2. K1 R. N. M नीत्वा खेद, K2. M मुक्त्वा खेद,
W. M. त्यक्त्वा खेद, M. रात्रिं नीत्वा for लक्ष्मीं पश्यन्.

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः

पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य ।

धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-

स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिकैर्मरुद्भिः ॥ ३७ ॥

नाये जालके कपटे गणे ” इति यादवः ॥ केशसस्कारधूपैः । वनिताकेशवा-
सनाथैर्गन्धद्रव्यधूपैरित्यर्थः ॥ अत्र सस्कारधूपयोस्तादर्थ्येऽपि यूपदार्वादिवत्प्र-
कृतिविकारत्वाभावादश्वघासादिवत्षष्ठीसमासो न चतुर्थीसमासः ॥ उपचित-
वपुः परिपुष्टशरीर । तथा बन्धौ बन्धुरिति वा प्रीत्या भवनशिखिभिर्गृहमयै-
र्देवैर्नृत्यमेवोपहार उपायन यस्मै स तथोक्तः ॥ “ उपायनमुपग्राह्यमुपहार-
स्तथोपदा ” इत्यमरः ॥ कुसुमैः सुरभिषु सुगन्धिषु ॥ ललितवनिताः सुन्दर-
स्त्रियः ॥ “ ललितं त्रिषु सुन्दरम् ” इति शब्दार्णवे ॥ तासां पादरागेण
लाक्षारसेनाङ्कितेषु चिह्नितेषु हर्म्येषु धनिकभवनेष्वस्या उज्जयिन्या लक्ष्मी पश्य-
न्नध्वनाध्वगमनेन खेदं क्लेशं नयेथा अपनय ॥

३७. भर्तुरिति ॥ भर्तुः स्वामिनो नीलकण्ठस्य भगवतः कण्ठस्येव छविर्यस्या
सौ कण्ठच्छविरिति हेतोर्गणैः प्रमथै ॥ “ गणस्तु गणनाया स्याद्गणेशे प्रमथे चये ”
इति शब्दार्णवे ॥ सादरं यथा तथा वीक्ष्यमाणः सत् । प्रियवस्तुसादृश्यादति-
प्रियत्वं भवेदिति भावः । त्रयाणां भुवनानां समाहारास्त्रिभुवनम् ॥ “ तद्धिता-
र्थः—” इत्यादिना समासः ॥ तस्य गुरोर्लौकिक्यनाथस्य चण्डीश्वरस्य कात्या-
यनविलम्बस्य पुण्यं पावनं धाम महाकालाख्यं स्थानं याया गच्छ ॥ विध्यर्थे

affection, thou shouldst dispel the fatigue of the journey, seeing the beau-
tiness of then (city) in palaces scented with flowers and marked with
the foot-prints of lovely women

37 Being respectfully gazed at by the attendants (of *Srva*) as
being possessed of the complexion of their master's throat, thou
shouldst visit the holy abode of the husband of *Chandi*, lord of three
worlds, having its gardens shaken by the *Gandhavati*'s breezes bear-
ing the fragrance of the lotus pollen and smelling of the materials
(used) in baths by young women engaged in water-sports

37. M. दृश्यमान, M. वीक्षमाणः for वीक्ष्यमाणः. N. M. जा-
याः for यायाः. W. M. चण्डेश्वरस्य for चण्डीश्वरस्य. N. M. धू-
तोद्यानं for धूतोद्यान. W. M. तौयक्रीडाविरतं for तौयक्रीडानिरतं.

अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले

स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः ।

कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-

मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३८॥

लिङ् ॥ श्रेयस्करत्वात्सर्वथा यातव्यामीति भावः ॥ उक्तं च स्कान्दे—“आ-
काशे तारकं लिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम् । मर्त्यलोके महाकालं दृष्ट्वा काममवा-
प्नुयात् ” इति ॥ न केवलं मुक्तिस्थानमिदं किंतु विलासस्थानमपीत्याह—धृ-
तेति ॥ कुवलयरजोगन्धिभिरुत्पलपरागगन्धवद्भिस्तोयक्रीडासु निरतानामास-
क्तानां युवतीनां स्नानं स्नानीय चन्दनादि ॥ कारणे ल्युट् ॥ “ स्नानीयेऽभिषे-
वे स्नानम् ” इति यादवः ॥ तेन तित्तैः सुरभिभिः ॥ “ कटुतिक्तकषायास्तु सौर-
भ्येऽपि प्रकीर्तिता ” इति हलायुधः ॥ सौगन्ध्यातिशयार्थं विशेषणद्वयम् । गन्ध-
वत्या नाम नद्यास्तत्रत्याया मरुद्भिर्मारुतैर्धूतोद्यानं कञ्चिपताक्रीडामिति धान्नां
विशेषणम् ॥

३८. अपीति ॥ हे जलधर । महाकाल नाम पूर्वोक्तं चण्डीश्वरस्थानमन्य-
स्मिन्संध्यातिरिक्तेऽपि काल आसाद्य प्राप्य ते तव स्थातव्यम् । त्वया स्थात-
व्यमित्यर्थः ॥ “ कृत्यानां कर्तरि वा ” इति षष्ठी ॥ यावदावता कालेन
भानुः सूर्यो नयनविषयं दृष्टिपथमत्येत्यतिक्रामति । आ अस्तमयात् स्थातव्यमि-
त्यर्थः ॥ यावदित्येतदवध्यर्थे ॥ “ यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे ”
इत्यमरः ॥ किमर्थमत आह—कुर्वन्निति ॥ श्लाघनीयां प्रशस्या शूलिनः शि-
वस्य संध्याया बलिं पूजा तत्र पटहता कुर्वन्सपादयन्नामन्द्राणामीषद्भूमिरीणा
गर्जितानामविकलमखण्डं फलं लप्स्यसे प्राप्स्यसि ॥ लभे कर्तरि लट् ॥ म-
हाकालनाथबलिपटहत्वेन विनियोगात्ते गर्जितसाफल्यं स्यादित्यर्थः ॥

38 Though arriving at *Mahākāla* (the abode of *Śiva*) at any other
time (than the evening), thou shouldst stay (there), O cloud, until
the sun passes beyond the range of sight; (since) performing the
noble function of a drum at the evening worships of *Śiva* thou wilt
reap the full fruit of thy low thunderings

38. W.G1. G2. K1. K2. R. N. M. अत्येति for अत्येति;
M. आमन्त्राणा, M. आमन्त्राणाम् for आमन्त्राणाम्.

पादन्यासकणितरशनास्तत्र लीलावधूतै

रत्नच्छायास्वचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ।

वेश्यास्त्वत्तो नखपदमुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-

नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान् ॥३९॥

३९. पादन्यासोति ॥ तत्र सध्याकाले पादन्यासैश्चरणनिक्षेपैर्नृत्याङ्गैः क-
णिताः शब्दायमाना रशना यासा तास्तथोक्ताः ॥ कणतेरकर्मकत्वात् “ गत्य-
र्थार्कर्मक—” इत्यादिना कर्तरि क्त ॥ लीलयाविलासेनावधूतैः कम्पितै रत्ना-
ना कङ्कणमणानां छायाया कनत्या स्वाचिता रूपिता वलयश्चामरदण्डायेषां तैः ॥
“ बलिश्चामरदण्डे च जराविश्वथचर्मणि ” इति विश्वः ॥ चामरैर्वालव्यजनै-
र्क्लान्तहस्ताः ॥ एतेन दौशिक नृत्य सूचितम् । तदुक्तं नृत्यसर्वस्वे—“खड्गक-
न्दुकवस्त्रादिदण्डिकाचामरसजः । वीणा च धृत्वा यत्कुर्युर्नृत्यं तदौशिकं भवेत्”
इति ॥ वेश्या महाकालनाथमुपेत्य नृत्यन्त्यो गणिकास्त्वत्तो नखपदेषु नखक्ष-
तेषु मुखान्सुखकरान् ॥ “ सुखहेतौ सुखं सुखम् ” इति शब्दार्णवे ॥ वर्षस्या-
ग्रबिन्दून्प्रथमबिन्दून्प्राप्य त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षानपाङ्गानामोक्ष्यन्ते ।
“ परैरुपकृताः सन्तः सद्य प्रत्युपकुर्वते ” इति भावः । “ कामिनीदर्शनीयत्वल-
क्षण शिवोपासनाफलं सद्यो लप्स्यस इति ध्वनिः ॥

39 On receiving from thee the first drops of rain soothing to their
ail-sores, the dancing-girls there who have their girdles jingling by
the movements of their feet (in the dance) (and) their hands wearied
by the *Chowries* waved playfully and possessed of handles inlaid with
the lustre of gems, will shower on thee side-glances long as the
rows of bees

39. C1. C2. M. पादन्यासैः for पादन्यास°. P W. G2.
M. K1. R. N. M °रसनाः for °रशनाः. M. °रचित° for °स्वाचित°.
°कान्त° for क्लान्त°. M. नखमणि° for नखपद°. W. आमोक्ष्यन्ति, N.
M. अमोक्ष्यन्ते for आमोक्ष्यन्ते.

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः

सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः ।

नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां

शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥ ४० ॥

४० पश्चादिति ॥ पश्चात्सध्याबल्यनन्तरं पशुपतेः शिवस्य नृत्यारम्भे ता-
ण्डवप्रारम्भे प्रतिनवजपापुष्परक्तं प्रत्यग्रजपाकुसुमारुण सध्याया भव सान्ध्यं ते-
जो दधानः । उच्चैरुन्नत भुजा एव तरवस्तेषां वन मण्डलेन मण्डलाकारेणाभि-
लीनोऽभिव्याप्तः सन् ॥ कर्तारि क्तः ॥ भवान्या भवपत्न्या ॥ “ इन्द्रवरुणभवशर्वरु-
द्रमृडहिमारण्यवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ” इति ङीष् । आनुगागमश्च ॥ शान्त
उद्वेगो गजाजिनदर्शनभयं ययोस्ते अत एव स्तिमितं निश्चलं नयने यस्मिन्कर्मणि
तत्तथोक्तम् ॥ “ उद्वेगस्त्वरितं क्लेशे भये मन्थरगामिनि ” इति शब्दार्णवः ॥
भक्तिः पूज्येष्वनुरागः ॥ भावार्थे क्तिन्प्रत्ययः ॥ दृष्ट दृष्टा वा भक्तिर्यस्य स दृष्ट-
भक्तिः सन् पशुपतेरार्द्रं शोणितार्द्रं यन्नागाजिनं गजचर्म ॥ “ अजिनं चर्मं कृत्तिः
स्त्री ” इत्यमरः ॥ तत्रेच्छा हरं निवर्तय । त्वमेव तत्स्थाने भवेत्यर्थः । गजा-
सुरमर्दनानन्तरं भगवान्महादेवस्तदीयमार्द्राजिनं भुजमण्डलेन बिभ्रत्ताण्डव च-
कारेति प्रसिद्धिः ॥ दृष्टभक्तिरिति कथं रूपसिद्धिः । दृष्टशब्दस्य “ स्त्रिया पुं-
वत्— ” इत्यादिना पुंवद्भावस्य दुर्घटत्वादपूरणीप्रियादिष्विति निषेधात् । भक्ति-
शब्दस्य प्रियादिषु पाठादिति । तदेतच्चोद्यम् । दृष्टभक्तिरिति शब्दमाश्रित्य प्र-
तिविहितं गणव्याख्याने दृष्ट भक्तिरस्येति नपुंसकं पूर्वपदम् । अदादर्थनिवृत्तिप-
रत्वे दृष्टशब्दाल्लिङ्गविशेषस्यानुपकारित्वात्स्त्रीत्वमविवाक्षितमिति ॥ भोजराजस्तु-
“ भक्तौ च कर्मसाधनायामित्यनेन सूत्रेण भज्यते सेव्यते इति कर्मार्थत्वे भवा-
नीभक्तिरित्यादि भवति । भावसाधनाया तु स्थिरभक्तिर्भवान्यामित्यादि भवति ”
इत्याह । तदेतत्सर्वं सम्यग्विवेचितं रघुवशसजीविन्या “ दृष्टभक्तिरिति ज्येष्ठे ”
इत्यत्र । तस्माद्दृष्टभक्तिरित्यत्रापि मतभेदेन पूर्वपदस्य स्त्रीत्वेन नपुंसकत्वेन
च रूपसिद्धिरस्तीति स्थितम् ॥

इत्थं महाकालनाथस्य सेवाप्रकारमभिधाय पुनरपि नगरसंचारप्रकारमाह—

40 Afterwards when Siva's dance begins, resting in a circular form on the lofty forest of his tree-like arms and assuming a twilight splendour red as fresh *Japā* flowers remove Siva's desire for the elephant's skin wet (with blood) whilst thy devotion is being witnessed by *Pārvatī* with eyes steady (because) free from fear

40. G1. G2. K1. R. N. M. विकसितजपा°, W. C1. C2. M. प्रतिनवजवा° for प्रतिनवजपा°. M. °पुष्परत्न for °पुष्परक्त. P. नृत्तारम्भे for नृत्यारम्भ. R. N. M. °भवान्या: for भवान्या.

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
 रुद्रालोके नरपतिपथे सूचिभेदैस्तमोभिः ।
 सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीं
 तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः ॥४१॥
 तां कस्यांचिद्वनवलभौ सुप्रपारावतायां
 नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्स्विन्नविद्युत्कलत्रः ।
 दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं
 मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ ४२ ॥

४१ गच्छन्तीनामिति ॥ तत्रोज्जयिन्या नक्त रात्रौ रमणवसति प्रियभ-
 वन प्राति गच्छन्तीनां योषिताम् । अभिसारिकाणामित्यर्थः । सूचिभिर्भेदैः ।
 अतिसान्द्रैरित्यर्थः । तमोभी रुद्रालोके निरुद्धदृष्टिप्रसारे नरपतिपथे राजमार्गे
 कनकस्य निकषो निकष्यत इति व्युत्पत्त्या निकष उपलगतरेखा तस्येव स्नि-
 ग्ध तेजो यस्यास्तया ॥ “ स्निग्ध तु मष्टणे सान्द्रे रम्ये क्लीबे च तेजसि ”
 इति शब्दार्णवे ॥ मुदाम्नाद्रिणैकदिक्सौदामनी विद्युत् ॥ “ तेनैकदिक् ” इ-
 त्यण्प्रत्ययः ॥ तयोर्वीं मार्गं दर्शय । किं च तोयोत्सर्गस्तनिताभ्या वृष्टिगर्जि-
 ताभ्या मुखरः शब्दायमानो मा स्म भूः । कुतः । ता योषितो विक्लवा भीर-
 वः । ततो वृष्टिगर्जिते न कार्ये इत्यर्थः ॥ नात्र तोयोत्सर्गे स्तनितमिति
 विग्रहः । विशिष्टस्यैव केवलस्तनितस्याप्यनिष्ठत्वात् । न च द्वन्द्वपक्षेऽल्पाक्षर-
 पूर्वनिपातशास्त्रविरोधः । “ लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ” इति सूत्र एव विपरीत
 निर्देशेन पूर्वनिपातशास्त्रस्यानित्यत्वज्ञापनादिति ॥

४२. तामिति ॥ चिर विलसनात्स्फुरणात्स्विन्नविद्युदेव कलत्र यस्य स भ-

41 Illumine with lightning having lustre resembling the streaks
 of gold (on a touch-stone), the ground for the women proceeding
 then by night to the abodes of their lovers along the high street where
 the sight is obstructed by darkness penetrable with a needle, (but) do
 not be noisy by thundering and discharging water, because they are
 timid.

42 Having passed that night on the terrace of some house, where

41. W. M. रात्रौ for नक्तम् M. रुद्रालोकैः for रुद्रालोके W.
 G1. G2. K1 K2 R. M. सौदामिन्या for सौदामन्या. W. M.
 °छायया, G2. स्पर्धया for स्निग्धया. M. तोयोत्सर्गात् for तोयोत्सर्गं.
 M. °विमुक्तः for मुखरः P. W. M. मा च भूः for मास्म भूः.

42. K1. N. M. भवनवलभौ, W. N. M. भवनवडभौ for भवन-
 वलभौ. G2. K1. R. N. M. °पारापताया for °पारावताया.

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजा शु ।

प्रालेयासं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः

प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनलपाभ्यसूयः ॥ ४३ ॥

वान्सुप्ताः पारावताः कलरवा यस्यां तस्याम् । विविक्तायामित्यर्थः ॥ “पारावतः कलरवः कपोतः” इत्यमरः ॥ जनसंचारस्तत्रासभावित एवेति भावः । कस्या चिद्भवनस्य वलभौ । आच्छादने उपरिभाग इत्यर्थः ॥ “आच्छादनं स्याद्वलभी-गृहाणाम्” इति हलायुधः ॥ ता रात्रिं नीत्वा सूर्ये दृष्टे सति । उदिते सतीत्यर्थः । पुनरप्यध्वशेषं वाहयेत् । तथाहि सुहृदा मित्राणामभ्युपेताङ्गीकृतार्थस्य प्रयोजनस्य कृत्या क्रिया यैस्ते । अभ्युपेतसुहृदर्या इत्यर्थः ॥ सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । “कृत्या क्रियादेवतयोः कार्ये स्त्रीकुपिते त्रिषु” इति यादाव ॥ “कृजः श च” इति चकारात्क्यप् ॥ न मन्दायन्ते खलु न मन्दाभवन्ति हि । न विलम्बन्त इत्यर्थः ॥ “लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्” इति क्यष् । “वा क्यषः” इत्यात्मनेपदम् ॥

४३. तस्मिन्निति ॥ तस्मिन्काले पूर्वोक्ते सूर्योदयकाले प्रणयिभिः प्रियतमैः खण्डितानां योषितां नायिकाविशेषाणाम् ॥ “ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेष्वाकषायिता” इति दशरूपके ॥ नयनसलिलं शान्तिं नेयं नेतव्यम् ॥ नयतिर्द्वैकर्मकः ॥ अतो हेतोर्भानोर्वर्त्मांशु शीघ्रं त्यज । तस्यावरको मा भूरित्यर्थः ॥ विपक्षेऽनिष्टमाचष्टे—सोऽपि भानुः । नलान्यम्बुजानि यस्याः सन्तीति नलिनी पद्मिनी ॥ “तृणेऽम्बुजे नलं ना तु रात्रिं नाले तु न स्त्रियाम्” इति शब्दार्णवे ॥ तस्या स्वकान्तायाः कमलं स्वकुसुममेव वदनं तस्मात्प्रालेय हिममेवास्रमश्रु हर्तुं शमयितुं प्रत्यावृत्तं प्रत्यागतः । नलिन्याश्च भर्तुर्भानोर्देशः-

pigeons roost with thy lightning-spouse fatigued by continual playing, thou shouldst go over the rest of thy journey when the sun rises, for those who have undertaken the accomplishment of any business for their friends, do not tarry

43 The tears of women angry with their lovers have at that time to be wiped off, therefore quit the path of the sun quickly, for he also, having returned to remove the dew-tears from the lotus-face of the lotus plant, would be not a little incensed against thee obstructing his rays

43. R. N. M. प्रालेयाश्च, G2. W. K1. M. प्रालेयाश्रं for प्रालेयासं. M. कमलनयनाद् for कमलवदनाद्.

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने

छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।

तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या-

न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्धर्तनप्रेक्षितानि ॥ ४४ ॥

न्तरे नलिन्यन्तरगमनात्खण्डितात्वमित्याशयः । ततस्त्वयि । करानशून्य-
द्भीति कररुद । किं । तस्मिन्करराधि सति । हस्तरोधिनी सतीति च गम्यते ॥
“ बलिहस्तांशवः कराः ” इत्यमरः ॥ अनल्पाभ्यसूयोऽधिकविद्वेषः स्यात् ।
प्रायेणेच्छाविशेषविवाताद्देवो रोषविशेषश्च कामिना भवतीति भावः । किं च
“ ब्रह्माण वार्कमीशान विष्णु वा द्वेष्टि यो जनः ” श्रेयासि तस्य नश्यन्ति रौरव
च भवेद्भुवम्” इति निषेधात्कार्यहानिर्भविष्यतीति ध्वनिः ॥

४४ गम्भीराया इति ॥ गम्भीरा नाम सरित् ॥ उदात्तनायिका च ध्व-
न्यते ॥ तस्याः प्रसन्नेऽनुरक्तत्वाद्दोषरहिते चेतसि प्रसन्नेऽतिनिर्मले पयसि ।
प्रकृत्या स्वभावेनैव सुभगः सुन्दरः ॥ “ सुन्दरेऽधिकभागे च दुर्दिनेतरवासरे ।
तुगीयाशे श्रीमति च सभगः ” इति शब्दार्णवे ॥ ते तव छाया चासावात्मा च
सोऽपि प्रतिबिम्बशरीरं वा प्रवेश लप्स्यते । अपिशब्दात् साक्षात्प्रवेशमनिच्छोरपीति
भावः । तस्माच्छायाद्वारापि प्रवेशावश्यभावित्वादस्या गम्भीरायाः । कुमुदवद्विशदा-
नियवलानि चटुलानि शीघ्राणि शफराणा मीनानामुद्धर्तनान्धुल्लुण्ठनान्येव प्रेक्षिता-
न्यवलोकनानि ॥ “ त्रिषु स्याच्चटुल शीघ्रम् ” इति विश्वः ॥ एतावदेव-
गम्भीराया अनुरागलिङ्गम् । धैर्याद्वाष्टर्यात् । वैयात्यादिति यावत् । मोघीकर्तुं
विफलिकर्तुं नाहसि । नानुरक्ता विप्रलब्धव्येत्यर्थः ॥ धूर्तलक्षणं तु—“ क्लिभ्राति
नित्यं दयितामङ्कस्थामातिसुन्दरः । अश्वत्थरक्ता यत्नेन रक्तां धूर्तो विमुञ्च-
ति” इति ॥

44 Yet thy self in the form of a shadow, naturally handsome, will
enter the pellucid water of the *Gambhîrâ* (river) as into a pure heart,
thou dost not, therefore, deserve by impudence on thy part, to disap-
point its glances consisting of the rapid gambols of fish and as white
as lotuses

44. M. तस्मात्तस्याः for तस्मादस्याः . G2. K2. चपल° for
चटुल°. W. M. °सफर° for °शफर°.

तस्याः किञ्चित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
 हृत्वा नील सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम् ।
 प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
 ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातु समर्थः ॥ ४५ ॥
 त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसंपर्करम्यः
 स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ।
 नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरि ते
 शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥ ४६ ॥

४५. तस्या इति ॥ हे सखे । प्राप्ता वानीरशाखा वेतसशाखा येन तत्त-
 थोक्तमत एव किञ्चिदीषत्करधृत हस्तावलम्बितामिव स्थितम् । मुक्तस्त्यक्तो रोधस्तट-
 मेव नितम्बः कटिर्येन तत्तथोक्तम् ॥ “ नितम्ब पश्चिमे श्रोणिभागेऽद्रिकटके
 कटो ” इति यादवः ॥ नील कृष्णवर्णं तस्या गम्भीरायाः सलिलमेव वसन ।
 नीलाम्बरवारण विरहतापनिवारणमिति प्रसिद्धम् ॥ हृत्वापनीय लम्बमानस्य
 पीतसलिलभरालम्बमानस्य । अन्यत्र जघनारूढस्य । ते तव प्रस्थान प्रयाण
 कथमपि कृच्छ्रेण भावि ॥ कृच्छ्रत्व हेतुमाह-ज्ञातेति ॥ ज्ञातास्वादोऽनुभूतरसः क. पुमा-
 न्विवृत प्रकटीकृत जघन कटिस्तत्पूर्वभागो वा यस्यास्ताम् ॥ “ जघन स्यात्कटौ
 पूर्वश्रोणिभागापराशयो. ” इति यादवः ॥ विहातु त्यक्तु समर्थः । न कोऽ
 पीत्यर्थ ॥

४६ त्वदिति ॥ त्वन्निष्यन्देन तव वृष्ट्योच्छ्वसिताया उपबृहिताया वसु-

45 After taking away its dark garment in the form of water which, having left the loins in the form of the bank and clung to the branches of the reeds, is, as it were, slightly held up by the hand, thou, Oh friend, hanging down (on account of the weight of water drunk) wilt depart with great difficulty —(for) who that has (once) experienced the pleasure is able to leave a woman with her hips uncovered?

46 A cool wind pleasant on account of contact with the smell of

45. M नीत्वा for हृत्वा. K1. N. M. लब्धास्वादः for ज्ञातास्वादः. W M पुलिनजघना. G1. G2. K1. K2. N. M विपुलजघना, M. फुलितजघना for विवृतजघना

46. W M. G2 °निष्यन्दो°, M. °निष्यन्दो°, K1. K2. R. N. M °निष्यन्दो° for °निष्यन्दो°. W. K2. M °पुण्य for °रम्यः. W. G2 K1. R. N. M. °स्रोतोरन्ध्र° for °स्रोतोरन्ध्र°. P. °मधुर for °सुभग P. M. वातः for वायु. P M. काननोदुम्बराणा, W. M. काननोदुम्बराणा, M. काननोदुम्बराणा for काननोदुम्बराणाम्.

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेधीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगङ्गाजलाद्रैः ।

रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-

मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्वि तेजः ॥ ४७ ॥

धाया भूर्मेरन्धस्य सपकेण रम्य । सुरभिरित्यर्थः ॥ स्रोतःशब्देनेन्द्रियवाचिना तद्विशेषो घ्राण लक्ष्यते ॥ “ स्रोतोऽम्बुवेगेन्द्रिययोः ” इति विश्वः ॥ स्रोतोरन्धेषु नासाग्रकुहरेषु यद्वनितं शब्दस्तेन सुभग यथा तथा दन्तिभिर्गजैः पीयमानः । वसुधागन्धलोभादाघ्रायमाण इत्यर्थः । अनेन मान्द्यमुच्यते । काननेषु वनेषूदुम्बराणां जन्तुफलानाम् ॥ “ उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेमदुग्धकः ” इत्यमरः ॥ परिणमयिता परिपाचयिता ॥ “ मितां ह्रस्वः ” इति ह्रस्वः ॥ शीतो वायुः देवपूर्व देवशब्दपूर्व गिरिम् । देवगिरिमित्यर्थः । उपजिगमिषोरुपगन्तुमिच्छोः ॥ गमेः सन्नन्तादुपगत्ययः ॥ ते तव नीचैः शनैर्वास्यति । त्वा वीजयिष्यतीत्यर्थः ॥ सबन्वमात्रविवक्षाया षष्ठी ॥ “ देवपूर्व गिरिम् ” इत्यत्र देवपूर्वत्व गिरिशब्दस्य । न तु सज्जिनस्तदर्थस्येति । सज्ञायाः सज्जित्वाभावादवाच्यवचन दोषमाहुरालकारिका । तदुक्तमेकावल्याम् — “ यदवाच्यस्य वचनमवाच्यवचनं हि तत् ” इति ॥ समाधानं तु देवशब्दविशेषितेन गिरिशब्देन शब्दपरेण मेघोपगमनयोग्यो देवगिरिर्लक्ष्यत इति कथंचित्सपाद्यम् ॥

४७. तत्रेति ॥ तत्र देवगिरौ नियता वसतिर्यस्य तम् । नित्यसनिहितमित्यर्थः ॥ पुरा किञ्च तारकाख्यासुरविजयसतुष्टः सुरप्रार्थनावशाद्भगवान्भवानीनन्दनः स्कन्दो नित्यमहमिह सह शिवाभ्यां वसामीत्युक्त्वा तत्र वसतीति प्रसिद्धिः ॥ स्कन्द कुमार स्वामिनम् । पुष्पाणां मेघः पुष्पमेघः । पुष्पमेधीकृतात्मा कामरूपत्वात्पुष्पवर्धुकमेधीकृतविग्रहः सन्व्योमगङ्गाजलाद्रैः । पुष्पासारैः पुष्पसंपतैः ॥ “ धारासपात आसारः ” इत्यमरः ॥ भवान्स्वयमेव स्नपयत्वभिषिञ्च-

th- ground increased by thy showers, drunk in by elephants in a manner pleasant on account of sounds in the apertures of their trunks, the ripener of the forest figs, will gently blow for thee, desirous of proceeding to *Devagiri*

47 Turning thyself into a flower-cleud thou shouldst sprinkle *Skanda*, having a permanent residence there, with showers of blossoms moistened with the water of the Celestial Ganges — For, that (*Skanda*) is the sun-excelling lustie placed by the bearer of the young moon (*Siva*) in the mouth of *Agni* (god of fire) for the protection of *Indra's* hosts

47. M. वसूनां for चमूना. G2. N. M. तद्वितेजः for तद्वि तेजः.

ज्योतिर्लेखावल्यि गलितं यस्य बर्ह भवानी

पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ।

धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं

पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गजितैर्नर्तयेथाः ॥ ४८ ॥

तु । स्वयं पूजाया उत्तमत्वादिति भावः ॥ तथा च शंभुरहस्ये—“ स्वयं य-
जाति चेद्देवमुत्तमा सोदरात्मजैः । मध्यमा या यजेद्भृत्यैरवमा याजनक्रिया ” इ-
ति ॥ स्कन्दस्य पूज्यत्वसमर्थनेनार्थेनार्थान्तरं न्यस्यति—रक्षेति ॥ तद्भगवान् ।
स्कन्द इत्यर्थः ॥ विधेयप्राधान्यान्नपुंसकनिर्देशः ॥ वासवस्येमा वासव्यः ॥
“ तस्येदम् ” इत्यण् ॥ तासां वासवीनामैन्द्राणां चमूनां सेनानां रक्षा एव हेतुः
तस्य रक्षाहेतो रक्षया कारणेन । रक्षार्थमित्यर्थः ॥ “ षष्ठी हेतुप्रयोगे ” इति षष्ठी ॥
नवशशिश्रुता भगवता चन्द्रशेखरेण । वहतीति वहः ॥ पचाद्यच् ॥ हुतस्य वहो
हुतवहो वहिस्तस्य मुखे सभृत सचितम् । आदित्यमतिक्रान्तमत्यादित्यम् ॥
“ अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितियया ” इति समासः ॥ तेजो हि साक्षाद्भगवतो
हरस्यैव मूर्त्यन्तरमित्यर्थः । अतः पूज्यमिति भावः । मुखग्रहणं तु शुद्धत्वसूचनार्थ-
म् । तदुक्तं शंभुरहस्ये—“ गवा पश्चाद्विजस्याङ्घ्रियोगिनां हृत्कवेर्वचः । पर शुचि-
तमं विद्यान्मुखं स्त्रीवह्निवाजिनाम् ” इति ॥

४८. ज्योतिरिति ॥ ज्योतिषस्तेजसो लेखा राजयस्तासां वलयं मण्डलं
यस्यास्तीति तथोक्तम् । गलितं भ्रष्टम् । न तु लौल्यात्स्वयं छिन्नमिति भावः ।
यस्य मयूरस्य बर्हं पिच्छम् ॥ “ पिच्छबर्हं नपुसके ” इत्यमरः ॥ भवानी गौ-
री । पुत्रप्रेम्णा पुत्रस्नेहेन कुवलयस्य दलं पत्रं तत्प्रापि तद्योगि यथा तथा कर्णे
करोति । दलेन सह धारयतीत्यर्थः । यद्वा कुवलयस्य दलप्रापि दलभाजि
दलाहं कर्णे करोति ॥ किबन्तात्सप्तमी ॥ दलं परिहृत्य तत्स्थाने बर्हं धत्ते

48 Afterwards, by means of (thy) thunders (made) intense
by being reverberated by the mountain, thou shouldst make that
Shandas peacock dance, which has the corners of its eyes whitened
by the light of Siva's moon, and whose molting plume covered with
circlets of streaks of lustre, Párvatī places on her ear, in such a man-
ner as to come in contact with the lotus-leaf (already resting there)
through affection for her son

48. M. °वल्यगलितं for °वल्यि गलितं. M, पुत्रस्नेहात्, K2.
M. पुत्रप्रीत्या for पुत्रप्रेम्णा. K2. M. कुवलयपद° for कुवलयदल°.
M. °क्षपि, N. °स्पर्धि for °प्रापि. W. M. प्याययेः, M. आ-
प्याययेः for पावकेः.

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा

सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्रीणिभिर्मुक्तमार्गः ।

व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्य-

न्स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ४९॥

इत्यर्थः ॥ नाथस्तु “ कुवलयदलक्षेपि ” इति पाठमनुसृत्य “ क्षेपो निन्दाप-
सारण वा ” इति व्याख्यातवान् ॥ हरशशिरुचा हरशिरश्चन्द्रिकया धौतापाङ्ग-
स्वतोऽपि शौक्लयादतिधवालेतनेत्रान्तम् ॥ “ अपाङ्गो नेत्रयोरन्तौ ” इत्यमरः ॥
पावकस्याग्रेरपत्य पावकिः स्कन्दः ॥ “ अत इञ् ” इति इञ् ॥ तस्य त पूर्वोक्त-
मयूर पश्चात्पुष्पाभिषेचनानन्तरमद्वैदेवगिरिः ॥ कर्तुः ॥ ग्रहणेन गुहासक्रमणेन
गुरुभिः । प्रतिध्वानमहाद्भिरित्यर्थः । गर्जितैर्नर्तयेथा नृत्य कारय । मार्दङ्गिक-
भावेन भगवन्तं कुमारमुपास्वेति भावः ॥ “ नर्तयथा. ” इत्यत्र “ अ-
णावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात् ” इत्यात्मनेपदापवादः. “ निगरणचलनार्थेभ्यश्च ”
इति परस्मैपदं वा न भवति तस्य “ न पादम्याड्यमाड्यसपरिमुहुरुचिर्नृतिव-
दवसः ” इति प्रतिषेधात् ॥

४९. आराध्योति ॥ एन पूर्वोक्त शरा बाणवृणानि ॥ “ शरो बाणवृणे
बाणे ” इति शब्दार्णवे ॥ तेषा वन शरवणम् ॥ “ प्रनिरन्तःशरे- ” इत्यादि-
ना णत्वम् ॥ तत्र भवो जन्म यस्य त शरवणभवम् देव स्कन्दम् ॥ “ शरजन्मा
षडाननः ” इत्यमरः ॥ “ अवज्यो बहुव्रीहिर्व्यधिकरणो जन्माद्युत्तरपद ” इति
वामनः । अवज्योऽगतिक्त्वादाश्रणीय इत्यर्थः ॥ आराध्योपास्य वीणिभिर्वीणाव-
द्भिः ॥ व्रीह्यादित्वादिनिः ॥ सिद्धद्वन्द्वैः सिद्धमिथुनैः । भगवन्त स्कन्दमुपवी-
णयितुमागतैरिति भावः । जलकणभयात् । जलसेकस्य वीणाकणनप्रतिबन्धक-
त्वादिति भावः । मुक्तमार्गस्त्यक्तवर्त्मा सबुल्लङ्घिताध्वा । कियन्तमध्वान गतः

49 After paying thy respects to the god (Skanda) born in a forest of reeds thou, with thy path being left by the pairs of *Siddha* s bearing lutes (in their hands) from fear of drops of water, having traversed the road (a little further), shouldst stop (there) desirous of doing honour to Rantideva's fame sprung from the slaughter of the daughters of *Surabhi* (cows) and transformed into a river (*Charmanavati* by name) on the earth

49. K2 एव for एन. W. M शरवन° for शरवण°. G2. K2. R. N. M. °भुव for °भव W. M. दत्तमार्गः, M दत्तवर्त्मा, K2 त्यक्तमार्गः for मुक्तमार्गः. G2. K1. N. R. M श्रोतोमूर्त्या for स्रोतोमूर्त्या. M. परिणतां for परिणता.

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे

तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम् ।

प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-

रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥ ५० ॥

इत्यर्थः । सुरभितनयानां गवामालम्बेन संज्ञपनेन जायत इति तथोक्ताम् । भु-
वि लोके स्त्रीतोमूर्त्या प्रवाहरूपेण परिणता रूपविशेषमापन्नां रन्तिदेवस्य
दशपुरपतेर्महाराजस्य कीर्तिम् । चर्मण्वत्याख्यां नदीमित्यर्थः । मानयिष्यन्त-
त्कारिष्यन्त्यालम्बेथा । आलम्ब्यावतरेरित्यर्थः ॥ पुरा किल राज्ञो रन्तिदेव-
स्य गवालम्बेष्वेकत्र सभृताद्रक्तनिष्यन्दाचर्मराशेः काचिन्नदी सस्यन्दे । सा
चर्मण्वतीत्याख्यायत इति ॥

५०. त्वयीति ॥ शार्ङ्गिणः कृष्णस्य वर्णस्य कान्तेश्चैरिव वर्णचौरे । तत्तु-
स्यवर्ण इत्यर्थः । त्वयि जलमादातुमवनते सति पृथुमपि दूरभावात् दूरत्वा-
त्तनुं सूक्ष्मतया प्रतीयमानं तस्याः सिन्धोश्चर्मण्वत्याख्यायाः प्रवाहम् । गगने
मतिर्येषां ते गगनगतयः खेचराः सिद्धगन्धर्वादयः ॥ अयमपि बहुव्रीहिः पूर्व-
ज्जन्माद्युत्तरपदेषु द्रष्टव्यः ॥ नूनं सत्यं दृष्टीगवर्ज्यं नियम्यैकमेकयष्टिकं स्थूलो
महान्मध्यो मध्यमणीभूत इन्द्रनीलो यस्य तं भुवो भूमेर्मुक्तागुणं मुक्ताहारमिव
प्रेक्षिष्यन्ते ॥ अत्रात्यन्तनीलमेघसगतस्य प्रवाहस्य भूकण्ठमुक्तागुणत्वेनान्प्रेक्ष-
णादुत्प्रेक्षैवेयमितीवशब्देन व्यज्यते । निरुक्तकारस्तु “ तत्र तत्रोपमा यत्र इव-
शब्दस्य दर्शनम् ” इतीवशब्ददर्शनादत्राप्युपमैवेति बभ्राम ॥

50 While thou, pilferer of the hue of *Krishna* art bending down to
take water (from the river) the sky-goers, having turned their eyes
down will really look upon the stream of that river, though large, (ap-
pearing to be) small owing to distance, as if it were the earth's single-
stringed pearl-necklace with a large sapphire in the centre

50. K1. दूरदेशात् for दूरभावात्. G1. G2. R. N. K2.
M. दूर for नूनं. M. आबध्य for आवर्ज्य. M. वृष्टीः for दृष्टीः.

तामुत्तीर्य ब्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां

पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् ।

कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं

पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥ ५१ ॥

५१. तामिति ॥ ता चर्मण्वतीमुत्तीर्य भ्रुवो लता इव भ्रूलताः ॥ उपमि-
तिसमासः ॥ तासां विभ्रमा विलासाः परिचिताः क्लृप्ता येषु तेषां पक्ष्माणि ने-
त्रलोमानि ॥ “ पक्ष्म सूत्रादिसूक्ष्मांशे किञ्जल्के नेत्रलोमानि ” इति विश्वः ॥
तेषामुत्क्षेपादुन्नमनाद्धेतोः । कृष्णाश्च ताः शाराश्च कृष्णशारा नीलशवलाः ॥
“ वर्णो वर्णेन ” इति समासः ॥ “ कृष्णरक्तासिताः शाराः ” इति याद-
वः ॥ ततश्च शारशब्दादेव सिद्धे काष्ण्ये पुनः कृष्णपदोपादानं काष्ण्यप्राधा-
न्यार्थम् । रक्तत्वं तु न विवक्षितमुपमानानुसारात्तस्य स्वाभाविकस्य स्त्रीनेत्रेषु
सामुद्रिकविरोधादितरस्याप्रसङ्गात् । कचिद्भावकथनं तूपपत्तिविषयम् ॥ उपरि
विलसन्त्यः कृष्णशाराः प्रभा येषां तेषाम् । कुन्दानि माध्यकुसुमानि ॥
“ माध्य कुन्दम् ” इत्यमरः ॥ तेषां क्षेप इतस्ततश्चलनं तस्यानुगा अनुसारिणो
ये मधुकरास्तेषां श्रियं मुष्णन्तीति तथोक्तानाम् । क्षिप्यमाणकुन्दानुविधायिमधु-
करकल्पानामित्यर्थः । दशपुरं रन्तिदेवस्य नगरं तत्र वध्वः स्त्रियः ॥ “ वधू-
र्जाया स्नुषा स्त्री च ” इत्यमरः ॥ तासां नेत्रकौतूहलानां नेत्राभिलाषा-
णाम् । साभिलाषदृष्टीनामित्यर्थः । आत्मबिम्बं स्वमूर्तिं पात्रीकुर्वन्विषयी-
कुर्वन्ब्रजं गच्छ ॥

51. Crossing that (river) proceed—making thy body, the object
of curiosity of the *Dashapura* women's eyes, acquainted with the
(graceful) movements of the creeper-like eyebrows, having dark and
variegated lights flashing up by reason of the uplifting of the eyelashes,
and therefore stealing (as it were) the beauty of bees following the
movements of *Kunda* flowers

51. P. W. G1 G2. K1. R. N. M. °कृष्णसार° for
°कृष्ण-शार°. G2. M. कुन्दोत्क्षेपा° for कुन्दक्षेपा°. W. M. °श्रीकुषां,
M. °श्रीयुषां° G2. N. M. °श्रीमुखं for °श्रीमुषाम्.

ब्रह्मावर्तं जनपदमथ छायाया गाहमानः

क्षेत्रं क्षेत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः ।

राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा

धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥ ५२ ॥

हित्वा हालामभिमतस्यां रेवतीलोचनाङ्गां

बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे ।

कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना-

मन्तः शुद्धस्त्वमसि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥ ५३ ॥

५२ ब्रह्मावर्तमिति ॥ अथानन्तर ब्रह्मावर्तं नाम जनपदं देशम् ॥ अत्र मनुः—“ सारस्वतीदृषद्वर्त्योर्देवनद्योर्धदन्तरम् ॥ त देवनिर्मित देश ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ” इति ॥ छायायानात्पमण्डलेन गाहमानः प्रविशन्न तु स्वरूपेण । “पी-
ठक्षेत्राश्रमादीनि परिवृत्यान्वतो व्रजेत् ” इति वचनात् । क्षेत्रप्रधनपिशुनम् ।
अद्यापि शिरःकपालादिमत्तया कुरुपाण्डवयुद्धसूचकमित्यर्थः ॥ “ युद्धमायाधनं
जन्य प्रधन प्रविदारणम् ” इत्यमरः ॥ तत्प्रसिद्ध कुरुणामिदं कौरवक्षेत्रं भजेथाः ।
कुरुक्षेत्रं व्रजेत्यर्थः । यत्र कुरुक्षेत्रं गाण्ड्यस्यास्तीति गाण्डीव धनुर्विशेषः ॥ “ गाण्ड्य-
जगात्सज्ञायाम् ” इति मत्वर्थीयां वप्रत्ययः ॥ “ कपिध्वजस्य गाण्डीवगाण्डि-
वौ पुनपुंसकौ ” इत्यमरः ॥ तद्वनुर्यस्य स गाण्डीववन्वार्जुनः ॥ “ वा सज्ञा-
याम् ” इत्यनङादेशः ॥ शितशरशतैर्निशितबाणसहस्रै राजन्याना राज्ञा मुखानि
धाराणामुदकधाराणां पातैः कमलानि त्वमिवाभ्यवर्षदभिमुखं वृष्टवान् । शरव-
र्षणशिरासि चिच्छेदेत्यर्थः ॥

५३. हित्वेति ॥ बन्धुप्रीत्या कुरुपाण्डवस्नेहेन । न तु भयेन । समरविमुखो

52 Then entering the country (called) *Brahmāvarta* by (thy) shadow, thou shouldst visit the field of the *Kurus*, indicative of the war between the *Kshatriyas* in which, the bearer of the *Gāndīva* bow (Arjuna) covered the faces of the *Kshatriya* princes with hundreds of sharp arrows, as thou dost the lotuses with heavy showers

53 Having made use, O friend, of the waters of the *Sarasvatī*,

52. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. अधः, M. अदः, M. अदु. for अध M. शितशर° for शितशर°. G1. K1. N. M. गाङ्गवि° for गाण्डीवि° W. M. अभ्याषिञ्चन् for अभ्यवर्षन्.

53. M. कृत्वा, M. छित्वा, M. भूत्वा, K1. त्यक्त्वा for हित्वा. P. N. M. बन्धुस्नेहात् for बन्धुप्रीत्या. P. G1. K2. M. अधिगमम् for अभिगमम्. W. C1. C2. G1. G2. K1. K2. R. N. M. त्वमपि for त्वमसि. G1. M. भवसि for भविता.

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णा

जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ।

गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विदस्येव फेनैः

शंभोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥ ५४ ॥

शुद्धनिःस्पृहः । लाङ्गलमस्यास्तीति लाङ्गली हलधरः । अभिप्रयुक्तसामभीष्टस्वादा
तथा रेवत्याः स्वप्रियाया लोचने एवाङ्कः प्रतिबिम्बितत्वाच्चिह्नं यस्यास्ता हालां
सुराम् ॥ “सुरा हलिप्रिया हाला” इत्यमरः ॥ “अभिप्रयुक्तं देशभाषापद-
मित्यत्र सूत्रे हालाति देशभाषापदमप्यतीव कविप्रयोगात्ताधु” इत्युदाजहार
वामनः ॥ हित्वा त्यक्त्वा । दुस्त्यजामपीति भावः । यां सारस्वतीरपः सिषेवे ।
हे सौम्य सुभग । त्वं तासां सरस्वत्यां नद्या इमां सारस्वत्यस्तासामभिगम-
सेवां कृत्वान्तोऽन्तरात्मनि शुद्धो निर्मलो निर्दोषो भविता ॥ “षुल्लुचौ”
इति टच् ॥ असि सद्य एव पूतो भविष्यसीत्यर्थः ॥ “वर्तमानसामीप्ये वर्त-
मानवद्वा” इति वर्तमानप्रत्ययः ॥ वर्णमात्रेण वर्णेनैव कृष्णः श्यामः । न तु
पापेनेत्यर्थः । अन्तः शुद्धिरेव सपाद्या न तु बाह्या । बहिःशुद्धोऽपि सूतवधप्राय-
श्चित्तार्थं सारस्वतसलिलसंवी तत्र भगवान्बलभद्र एव निदर्शनम् । अतो भव-
तापि सरस्वती सर्वथा सेवितव्येति भावः ॥

५४. तस्मादिति ॥ तस्मात्कुरुक्षेत्रात्कनखलस्याद्रेः समीपेऽनुकनखलम् ॥
“अनुर्यत्समया” इत्यव्ययीभावः ॥ शैलराजाद्विमवतोऽवतीर्णां सगरतनयानां
स्वर्गसोपानपङ्क्तिम् । स्वर्गप्राप्तिसाधनभूतामित्यर्थः । जह्नीनां राज्ञः कन्या
जाह्नवीं गच्छेर्गच्छ ॥ विध्यर्थे लिङ् ॥ या जाह्नवी गौर्या वक्त्रे या भ्रुकुटि-
रचना सापत्यरोषाद्भूभङ्गकरण ॥ ता फेनैर्विहस्यहमित्वेव ॥ धावत्यात्फेनानां
हासत्वेनोत्प्रेक्षा ॥ इन्दौ शिरोमाणिक्यभूते लग्ना ऊर्मय एव हस्ता यस्याः से-
न्दुलग्नोर्मिहस्ता सती शंभो केशग्रहणमकरोत् । यथा काचित्तौढा नायिका

which the bearer of the plough (Balarâma), refraining from the
wine, possessed of an agreeable flavour (and) bearing the marks of
Revati's eyes (through reflection) partook of, when he turned his
face away from the battle field, out of regard for his kinsmen, thou
(thus) purified within, wilt be dark only in colour

54 Thence thou shouldst go by the side of Kanakhala to Jahnu's
daughter (the Ganges), descended from the Lord of mountains (The
Himâlaya), (and) forming a flight of steps to heaven for Sagara's

54 W. M. वक्रभ्रुकुटि° for वक्त्रभ्रुकुटि°. W. N. M. विह-
स्यैव, M. विहस्यौच्च° for विहस्येव. N. °लग्नोर्मि° for लग्नोर्मि°.

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यग्गम्भः ।

संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययासौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासंगमेवाभिरामा ॥ ५५ ॥

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः ।

वक्ष्यस्वध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥ ५६ ॥

सपत्नीमसहमाना स्ववालम्ब्य प्रकटयन्ती स्वभर्तार सह शिरोरत्नेन केशेष्वारु-
र्षति तद्वदिति भावः ॥ इदं च पुरा किल भगीरथप्रार्थनया भगवतीं गगनप-
थात्पतन्तीं गङ्गा गङ्गाधरो जटाजूटन जग्राहेति कथामुपजीव्योक्तम् ॥

५५ तस्या इति ॥ सुरगज इव कश्चिद्दिग्गज इव व्योम्नि पश्चार्ध पश्चा-
र्धः । पश्चिमार्धमित्यर्थः ॥ पृषोदरादित्वात्माधु ॥ तेन लम्बन इति पश्चार्धल-
म्बी सन्पश्चार्धभागेन व्योम्नि स्थित्वा । पूर्वार्धेन जलोन्मुख इत्यर्थः । अच्छ-
स्फटिकविशदं निर्मलस्फटिकावदात् तस्या गङ्गाया अम्भस्तिर्यक्किरन्ती यथा
तथा पातु त्व तर्कयेर्विचारयेश्चेत् । सपदि स्रोतसि प्रवाहे संसर्पन्त्या सक्रामन्त्या
भवतश्छायया प्रतिबिम्बेनासौ गङ्गा अस्थान प्रयागादन्यत्रोपगतः प्राप्तो यमु-
नासंगमो यया सा तथाभूत्वाभिरामा स्यात् ॥

५६. आसीनानामिति ॥ आसीनानामुपविष्टानां मृगाणां कस्त्रिकामृगा-

sons, which (river) laughing, as it were, with its foam at the frown
on Gouri's face, seized the hair of Siva with her wave-hand touching
the moon on his head

55 Shouldst thou think of drinking obliquely of its water—clear
as pure crystal, with thy hinder part resting on the sky, like a cele-
stial elephant, then owing to thy shadow moving along on the stream,
it (the river) would at once be as beautiful as if it had been joined by
the Yamunā at a place other than Prayāga

55 On reaching the mountain, the source of the same river (the

55 W. G1 G2 K1 K2 R N M पूर्वार्धलम्बी for
पश्चार्धलम्बी R. M. °स्फुटिक° for °स्फटिक° M. संसर्पन्त्या, W.
संसर्पन्त्या: for संसर्पन्त्या. P. G1, G2 K1 K2. B. R. N.
M. छायाया सा for छायायासौ. M. °उपनत° for °उपगत° W. G1.
G2. K1. K2. N. M °संगमेन G. M. °संगमे च for °संगमेव.
M. अभिरम्या G1. अभिरामे for अभिरामा.

56. M. शुभ्राम्, K2. M. रम्या for शुभ्र°. M. तुषारैः for
तुषारैः.

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा

बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः ।

अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-

रापन्नार्त्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम् ॥ ५७ ॥

नाम् ॥ अन्यथा नाभिमग्नानुपपत्तेः ॥ नाभिमग्नैः कस्तूरीगन्धैस्तेषां तदुद्भव-
त्वात् । अत एव मृगनाभिसंज्ञा च ॥ “ मृगनाभिर्मुगमदः कस्तूरी च ” इ-
त्यमरः ॥ अथवा नाभयः कस्तूर्यः ॥ “ नाभिः प्रधाने कस्तूरीमदे च कचिदी-
रितः ” इति विश्वः ॥ तासां गन्धैः सुरभिताः सुरभीकृताः शिला यस्यतं
तस्या गङ्गाया एव प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम् । तुषारैर्गौर सितम् ॥
“ अवदातः सितो गौरः ” इत्यमरः ॥ अचल प्राप्य । विनीयतेऽनेनेति विनय-
नम् ॥ करणे ल्युट् ॥ अध्वश्रमस्य विनयनेऽपनोदके तस्य हिमद्रेः शृङ्गे नि-
षण्ण सत् । शुभ्रो यस्त्रिनयनस्य त्र्यम्बकस्य वृषो वृषभः ॥ “ सुकृते वृषभे
वृषः ” इत्यमरः ॥ तेनोत्प्लातेन विदारितेन पङ्केन सहोपमेयामुपमातुमर्हा
शोभा वक्ष्यसि वोढासि ॥ वहतेर्लृट् ॥ “ त्रिनयन— ” इत्यत्र “ पूर्वपदात्तं
ज्ञायामगः ” इति णत्व न भवति “ शुभ्रादिषु च ” इति निषेधात् ॥ तस्याः
प्रभवमित्यादिना हिमाद्रौ मेघस्य वैवाहिको गृहविहागो ध्वन्यते ॥

५७. तमिति ॥ वायौ वनवाते सरति वाति सति सरलानां देवदारुद्रुमाणां
स्कन्धाः प्रदेशविशेषाः ॥ “ अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधेस्तरो ”
इत्यमरः ॥ तेषां सघट्टनेन सघर्षणेन जन्म यस्य स तथोक्तः ॥ जन्मोत्तरपदत्वाद्वच-
धिकरणोऽपि बहुव्रीहिः । साधुरित्युक्तम् ॥ उल्काभिः स्फुलिङ्गैः क्षपिता निर्दग्धा-
श्चमरीणां बालभाराः केशसमूहा येन । दव इत्यग्निर्देवाग्निर्वनवह्निः ॥ “ वने च
वनवह्नौ च दवो दाव इतीष्यते ” इति यादवः ॥ त हिमाद्रिं बाधेत चेत्पीडये-

Ganges) white with snow, and with its rocks scented by the musk of the
deer lying (there), (and) seated on its crest, remover of the fatigue
of the journey, thou wilt have a beauty comparable to the mud dug up
by the white bull of the three-eyed god (Siva)

57 If the forest conflagration, which is caused by the mutual
friction of the trunks of the *Surala* trees whilst the wind is blowing and
which with its flames destroy the bushy tails of the *Chamaras*, should
injure that (mountain), it behoves thee to completely extinguish it
with thousands of water-showers, for the resources of the great, have
for their end, (only) the alleviation of the miseries of the distressed

57. P. त्व चेव for तं चेव. G1. K2.R. N. M. वहति, M.
स्फुरति for सरति. W. M. °क्षयित° for °क्षपित°.

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गं य तस्मि-
न्मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम् ।
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णा-
न्के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥५८॥

अदि । एनं दवाग्निं वारिधारासहस्रैः शमयितुमर्हसि ॥ युक्तं चैतदित्याह—उ-
त्तमानां महता सपदं ससृद्धय आपन्नानामार्त्तानामार्त्तिप्रशमनमापन्निवारणमेव
फल प्रयोजनं यासां तास्तथोक्ता हि । अतो हिमाचलस्य दावानलत्वया शम-
यितव्य इति भावः ॥

५८. य इति ॥ तस्मिन्हिमाद्रौ सरम्भः कोपः ॥ “ सरम्भः संध्रमे कोपः ”
इति शब्दार्णवे ॥ तेनोत्पतन उत्प्लवनं रभसां वेगो येषां ते तथोक्ता ॥ “ रभसो
वेगहर्षयोः ” इति विश्वः ॥ ये शरभा अष्टापदसृगविशेषाः ॥ “ शरभः शलभे
चाष्टापदे प्रोक्तो मृगान्तरे ” इति विश्वः ॥ मुक्तोऽध्वा शरभोत्प्लवनमार्गो येन
त भवन्त सपदि स्वाङ्गभङ्गाय लङ्घयेयुः ॥ सभावनाया लिङ् ॥ भवतोऽतिदूर-
त्वात्स्वाङ्गभङ्गातिरिक्तं फल नास्ति लङ्घनस्येत्यर्थः ॥ ताञ्शरभास्तुमुलाः सकु-
लाः करका वर्षोपलाः ॥ “ वर्षोपलस्तु करका ” इत्यमरः ॥ तासां वृष्टिस्तस्याः
पातेनावकीर्णान्विक्षिप्तान्कुर्वीथाः कुरुष्व ॥ विध्यर्थे लिङ् ॥ क्षुद्रोऽप्यधिक्षिप-
न्प्रतिपक्षः सद्यः प्रतिक्षेप्य इति भावः । तथाहि ॥ आरम्भ्यन्त इत्यारम्भाः क-
र्माणि तेषु यत्न उद्योगः स निष्फलो येषां ते तथोक्ताः । निष्फलकर्मोपक्रमा
इत्यर्थः । अतः के वा परिभवपदं तिरस्कारपदं न स्युर्न भवन्ति । सर्व एव भव-
न्तीत्यर्थः ॥ यदत्र “ घनोपलस्तु करक ” इति यादववचनात्करकशब्दस्य
नियतपुंलिङ्गताभिप्रायेण “ करकाणामावृष्टिः ” इति केषांचिद्व्याख्यानं तदन्ये

58 Those *Sarabha's* there, who, impetuous in their angry jump-
may on a sudden (attempt to) outstrip thee, removed from their path
(only) to injure their own bodies, thou shouldst scatter by means of
tumultuous showers hail-stones,—who indeed that strive in vain in
their undertakings, would not become an object of contempt?

58. W. K2. M. त्वा मुक्तध्वनिमसहनाः for संरम्भोत्पतनरभसाः.
M. कायभंगाय for स्वाङ्गभगाय. W. K2. M. दपोत्तेकादुपरि, R. N.
M. मुक्तध्वानं सपदि for मुक्ताध्वानं सपदि. G1. G2. K1. R. N. M.
सरभाः for शरभाः. W. K2. M. लंघयिष्यन्त्यलघ्यम्, M. लभयेयुर्भव-
न्तम् for लंघयेयुर्भवन्तम्. W. G1 G2. K2. R. N. M. “ वृष्टिहासाव ”
for “ वृष्टिपाताव ”. P. केषां न for केवान. M. “ पाशाः for “ यत्नाः

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्थेन्दुमौलेः

शश्वत्सिद्धैरुपचितबालं भक्तिनम्रः परीयाः ।

यस्मिन्हृष्टं करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः

कल्पिष्यन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्धधानाः ॥ ५९ ॥

नानुमन्यन्ते । “ वर्षोपलस्तु करका ” इत्यमरवचनव्याख्याने क्षीरस्वामिना “ कमण्डलौ च करकं सुगते च विनायक ” इति नानार्थे पुंस्यपि वक्ष्यतीति वदतोभयलिङ्गताप्रकाशनात् । यादवस्य तु पुलिङ्गताविधाने तात्पर्यं न तु स्त्री-लिङ्गतानिवेध इति न तद्विरोधोऽपि । “ करकस्तु करकुं स्याद्वाडिमे च कमण्डलौ । पक्षिभेदे करे चापि करका च वनोपल ” इति विश्वप्रकाशवचने तू-प-बलिङ्गता व्यक्तैवेति न कुत्रापि विरोधवार्ता । अत एव रुद्रः—“ वर्षोपलस्तु करका करकोऽपि च दृश्यते ” इति ॥

५९. तत्रेति ॥ तत्र हिमाद्रौ दृषदि कस्याचिच्छिलायां व्यक्तं प्रकटं श-श्वत्सदा सिद्धैर्योगिभिः ॥ “ सिद्धिर्निष्पत्तियोगयो. ” इति विश्वः ॥ उपाचि-तबालि रचितपूज ॥ “ बलि. पूजोपहारयोः ” इति यादवः ॥ अर्धश्चासा-विन्दुश्चेत्यर्धेन्दु. ॥ “ अर्धः खण्डे समाशेऽर्धम् ” इति विश्व. ॥ स मौलौ यस्य तस्येश्वरस्य चरणन्यास पादविन्यासम् ॥ भक्तिः पूज्येष्वनुरागस्तथा नम्रः सन्परीयाः प्रदक्षिणं कुरु ॥ परिपूर्वादिणो लिङ् ॥ यस्मिन्पादन्यासे दृष्टे सत्यु-द्धूतपापा निरस्तकल्मषा सन्तः श्रद्धधाना विश्वसन्तः पुरुषा । श्रद्धा विश्वा-सः । आस्तिक्यबुद्धिरिति यावत् ॥ “ श्रद्दन्तरोरुपसर्गवद्वृत्तिर्वक्तव्या ” इति श्रतूर्वाद्वाते. शानच् ॥ करणस्य क्षेत्रस्य विगमादूर्ध्वं देहत्यागानन्तरम् ॥ “ करणं सावकतम क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि ” इत्यमरः ॥ स्थिरः शाश्वतः गणानां प्रमथानां पदस्थानम् ॥ “ गणाः प्रमथसंख्यौवाः ” इति वैजयन्ती ॥ तस्य प्राप्तये कल्पिष्यन्ते समर्था भविष्यन्ति ॥ क्लृप्तेः पर्याप्तवचनस्यालमर्थत्वात्तद्योगे

59 Bending down in adoration thou shouldst circumambulate the foot-mark of *Siva*, wearing the half-moon on his head, visible there on a rock, and perpetually covered over with offerings, by devotees, on seeing which, the faithful, freed from their sins, will become fit to attain to the permanent position of *Ganas* after their separation from the body

59. P. G1. G2. K1. K2. R. N. M. उपहृत°, M. उपहित°, M. उपहृत° for उपचित°. W. G1. G2. K1. M. दूर for ऊर्ध्वम्. C1 C2. G1. G2. K1. R. N. M. सकल्पन्ते, W. K2 M. कल्पन्तः for कल्पिष्यन्ते. G2. M. दृष्टे यस्मिन् for यस्मिन्हृष्टे.

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः

संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किंनरीभिः ।

निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्या-

त्संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ॥ ६० ॥

“ नम स्वस्ति—” इत्यादिना चतुर्थी ॥ “ अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् ” इति भाष्यकारः ॥ “ अव्यक्तो व्यञ्जयामास शिवः श्रीचरणद्वयम् ॥ हिमाद्रौ शाम्भवादीनां सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥ दृष्ट्वा श्रीचरणन्यास साधकः स्थिरयेत्तनुम् । इच्छाधीनशरीरो हि विचरेच्च जगन्नयम् ” इति शंभुरहस्ये ॥

६०. शब्दायन्त इति ॥ हे मेघ । अनिलैः पूर्यमाणा कीचका वेणुविशेषाः ॥ “ वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः ” इत्यमरः ॥ “ कीचको दैत्यभेदे स्याच्छुष्कवशे द्रुमान्तरे ” इति विश्वः ॥ मधुर श्रुतिसुखं यथा तथा शब्दायन्ते शब्दं कुर्वन्ति । स्वनन्तीत्यर्थः ॥ “ शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेधेभ्यः करणे ” इति क्यङ् ॥ अनेन वशवाद्यसपत्तिरुक्ता । संसक्ताभिः सयुक्ताभिर्विशवाद्यानुषक्ताभिर्वा ॥ “ संसक्ताभिः ” इति पाठे संसक्तकण्ठीभिरित्यर्थः ॥ किंनरीभिः किंनरस्त्रीभिः । त्रयाणां पुराणां समाहारस्त्रिपुरम् ॥ “ तद्वितार्थोत्तरपद—” इति समासः । पात्रादित्वात्तपुसकत्वम् ॥ तस्य विजयो गीयते । कन्दरेषु दरीषु ॥ “ दरी तु कन्दरो वा स्त्री ” इत्यमरः ॥ ते तव निर्ह्रादो मुरजे वाद्यभेदे ध्वनिरिव । मुरजध्वनिरिवेत्यर्थः । स्याच्चेत्तर्हि तत्र चरणसमीपे पशुपतेर्नित्यं सनिहितस्य शिवस्य । नृत्ये इति शेषः । संगीतं सम्यग् गीतम् ॥ “ तौर्यत्रिकं तु संगीतं न्यायारम्भे प्रसिद्धके । तूर्याणां त्रितये च ” इति शब्दार्णवे ॥ तदेवार्थः संगीतार्थः संगीतवस्तु ॥ “ अर्थोऽभिधेयैर्वस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु ” इत्यमरः ॥ समग्रः संपूर्णो भावी ननु भविष्यति खलु ॥ “ भविष्यति गम्यादयः ” इति भविष्यदर्थे णिनिः ॥

60 The bamboos filled with wind are making a sweet sound, the conquest of Tripura, is being sung by the wives of the *Kinnaras*, united (in chorus) and if thou shouldst be thundering in the caves so as to be) in the place of the sound of a drum, will not the apparatus for Siva's concert be complete there?

60 P. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. संसक्ताभिः for संसक्ताभिः. P. W. G1 G2. K1. K2. R. N. M. निर्ह्रादीते for निर्ह्रादस्ते P. मुरज इव, G1. G2. M. मरुज इव N. M. मुरज इव for मुरज इव. K2. M. कन्दरासु for कन्दरेषु. P. K2. M. N. समस्तः for समग्रः.

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषा-

न्हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् ।

तेनोदीची दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी

श्यामः पादो बालिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥ ६१ ॥

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः

कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ।

शृङ्गोच्छ्वायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः ख

राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यंबकस्यादृहासः ॥ ६२ ॥

६१ प्रालेयेति ॥ प्रालेयाद्रेर्हिमाद्रेरुपतट तटसमीपे ॥ “ अव्यय विभक्ति—” इत्यादिना समीपार्थेऽव्ययीभावः ॥ तास्तान् ॥ वीप्साया द्विरुक्ति ॥ विशेषान्द्रष्टव्यार्थान् ॥ “विशेषोऽवयवे द्रव्ये द्रष्टव्योत्तमवस्तुनि ” इति शब्दार्णवे ॥ अतिक्रम्य दर्शं दर्शमतीत्येत्यर्थः । अनुसरेरित्यनागतेन सबन्धः ॥ हसानं द्वारं हसद्वारम् ॥ मानसप्रस्थायिनो हसाः क्रौञ्चरन्ध्रेण सचरन्त इत्यागमः ॥ भृगुपतेर्जामदभ्यस्य यशोवर्त्म । यशः प्रवृत्तिकारणमित्यर्थः । यत्क्रौञ्चस्याद्रे रन्ध्रमस्ति तेन क्रौञ्चबिलेन बलेदैत्यस्य नियमने बन्धनेऽभ्युद्यतस्य प्रवृत्तस्य विष्णोर्व्यापकस्य त्रिविक्रमस्य श्यामः कृष्णवर्णः पाद इव तिर्यगायामेन क्षिप्रप्रवेशनार्थं तिरश्चीनदैर्घ्येण शोभत इति तथाविधः सन्नुदीचीमुत्तरा दिशमनुसरेरनुगच्छ ॥ परा किल भगवतो देवाद्भूर्जटैर्धनुरुपनिषदमधीयानेन भृगुनन्दनेन स्कन्दस्य स्पर्धया क्रौञ्चशिखरिणमतिनिशितविशिखमुखेन हेलया मृत्पिण्डभेद भिन्ना तत एव क्रौञ्चक्रोडादिव सद्यः समुज्जृम्भिते कस्मिन्नपि यशःक्षीरनिधौ निखिलमपि जगज्जालमाप्लावितमिति कथा श्रूयते ॥

६२. गत्वेति ॥ क्रौञ्चबिलनिर्गमनानन्तरमूर्ध्वं च गत्वा दशमुखस्य राव-

61 On passing by the various wonders on the slopes of the *Himalaya*, thou looking beautiful by expanding (thyself) slantingly like the black foot of *Vishnu* intent on the overthrow of *Bali*, shouldst proceed to the North by way of the pass in (mount) *Krauncha*, the outlet for the flamingoes (and) the path of the glory of the Lord of the *Brigus* (*Parashurama*)

62 Then going upwards, thou shouldst be the guest of (the

61. M. उपक्रम्य for अतिक्रम्य. P. अनुपतेः for अनुसरेः. P. R. बलिनियमनेऽभ्युद्यतस्य, M. बलिनियमनायोद्यतस्य, G1. G2. N. M. बलिनियमनाभ्युद्यतस्य for बलिनियमनाभ्युद्यतस्य.

62. M. दर्शनस्य for दर्पणस्य. W. M. तुंगोच्छ्वायैः for शृङ्गोच्छ्वायैः. M. कुसुमं for कुमुदं. K1. K2. W. R. G1. G2. N. M. प्रतिदिशम् for प्रतिदिनम्.

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनामे

सद्यःकृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य ।

शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री-

मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥ ६३ ॥

णस्य भुजैर्बाहुभिरुच्छ्वासिता विश्लेषिताः प्रस्थाना सान्ना सद्यः यस्य तस्य ॥ एतेन नयनकौतुकसद्भाव उक्तः ॥ त्रिदशपरिमाणमेषामस्तीति त्रिदशा ॥ “सख्ययाव्यया—” इत्यादिना बहुव्रीहि ॥ “बहुव्रीहौ सख्येयौ डच्—” इत्यादिना समासान्तो ङजिति क्षीरस्वामी ॥ त्रिदशाना देवाना वनितास्तासा दर्पणस्य ॥ कैलासस्य स्फटिकत्वादजतत्वाद्वा बिम्बग्राहित्वेनेदमुक्तम् ॥ कैलासस्यातिथिः स्याः । यः कैलासः कुमुदविशदौर्निर्मलैः शृङ्गाणामुच्छ्रयैरौन्नत्यैः खमाकाश वितत्य व्याप्य प्रतिदिनं दिने दिने राशीभूतख्यम्बकस्य त्रिलोचनस्यादृष्टासीदतिहास इव स्थितः ॥ “अट्टावतिशयक्षौमौ” इति यादवः ॥ धावत्याद्वासत्वेनोत्प्रेक्षा । हासादीना धावव्य कविसमयसिद्धम् ॥

६३ उत्पश्यामि ॥ स्निग्धं मन्त्रं भिन्नं मर्दितं च यदञ्जनं कज्जलं तस्यामेवाभा यस्य तस्मिन्स्त्वयि तटगते सानु गते सति सद्यः कृत्तस्य छिन्नस्य द्विरददशनस्य गजदन्तस्य छेदवद्गौरस्य धवलस्य तस्याद्रेः कैलासस्य मेचके श्यामले ॥ “कृष्णे नीलासितश्यामकालङ्गामलमेचकाः” इत्यमरः ॥ वाससि वल्लेऽसन्यस्ते सति हलभृतो बलभद्रस्येव स्तिमिताभ्यां नयनाभ्यां प्रेक्षणीया शोभां भवित्री भाविनीमुत्पश्यामि । शोभा भविष्यतीति तर्कयामीत्यर्थः ॥ श्रौती पूर्णोपमालकारः ॥

mount) *Kailasa*, the looking-glass of the wives of the gods, having the joints of its elevated parts upheaved by the arms of the ten-faced demon (*Ravana*), which (mount) extending into the sky its lofty peaks, white as the lotus, stands as it were, the loud laughter of the three-eyed God (*Siva*), accumulated day by day

63 When thou, shining like glossy powdered antimony, hast stood over its slopes, I foresee, that the beauty of that mountain (*Kailasa*), white as a newly-cut piece of ivory, will be worthy of being looked at with motionless eyes, like that of the bearer of the plough (*Balarāma*) when dark-blue garments are thrown over his shoulders

63. P. °रदन° for °दशन°. P. M. K2. लीलामद्रे° for शोभामद्रेः. M. तिमिर° for स्तिमित°. K1. K2. W. G1 G2 R. N. M. अशन्यस्ते for असन्यस्ते.

हित्वा तस्मिन्भुजगवलयं शंभुना दत्तहस्ता
 क्रीडाशैले यदि च विचरेत्पादचारेण गौरी ।
 भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः
 सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी ॥ ६४ ॥
 तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्धृतनोद्वीर्णतोयं
 नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम् ।
 ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे घर्मलब्धस्य न स्या-
 त्क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः ॥ ६५ ॥

६४. हित्वेति ॥ तस्मिन्क्रीडाशैले कैलासे ॥ “कैलासः कनकाद्रिश्च मन्दरो गन्धमादनः । क्रीडार्थं निर्मिता. शमोर्देवैः क्रीडाद्रयोऽभवत् ” इति शंभुरहस्ये ॥ शंभुना शिवेन भुजग एव वलयः कङ्कणं हित्वा गौर्या भरित्वा-
 न्यक्त्वा दत्तहस्ता सती गौरी पादचारेण विचरेद्यदि तद्धर्मप्रयायी पुरोगतस्त-
 या स्तम्भितो घनीभावं प्रापितोऽन्तर्जलस्यौघः प्रवाहो यस्य स तथाभूतः ।
 भङ्गीनां पर्वणां भक्त्या रचनया विरचितवपुः कल्पितशरीरः सत् । मणीनां तट
 मणितट तस्यारोहणाय सोपानत्वं कुरु । सोपानभाव भजेत्यर्थः ॥

६५. तत्रेति ॥ तत्र कैलासेऽवश्यं सर्वथा सुरयुवतयो वलयकुलिशानि

64 And if *Gouri* supported by *Siva* with his hand, after casting away the snake-bracelet, should move about on foot on that mountain of sport, go on before her, with the flow of (thy) water restrained within thee and with thy body moulded into the form of wave-like steps (and) become a ladder for the ascent of the jewelled slopes

65 The heavenly damsels there will assuredly use thee as a shower-

64. P. G2. K1. R. M. तस्मिन् हित्वा, K2. M. हित्वा नील for हित्वा तस्मिन्. K2. M. तु for च. K2. P. W. B. विहरेत् for विचरेत्. G2. M. सूचितं for स्तम्भितं. W. M. व्रज पदसुखस्पर्शमारोहणेषु, M. कुरु सुखपदारोहणायाग्रयायी, P. कुरु मणितटारोहणायाग्रचारी, M. K2. कुरु मणिशिलारोहणायाग्रयायी for कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी.

65. G1. G2. K1. K2. R. N. M. कुलिशवलयं for वलयकुलिशं. M. जनितसलिलोद्धारमन्तःप्रवेशम् for वलयकुलिशोद्धृतनोद्वीर्णतोयम्. M. K2. नेष्यन्ते for नेष्यन्ति K2. M. त्यागः for मोक्षः. P. यदि तव for तव यदि. M. शर्मशून्य for घर्मशून्य. P. B. K2. M. भीषयेः, G1. G2. K1. R. N. M. भाषयेः for भाययेः.

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः

कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ।

धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै-

र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥ ६६ ॥

कङ्कणकोटयः ॥ शतकोटिवाचिना कुलिशशब्देन कोटिमात्रं लक्ष्यते ॥ तैरुद्ध-
टनानि प्रहारास्तैरुद्गीर्णमुत्खण्डं तोय येन त त्वां यन्त्रेषु धारा यन्त्रधारास्तासां
गृहत्व कृत्रिमधारागृहत्व नैष्यन्ति प्रापयिष्यन्ति ॥ हे सखे मित्र । घर्मे निदा-
ये लब्धस्य ॥ घर्मलब्धत्व चास्य देवभूमिषु सर्वदा सर्वैतुसमाहारात्प्राथमिक-
मेघत्वाद्वा । यथोक्तम्—“ आषाढस्य प्रथम—” इति ॥ तव ताभ्यः सुरयुव-
तिभ्यो मोक्षो न स्याद्यदि तदा क्रीडालोला क्रीडासक्ताः । प्रमत्ता इत्यर्थः । ताः
सुरभुवतीः श्रवणपरुषैः कर्णकटुभिर्गर्जितैः करणैर्भाययेन्नासयेः ॥ अत्र हेतुभया-
भावादात्मनेपद पुगागम पुगागमश्च न ॥

६६ हेमेति ॥ हे जलद । हेमाम्भोजाना प्रसवि जनकम् ॥ “ जिह-
क्षि—” इत्यादिनेनप्रत्यय. ॥ मानसस्य सरसः सलिलमाददानः । पिब-
न्नित्यर्थः । तथैरावतस्येन्द्रगजस्य । कामचारित्वाद्वा शिवसेवार्थमिन्द्रागमनाद्वा
समागतस्येति भावः । क्षणे जलादानकाले मुखे पटेन या प्रीतिस्ता कुर्वन् ।
तथा कल्पद्रुमाणा किसलयानि पल्लवभूतान्यंशुकानि सूक्ष्मवस्त्राणीव ॥ “ अंशु-
कं वस्त्रमात्रं स्यात्परिधानोत्तरीययोः । सूक्ष्मवस्त्रे नातिदीप्तौ ” इति शब्दार्ण-
वे ॥ वातैर्मैघवातैर्धुन्वन् । नाना बहुविधाश्चेष्टास्तोयपानादयो येषु तैर्ललितैः क्री-
डितैः ॥ “ ना भावभेदे स्त्रीनृत्ये ललित त्रिषु सुन्दरे । अस्त्रियां प्रमदागारे
क्रीडिते जातपल्लवे ” इति शब्दार्णवे ॥ तं नगेन्द्रं कैलासं काम यथेष्टं निर्वि-
शैः समुपभुङ्क्ते ॥ “ निर्वेशो भृतिभोगयोः ” इत्यमरः ॥ यथेच्छविहारो मित्र-

bath with thy water let out in consequence of the friction caused by the points of their arm-lets but if, O friend, thou acquired (by them) in the hot season canst not escape from them, thou must terrify them engaged in sports, with thunders disagreeable to the ear

66 Taking the water of the *Manasa* lake, productive of golden-lotuses,—procuring for *Airāvata* (India's elephant) the gratification of a veil for his face during the time (of drinking) and shaking, like garments, the shoots of the *Kalpa* tree with thy breezes—with amusements (like these) of various kinds, thou O cloud, enjoy that lord of mountains to thy heart's content

66. W.K2. M. कामाव for कामम्, P G1.G2.K2. M. ऐरावणस्य for ऐरावतस्य P. स्ववातैः, M. प्रवातैः for इव वातैः K2. W. G1.M. वातैः सजलपृषतैः कल्पवृक्षांशुकानि छायाभिन्नस्फटिकविशदम्, M. वातैः सजलनयनैः कल्पवृक्षांशुकानि छायाभिन्नस्फटिकविशदम्, K2. कल्पद्रुम-
किसलयान्यंशुकानीव वातैश्छायाभिन्नस्फटिकविशदम् for कल्पद्रुमकिसलयान्यं-
शुकानीव वातैर्नानाचेष्टैर्जलदललितैः. M. G1. पर्वतं तं for तं नगेन्द्रम्.

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
 न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।
 या वः काले वहति रालिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
 मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥ ६७ ॥

गृहेषु मैत्र्या फलम् । सहजमित्रं च ते कैलासः । मेघपर्वतयोरब्जसूर्ययोरब्धि-
 चन्द्रयोः शिखिजीमूतयोः । सर्भाराग्यामित्रता स्वयमिति भावः ॥

६७ तस्येति ॥ प्रणयिनः प्रियतमस्येव तस्य कैलासस्योत्सङ्ग उर्ध्वभागे
 ऊरौ च ॥ “ उत्सङ्गो मुक्तमयोगे सक्थन्यूर्ध्वतलेऽपि च ” इति मालतीमा-
 लायाम् ॥ गङ्गा दुकूल शुभ्रवस्त्रमिवेत्युपमितसमासः ॥ “ दुकूल सूक्ष्मवस्त्रे
 स्यादुत्तरीये सिताशुक ” इति शब्दार्णवः ॥ अन्यत्र तु गङ्गेव दुकूलम् ॥ त-
 त्स्रस्त यस्यास्ता तथाक्तामलका कुबेरनगरीं दृष्ट्वा । कामिनीमिवति शेषः । हे
 कामचारिन् । त्वं पुनस्त्वं तु न ज्ञास्यस इति न । किं तु ज्ञास्यस एवेत्यर्थः ॥
 कामचारिणस्ते पूर्वमपि बहुकृत्यो दर्शनसम्भवादज्ञानमसम्भावितमेवेति निश्चया-
 र्थं नञ्द्वयप्रयोगः । तदुक्तम्—“ स्मृतिनिश्चयसिद्धार्थेषु नञ्द्वयप्रयोगः ” इ-
 ति ॥ उच्चैरुन्नतानि विमानानि सप्तभूमिकभवनानि यस्यां सा ॥ “ विमाना-
 ऽस्त्री देवयाने सप्तभूमौ च सद्यनि ” इति यादवः ॥ मेघसवाहनस्थानसूचना-
 र्थमिदं विशेषणम् ॥ अन्यत्र विमाना निष्कोपाः । यालका । वो युष्माकं का-
 ले । मेघकाल इत्यर्थः ॥ कालस्य सर्वमेवसाधारण्याद्वा इति बहुवचनम् ॥ स
 लिलमुद्गिरतीति रालिलोद्गारम् । स्रवत्सलिलधारमित्यर्थः ॥ अभ्रवृन्दं मेघकद-
 म्बकं कामिनी स्त्री मुक्ताजालैर्मौक्तिकसैर्ग्राथितं प्रत्युत्तम् ॥ “ पुश्चल्या मौ-
 क्तिके मुक्ता ” इति यादवः ॥ अलकमिव चूर्णकुन्तलानीव ॥ जातावकवच-
 नम् ॥ “ अलकाश्चूर्णकुन्तला ” इत्यमरः ॥ वहति बिभर्ति ॥ अत्र कैलास-
 स्यान्कूलनायकत्वमलकायाश्च स्वाधीनपतिकारुण्यनायिकात् ध्वन्यते । “ ए-
 कायत्तोऽनुकूल स्यात् ” इति । “ प्रियोपलालिता नित्यं स्वाधीनपतिका
 मता ” इति च लक्षयन्ति । उदाहरन्ति च—“ लालयन्नलकप्रान्तान् रचयन्प-
 त्रमञ्जरीम् । एका विनोदयन्कान्ता छायावदनुवर्तते ” इति ॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायमल्लिनाथसूरिविरचितया सजीविनीसमा-

ख्यया व्याख्यया समेतो महाकविश्रीकालिदासविरचिते

मेघदूते काव्ये पूर्वमेघः समाप्तः ।

67 On seeing *Alaka*, thou, wanderer at thy will, wilt not, but recognise it with its garment-like Ganges fallen on the slope of that (mount) as on the lap of a lover, which (city) possessed of lofty palaces supports, in thy season (i.e. rainy season) a host of water-shedding clouds as a beautiful woman (supports) her hair wreathed with strings of pearls

67 K2 M व्योमचारिन् for कामचारिन्. W. G1. G2. K1. K2. R N. M. °विमानैः for °विमाना.

उत्तरमेघः ।

—000—

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
 संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ।
 अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
 प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥ १ ॥

१ विद्युत्वन्तमिति ॥ यत्रालकाया ललिता स्म्या वनिता स्त्रियो येषु ते । सह चित्रैर्वर्तन्त इति सचित्राः ॥ “ आलेख्याश्चर्ययोश्चित्रम् ” इत्यमरः ॥ “ तेन सहेति तुल्ययोगे ” इति बहुव्रीहिः । “ वोपसर्जनस्य ” इति सहशब्दस्य सभावः ॥ संगीताय तौर्यत्रिकाय प्रहतमुरजास्ताडितमृदङ्गाः ॥ “ मुरजा तु मृदङ्गे स्याद्वक्त्रा मुरजयोरपि ” इति शब्दार्णवे ॥ मणिमया मणिविकारा भुवो येषु । अभ्र लिहन्तीत्यभ्रलिहान्यभ्रकषाणि ॥ “ वहाभ्रे लिहः ” इति खड्गप्रत्ययः । “ अरुद्विष— ” इत्यादिना मुमागमः ॥ अग्राणि शिखराणि येषां ते तथोक्ताः । अतितुङ्गा इत्यर्थः ॥ प्रासादा देवगृहाणि ॥ “ प्रासादो देवभूभुजाम् ” इत्यमरः ॥ विद्युतोऽस्य सन्तीति विद्युत्वन्तम् । सेन्द्रचापमिन्द्रचापवन्तम् । स्निग्धः श्राव्यो गम्भीरो घोषो गर्जित यस्य तम् । अन्तरन्तर्गतं तोय यस्य तम् । तुङ्गमुन्नत त्वा तैस्तैर्विशेषैर्ललितवनितत्वादिधर्मैस्तुलयितु समीकर्तुमल पर्याप्ताः ॥ “ अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम् ” इत्यमरः ॥ अत्रोपमानोपमेयभूतमेघप्रासादधर्माणां विद्युद्वनितादीनां यथासख्यमन्योन्यसादृश्यान्मेघप्रासादयोः साम्यसिद्धिरिति बिम्बप्रतिबिम्बभावेनेय पूर्णोपमा । वस्तुतो भिन्नयोः परस्परसादृश्यादभिन्नयोरुपमानोपमेयधर्मयोः पृथगुपादानाद्विम्बप्रतिबिम्बभावः ॥

सप्रति सर्वदा सर्वर्तुसंपत्तिमाह—

1 Where (in *Alakā*) the palaces with beautiful women and pictures, with drums beaten for singing and dancing, with jewelled floors and cloud-lucking tops, are able to compete with thee, having lightning and rainbow, having a deep and pleasant sound, having water inside and loftiness, in the various particulars (respectively).

1. P. °पुरवा, M. °मरुजा, G1. N. M °मरुजाः for °मुरजाः.
 P. K2. M. स्निग्धपर्जन्यघोषम् for स्निग्धगभीरघोषम्.

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ।

चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥ २ ॥

२. हस्त इति ॥ यत्रालकायां वधूनां स्त्रीणां हस्ते लीलार्थं कमलं लीला-
कमलम् ॥ शरलिङ्गमेतत् । तदुक्तम्—“ शरत्पङ्कजलक्षणा ” इति ॥ अलके
कुन्तले ॥ जातावेकवचनम् ॥ अलकेष्वित्यर्थः । बालकुन्दैः प्रत्यग्रमाध्यकु-
सुमैरनुविद्धम् । अनुवेद्यो ग्रन्थनम् ॥ नपुसके भावे क्तः ॥ यद्यपि कुन्दानां
शैशिरत्वमस्ति “ माध्य कुन्दम् ” इत्यभिवानात्तथापि हेमन्ते प्रादुर्भावः शि-
शरे प्रौढत्वमिति व्यवस्थाभेदेन हेमन्तकार्यत्वमित्याशयेन बालेति विशेषण-
म् ॥ “ अलकम् ” इति प्रथमान्तपाठे सप्तमीप्रक्रमभङ्गः स्यात् । नाथ-
स्तु नियतपुलिङ्गताहानिश्चेति दोषान्तरमाह । तदसत् । “ स्वभाववक्राण्यलका-
नि तासाम् ” । “ निर्धूतान्यलकानि पाटितमुरः कृत्स्नोऽधरः खण्डितः ”
इत्यादिषु प्रयोगेषु नपुसकलिङ्गतादर्शनात् ॥ आनने मुखे लोध्रप्रसवानां लोध्र-
पुष्पाणां शैशिराणां रजसा परागेण ॥ “ प्रसवस्तु फले पुष्पे वृक्षाणां गर्भमोच-
ने ” इति विश्वः ॥ पाण्डुतां नीता श्रीः शोभा । चूडापाशे केशपाशे नवकु-
रबकं वासन्तः पुष्पविशेषः । कर्णे चारु पेशलं शिरीषं ग्रैष्मं पुष्पविशेषः ।
सीमन्ते मस्तककेशवीथ्याम् ॥ “ सीमन्तमस्त्रिया मस्तकेशवीथ्यामुदाहृतम् ”
इति शब्दार्णवे ॥ तवोपगमः । मेघागम इत्यर्थः । तत्र जात त्वदुपगमजम् ।
वार्षिकमित्यर्थः । नीप कदम्बकुसुमम् । सर्वत्रास्तीति शेषः । अस्तिर्भवतिप्रः
प्रथमपुरुषोऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्तीति न्यायात् । इत्थं कमलकुन्दादि तत्तत्कार्यस-
माहाराभिधानादर्थान्सर्वतुसमाहारसिद्धिः । कारण विना कार्यस्यासिद्धेरिति भावः ॥

2. Where the women have lotuses in (their) hands for sport, the
inlaying of young *Kunda* flowers in (their) hair, beauty made yellow-
ish-white by the pollen of *Lodhra* blossom on (their) faces, fresh
Kurabaka flowers in (their) braids of hair, charming *Shrisha* flowers
in (their) ears, and *Kadamba* flowers springing up at thy approach
in the partings of (their) hair

2 W. G1 G2. K1. K2. R. N. M. अलक for अलके.
M. °कुन्दानुवेधः for कुन्दानुविद्धम्. R. G1 G2. K1. K2. N. W.
M. रोध्र° for लोध्र° P. W. G1. G2. K1. K2 R. N. M. आन-
नश्री° for आनने श्रीः M. W. °कुरवक, G1. G2. K1. R. कुरब-
क for कुरबकम्. M. कर्णे करोति for कर्णे शिरीष. W. M. सीमन्तेऽपि
for सीमन्ते च.

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पा
 हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः ।
 केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
 नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः॥३॥
 आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-
 र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात् ।
 नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति-
 विच्छेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदास्ति॥४॥

३. यत्रेति ॥ यत्रालकाया पादपा वृक्षाः । नित्यानि पुष्पाणि येषां ते त-
 था । न त्वृतुनियमादिति भावः । अत एवोन्मत्तैर्भ्रमरैर्मुखराः शब्दायमानाः ।
 नलिन्यः पद्मिन्यो नित्यानि पद्मानि यासा तास्तथा । न तु हेमन्तवर्जितमि-
 त्यर्थः । अत एव हंसश्रेणीभी रचितरशनाः । नित्यं हंसपरिवेष्टिता इत्यर्थः ।
 भवनशिखिनः क्रीडामयूरा नित्यं भास्वन्तः कलापा बर्हाणि येषां ते तथो-
 क्ताः । न तु वर्षास्वेव । अत एव केकाभिस्तुकण्ठा उद्गीवाः । प्रदोषा रात्रयो
 नित्या ज्योत्स्ना येषां ते । न तु शुक्लपक्ष एव । अत एव प्रतिहता तमसा वृ-
 त्तिर्व्याप्तिर्येषां ते च ते रम्याश्चेति तथोक्ताः ॥

४. आनन्देति ॥ यत्रालकायां विच्छेशाना यक्षाणाम् ॥ “ वित्ताधिपः
 कुबेरः स्यात्प्रभौ धनिकयक्षयोः ” इति शब्दार्णवे ॥ आनन्दोत्थमानन्दजन्य-

3 Where the trees are ever-blossoming and noisy with intoxicated
 bees, the lotus-ponds have lotuses ever (blooming) and gurdles
 formed of the rows of swans, the domestic peacocks have (their)
 tails ever-shining and (their) necks uplifted by (their) cries, and
 evenings are ever moonlit and pleasant on account of the course
 of darkness being obstructed

4 Where indeed the gods of wealth (Yakshas) have tears pro-
 ceeding from joy and from no other causes, no other pain than that

3. G1. यस्या मत्त° for यत्रोन्मत्त°. P. °भ्रमरनिकराः for °भ्रमरमु-
 खराः. K1. K2. G1. R. P. N. M. °रसना for °रशना P. G1.
 K1. R. N. M. °ज्योत्स्नाप्रतिहत° for °ज्योत्स्नाः प्रतिहत°.

4. G2. M. इष्टसंयोगसाध्यः for इष्टसंयोगसाध्यात्. P. G1.
 G2. K1. K2. R. N. M. अन्यत्र for अन्यस्मात्. P. G2. K1.
 R. N. M. न खलु च for न च खलु.

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
 ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः ।
 आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
 त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ॥ ५ ॥

मेव नयनललितम् । अन्यैर्निमित्तैः शोकादिभिर्न । इष्टसयोगेन प्रियजनसमा-
 गमेन साध्यान्निवर्तनीयात् । न त्वप्रतीकार्यादित्यर्थः । कुसुमशरज्जान्मदनशर-
 जन्यतापादन्यस्तापो नास्ति । प्रणयकलहादन्यस्मात्कारणाद्विप्रयोगोपपत्ति-
 विरहप्राप्तिरपि नास्ति । किं च यौवनादन्यद्वयो वार्धक नास्ति खलु ॥ श्लो-
 कद्वय प्रक्षिप्तम् ॥

५. यस्यामिति । यस्यामलकायां यक्षा देवयोनिविशेषा उत्तमस्त्रीसहाया
 ललिताङ्गनासहचराः सन्तः सितमणिमयानि स्फटिकमणिमयानि चन्द्रकान्तम-
 यानि वा । अत एव ज्योतिषा तारकाणां छायाः प्रतिबिम्बान्येव कुसुमानि तै
 रचितानि परिष्कृतानि ॥ “ ज्योति स्ताराभिमाज्वालाद्वक्पुत्रार्थाध्वरात्मसु ”
 इति वैजयन्ती ॥ एतेन पानभूमेरम्लानशोभत्वमुक्तम् । हर्म्यस्थलान्येत्य प्रा-
 प्य । त्वद्गम्भीरध्वनिरिव ध्वनिर्येषां तेषु पुष्करेषु वाद्यभाण्डमुखेषु ॥ “ पु-
 ष्कर करिहस्ताग्रैवाद्यभाण्डमुखे जले ” इत्यमरः ॥ शनकैर्मन्दमाहतेषु सत्सु ॥
 एतच्च नृत्यगीतयोरप्युपलक्षणम् ॥ कल्पवृक्षप्रसूतं कल्पवृक्षस्य काङ्क्षितार्थप्रद-
 त्वान्मध्वपि तत्र प्रसूतम् । रति' फल यस्य तद्व्रतिफलाख्य मधु मद्यमासेवन्ते ।
 आहत्य पिबन्तीत्यर्थः ॥ “ तालक्षीरसितामृतामलगुण्डोन्मत्तास्थिकालाङ्गवाद-
 विन्द्रदुममोरटेशुकदलीगुगलुप्रसूनैर्युतम् । इत्थं चेन्मधुपुष्पभङ्गयुपचित पुष्पद्रुमूला-
 वृत काथेन स्मरदीपन रतिफलाख्यं स्वादु शीतं मधु ” इति मदिराणवे ॥

arising from the flower-arrowed God (Cupid) and removable by uni-
 on with the desired (persons), where separation is brought about by
 no other cause than love-quarrels and where there is no other
 period of life than youth

5 Where the *Yakshas* accompanied by best women repair to the
 chambers of (their) palaces made of crystals and adorned with flo-
 wer-like reflections of stars, and taste (eagerly) the wine called
Ratiphala produced from the *Kalpa* tree, whilst drums are being gently
 beaten, with sounds as deep as thine (are)

5. P. G2 K2 N M. 'रचनानि for 'रचितानि. W. M.
 रतिरमम् for रतिफलम् M. 'गम्भी रोद्धनिषु for 'गम्भीरध्वनिषु. M.
 P. मधुरं for शनकैः.

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि-
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायाया वारितोष्णाः ।

अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः

संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ॥ ६ ॥

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां

क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वक्षिपत्सु प्रियेषु ।

अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपा-

न्ध्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥ ७ ॥

६. मन्दाकिन्या इति ॥ यत्रालकायाममरैः प्रार्थिताः । सुन्दर्य इत्यर्थः ।
कन्या यक्षकुमार्यः ॥ “ कन्या कुमारिकानार्यो ” इति विश्व ॥ मन्दाकि-
न्या गङ्गायाः सलिलेन शिशिरैः शीतलैर्मरुद्भिः सेव्यमाना सत्यः । तथानुतट
तटेषु राहन्तीत्यनुतटरुहः ॥ किप् ॥ तेषां मन्दाराणां छायायानातपेन वारि-
तोष्णाः शमितातपाः सत्यः कनकस्य सिकतामु मुष्टिभिर्निक्षेपेण गूढैः सवृतैरत
एवान्वेष्टव्यैर्मृग्यैर्मणिभि रत्नैः सक्रीडन्ते । गूढमणिसङ्गया दैशिकक्रीडया सम्य-
क्रीडन्तीत्यर्थः ॥ “ क्रीडोऽनुसपरिभ्यश्च ” इत्यात्मनेपदम् ॥ “ रत्नादिभि-
र्वालुकादौ गुप्तैर्द्रष्टव्यकर्तृभिः । कुमारीभिः कृता क्रीडानाम्ना गूढमणिः स्मृता ॥
रासक्रीडा गूढमणिर्गुप्तकलितु लयनम् । पिच्छकन्दुकदण्डाद्यैः स्मृता दैशिक-
केलयः ” इति शब्दार्णवे ॥

७. नीवीति ॥ यत्रालकायामनिभृतकरेषु चपलहस्तेषु प्रियेषु । नीवी व-

6 Where maidens sought (in marriage) by the Gods, waited up-
on (i e fanned) by the breezes cooled by the water of the *Ganges*,
screened from the sun by the shade of the *Mandara* trees growing on
the banks, sport with gems which are (first) hidden by being thrust
with closed hand amongst the golden sands and have (then) to be
searched for.

7 Where the handfuls of powder, of the *Bumba-lipped* (women)

6. B. C1. M. पयसि for सलिल°. P. तटवन°, M. उपतट°
for अनुतट°. M. G2. अमरैः for अमर°.

7. M. °उच्छ्वसन° for °उच्छ्वसित°. W. G1 G2. K1. K2.
R. N. M. यक्षांगनानाम् for बिम्बाधराणाम् W. M. वासः कामात् for
क्षौम रागात् W. M. अभिमुखगतात् for अभिमुखमपि G1. M. विफ-
लप्रेरणः, M. विफलप्रेरितः, G1. G2. K1. K2. R. N. M. विफलः प्रे-
रित for विफलप्रेरणा.

नेत्रा नीताः सततगतिमा यद्विमानाग्रभूमी-
रालेख्यानां सलिलकणिकादोषमुत्पाद्य सद्यः ।

शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशो जालमार्गै-

धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥ ८ ॥

सनग्रन्थि० ॥ “ नीवी परिपणे ग्रन्थौ स्त्रीणा जघनवाससः ” इति विश्वः ॥ नीवीति बन्धो नीवीबन्धः ॥ चूतवृक्षवदपौनरुक्त्यम् ॥ तस्योच्छ्वसितेन त्रुटितेन शिथिल क्षौम दुकूल रागादाक्षिपत्स्वाहरत्सु सत्सु ह्रीमूढानां लज्जाविधुराणाम् । बिम्ब बिम्बिकाफलम् ॥ “ बिम्ब फले बिम्बिकायाः प्रतिबिम्बे च मण्डले ” इति विश्वः ॥ बिम्बमिवाधरो यासां तासां बिम्बाधराणां स्त्रीविशेषाणाम् । “ विशेषाः कामिनीकान्ताभीरुबिम्बाधराङ्गनाः ” इति शब्दार्णवे ॥ चूर्णस्य कुङ्कुमादेर्मुष्टिः । अर्चिर्भिर्मयूखैस्तुङ्गान् ॥ “ अर्चिर्मयूखशिखयोः ” इति विश्वः ॥ रत्नान्येव प्रदीपानभिमुख यथा तथा प्राप्यापि विफलप्रेरणा दीपिनि । वीपणाक्षमत्वान्निष्फलक्षेपा भवति ॥ अत्राङ्गनानां रत्नप्रदीपनिर्वापणप्रवृत्त्या मौग्ध्यं व्यज्यते ॥

८. नेत्रेति ॥ हे मेघ । नेत्रा प्रेरकेण सततगतिना सदागतिना वायुना ॥ “ मातरि-
श्वा सदागतिः ” इत्यमरः ॥ यद्विमानाग्रभूमीः यस्या अलकाया विमानानां सप्तभूमिकम्भवनानामग्रभूमिरुपरिभूमिका नीताः प्रापिताः । त्वामिव पश्यन्ति यान् ते त्वादृशः । त्वत्सदृश इत्यर्थः ॥ “ त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ” इति कञ्प्रत्ययः ॥ जलमुचो मेघाः ॥ आलेख्यानां सच्चित्राणाम् ॥ “ चित्र

overcome by shame whilst their lovers with tremulous hands—cast aside, through passion, (their) silken garments loosened by the untying of their knots, are flung in vain at the high—lusted jewel—lamps, even though they (the handfuls) get them within their reach

8 Being led by their guide the wind, to the palace-terraces of which (city), clouds like thee after causing harm with drops of water to the paintings (there) become at once overcome by fear as it were, and being skilled in imitating the escape of smoke,—depart, broken into parts, through the openings of lattices

8. W.M ये for यत्. P. B. C1. C2 R. M. स्वजलकणि-
का°, K1 W.M. सजलकणिकाः, M. नवजलकणैः, N. स्वजलकणिकैः
for सलिलकणिका°. M. जललवमुचः for इव जलमुचः. P. W. B. C1.
C2 G1. G2. K1. N. M त्वादृश यत्र जालैः, R. M. त्वादृश यंत्रजालैः
for त्वादृशो जालमार्गैः. M. K2. °निपुणम् for °निपुणा. G2. R.
M. निःपतति for निष्पतति.

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गिताना-
मङ्गलानि सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः ।

त्वत्सरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे

व्यालुम्पन्ति स्फुटजलवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥९

लिखितरूपाय स्यादालेख्य तु यत्नत । निर्मित तु महाचित्रं ” इति शब्दार्णवे ॥
सलिलकणिकाभि जलकणैर्दोष स्फोटनमुत्पाद्य सद्यः शङ्कास्पृष्टा इव सापरा-
धत्वाद्भयाविष्टा इव ॥ “ शङ्का वितर्कभययोः ” इति शब्दार्णवे ॥ धूमोद्गारस्य
धूमनिर्गमस्यानुकृतावनुकरणे निपुणा कुशला जर्जरा विशीर्णाः सन्ती जाल-
मार्गैर्गवाक्षरन्ध्रनिष्पतन्ति निष्क्रामन्ति ॥ यथा केनचिदन्तःपुरसचारवता दूतेन
गूढवृत्त्या रहस्यभूमि प्रापितास्तत्र स्त्रीणा व्यभिचारदोषमुत्पाद्य सद्यः साशङ्काः
क्लृप्तवशान्तरा जारा, सुद्रमार्गैर्निष्क्रामन्ति तद्वदिति ध्वनिः । प्रकृतार्थे शङ्कास्पृ-
ष्टा इवेत्युत्प्रेक्षा ॥

९. यत्रेति ॥ यत्रालकायां निशीथेऽर्धरात्रे ॥ “ अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ ”
इत्यमरः ॥ त्वत्सरोधस्य मेधावगणस्यापगमेन विशदैर्निर्मलैश्चन्द्रपादैश्चन्द्रमरीचि-
भिः ॥ “पादा रस्यङ्घ्रितुर्याशाः ” इत्यमरः ॥ स्फुटजलवस्यन्दिन उल्बणाम्बु-
णस्त्राविणस्तन्तुजालावलम्बा वितानलम्बिसूत्रपुञ्जाधारा. । तद्गुणगुम्फिता
इत्यर्थः । चन्द्रकान्ताश्चन्द्रकान्तमणयः । प्रियतमाना भुजेरुच्छ्वासितानि । श्रान्त्या
जलसेकाय वद प्रशिथिलितान्यालिङ्गितानि यासा तासा स्त्रीणा सुरतजनिता-
मङ्गलानि शरीरखेदम् । अवयवानां ग्लानतामिति यावत् । व्यालुम्पन्त्यपनुदन्ति ॥

9 Where at midnight, the moon-gems hanging in net-works of thread and dropping particles of water bursting out through (the influence of) the moon's rays clear on the removal of thy obstruction, dispel the languor caused by amorous pleasures in the bodies of the women, with embraces loosened by the arms of their lovers

9. G1. G2. K1. K2. R. N. M. °भुजालिगनोच्छ्वासितानां, M. °भुजालिगितोच्छ्वासिताना, B. C1. C2 M. °भुजोच्छ्वासितालिगनाना for °भुजोच्छ्वासितालिगितानाम्. G2. M. यत्रजालावलम्बा for तन्तु-जालावलम्बाः. P. इन्दुपादैर्निशीथे, W. G1. G2. K1. N. M. प्रेरिताश्चन्द्रपादैः, M. चोदिताश्चन्द्रपादैः, M. प्रेरितैश्चन्द्रपादैः, M. चोदितैश्चन्द्रपादैः, M. द्योतितैश्चन्द्रपादैः, K2. M. द्योतिताश्चन्द्रपादैः, M. च्योतिताश्चन्द्रपादैः for चन्द्रपादैर्निशीथे. M. स्फुटनवलजस्पादिनः, G2. K1. K2. N. R. M. स्फुटजलवस्यन्दिनः, for स्फुटजलवस्यन्दिनः.

अक्षय्यान्तर्भवनिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै-

रुद्रायाद्विर्धनपतियशः किनरैर्यत्र सार्धम् ।

वैभ्राजाख्य विबुधवनितावारमुख्यासहाया

बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ॥१०॥

१०. अक्षय्येति ॥ यत्रालकायाम् । श्वेतु शक्याः क्षय्याः ॥ “क्षय्यज्ययौ शक्यार्ये” इति निपातः । ततो नञ्समासः ॥ भवनानामन्तरन्तर्भवनम् ॥ “अव्यय विभक्ति—” इत्यादिनाव्ययीभावः ॥ अक्षय्या अन्तर्भवन अन्तर्भवने निधयो येषां ते तथोक्ता ॥ यथेच्छभोगसभावनार्थमिदं विशेषणम् ॥ विबुधवनिता अप्सरसस्ता एव वारमुख्या वेश्यास्ता एव सहाया येषां ते तथोक्ता ॥ “वाग्द्वी गणिका वेश्या रूपाजीवाय साजनैः । सत्कृता वारमुख्या स्यात्” इत्यमरः ॥ बद्धालापा. संभावितसंलापाः कामिनः कामुकाः प्रत्यहमहन्यहनि ॥ “अव्यय विभक्ति—” इत्यादिना समासः ॥ “अनश्च—” इति समासान्तष्टच् “अद्वष्टवोरेव—” इति टिलोपः ॥ रक्तो मधुरः कण्ठः कण्ठध्वनिर्येषां ते तैः सुन्दरकण्ठध्वनिभिर्धनपतियशः कुबेरक्रीतिमुद्रायद्विरुच्चैर्गायनशिलैः । देवगायनस्य गान्धारग्रामत्वात्तर गायद्विरित्यर्थः ॥ किनरैः सार्धं सह । विभ्राजस्येदं वैभ्राजम् । वैभ्राजमित्याख्या यस्य तद्वैभ्राजाख्यम् ॥ “विभ्राजेन गणैर्नन्द्रेण त्रात वैभ्राजमाख्यया” इति शभुरहस्ये ॥ चैत्ररथस्य नामान्तरमेतत् । बहिरुपवनं बाह्योद्यानं निर्विशन्त्यनुभवन्ति ॥

10. Where the lovers possessed of inexhaustible treasures in their houses, accompanied by the celestial damsels (as) the best of harlots and engaged in conversation, enjoy every day the outer garden called *Taibhrraya*, along with the sweet-voiced *Kinnaras* singing aloud the glory of the God of wealth (*Kubera*)

10. G1. G2. K1. K2. R. N. M. अक्षीण° for अक्षय्य°. G1. G2. K1. K2. M. °भुवन° for °भवन°. M. बद्धालापा, G1. G2. K1. K2. R. N. M. बद्धापान for बद्धालापाः.

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः

पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रशिभिश्च ।

मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-

र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥ ११ ॥

मत्वा देव धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं

प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ।

सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-

स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ॥ १२ ॥

११. गतीति ॥ यत्रालकाया कामिनीनामभिसारिकाणाम् । निशि भवो नैशो मार्गः सवितुरुदये सति गत्या गमनेनोत्कम्पश्चलनं तस्माद्वेतोरलकेभ्यः पतितैर्मन्दारपुष्पैः सुरतरुकुसुमैः । तथा पत्राणां पत्रलतानां छेदैः खण्डैः । पतितैरिति शेषः । तथा कर्णभ्यो विभ्रश्यन्तीति कर्णविभ्रशीनि तैः कनकस्य कमलैः ॥ षष्ठ्या विवक्षितार्थलाभे सति मयटा विग्रहेऽध्याहारदोषः । एवमन्यत्राप्यनुसंधेयम् ॥ तथा मुक्ताजालैर्मौक्तिकसरैः । शिरोनिहितैरित्यर्थः । तथा स्तनयोः परिसरः प्रदेशस्तत्र छिन्नानि सूत्राणि येषां तैर्हारैश्च सूच्यते ज्ञाप्यते । मार्गपतितमन्दारकुसुमादिलिङ्गैर्यमभिसारिकाणां पन्था इत्यनुमीयत इत्यर्थः ॥

१२. मत्वेति ॥ यत्रालकाया मन्मथः कामः । धनपतेः कुबेरस्य सखेति

11 Where, at sunrise, the path of women (taken) at night, is indicated, by *Mandûr* flowers fallen from (their) hair owing to the shaking caused by walk, by pieces of leaves, and golden lotuses dropping from (their) ears, by strings of pearls, and necklaces, the threads of which are broken on the regions of their breasts

12. Where *Cupid*, knowing the God (*Siva*) friend of the God of

11. B. C1. M. गत्योत्कपात् for गत्युत्कपात्. W. M. क्लृप्त-च्छेदैः, G1 G2 K1 K2. R. N M. पत्रच्छेदैः for पत्रच्छेदैः. W. M. नलिनैः for कमलैः. G1. G2 K1. K2. R. N M. विभ्रशिभिः for विभ्रशिभिः. M. मुक्तालग्रैः, G1. मुक्तालग्रं for मुक्ताजालैः. P. स्तनपरिचितच्छिन्नं, G1. लग्नस्तनपरिमलच्छिन्नं, G2. M. लग्नस्तनपरिसर-च्छिन्नं, M. जालस्तनपरिमलच्छिन्नं, K2 M. लग्नस्तनपरिमलच्छिन्नं, K1. जालस्तनपरिचयाच्छिन्नं for स्तनपरिसरच्छिन्नं.

12. P. G2. K1. K2 R. N M सभ्रूभग for सभ्रूभगं. K2. M. कामलक्ष्येषु for कामिलक्ष्येषु. K2. M. अवन्ध्येः for अमोघैः. W. M. चटुलं for चतुरं.

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं

पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान् ।

लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-

मेकः सूते सकलमवलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥ १३ ॥

धनपतिसखः ॥ “ राजाहःसखिम्यष्टच् ” ॥ त देव महादेव साक्षाद्वसन्त सखिस्नेहान्निजरूपेण वर्तमान मत्वा ज्ञात्वा भयाद्भालेक्षणभयात्पट्टदा एव ज्या मौर्वी यस्य त चाप प्रायः प्राचुर्येण न वहति न बिभर्ति ॥ कथं तर्हि तस्य कार्यसिद्धिरत आह—सभ्रूमङ्गति ॥ तस्य मन्मथस्यागम्भ कामिजनविजयव्यापारः सभ्रूमङ्ग प्रहितानि प्रयुक्तानि नयनानि दृष्टयो येषु तैस्तथोक्तैः कामिन एव लक्ष्याणि तेष्वमोघैः । सफलप्रयोगैरित्यर्थः ॥ मन्मथचापोऽपि क्वचिदपि मोघः स्यादिति भावः ॥ चतुराश्च ता वनिताश्च तासां विभ्रमैर्विलासैरेव सिद्धो निष्पन्नः यदनर्थकरः । पाक्षिकफलचतुष्टययोगाद्वरनिश्चितसाधनप्रयोग इति भावः ॥

“ कचधार्य देहधार्य परिधेय विलेपनम् । चतुर्धा भूषण प्राहुः स्त्रीणामन्यच्च दैशिकम् ” इति रसाकरे । तदेवैतदाह—

१३. वास इति ॥ यस्यामलकाया चित्रं नानावर्णं वासो वसनम् । परिधेयमण्डनमेतत् नयनयोर्विभ्रमाणां मादेश उपदेशे दक्षम् । अनेन विभ्रमद्वारा मधुनो मण्डनत्वमनुमधेयम् तच्च मण्डनादिवद्देहधार्येऽन्तर्भाव्यम् । मधु मद्यम् । किसलयैः पल्लवैः सह पुष्पोद्भेदम् । उभय चेत्यर्थः ॥ इदं तु कचधार्यम् । भूषणानां विकल्पान्विशेषात् । देहधार्यमेतत् । तथा चरणकमलन्यासस्य समर्पणस्य योग्यम् । रज्यतेऽनेनेति रागो रज्जुकद्वयम् । लाक्षैव रागस्त लाक्षाराम

wealth (to be) living (there) in person does not, through fear, wield his bow with its string of bees (since) his purpose is accomplished the very graceful movements of clever women,—never ineffect against lovers as their mark, (and) in which eyes are frowningly

13 In which (*Alaka*) the *Kalpa* tree alone creates every decoration of women, (viz) the many-coloured garment, the wine skilled in teaching graceful movements to the eyes, the opening of flowers with sprouts, various kinds of ornaments, and the lac-dye fit for application to the lotus-like feet

13. M. °देशलक्ष for °देशदक्ष. G2. K2 R. M. किशलयैः for किसलयैः. P. विकल्प, M. विशेषात् for विकल्पात्. P. यस्मिन् for यस्याम्.

तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयं

दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ।

यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे

हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥ १४ ॥

इदं चाङ्गरागादिविलेपनमण्डनोपलक्षणं ॥ सकलं सर्वम् । चतुर्विधमपीत्यर्थः ।
अबलामण्डनं योषित्प्रसाधनजातमेकः कल्पवृक्ष एव स्ते जनयति । न तु ना-
नासाधनसपादनप्रयास इत्यर्थः ॥

इत्थमलका वर्णयित्वा तत्र स्वभवनस्याभिज्ञानमाह—

१४. तत्रेति ॥ तत्रालकाया धनपतिगृहात् कुबेरगृहानुत्तरेणोत्तरस्मिन्नदूरदेशे ।
“ एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः ” इत्येनप्रत्ययः । “ एनपाद्वितीया ”
इति द्वितीया ॥ “ गृहाः पुंसि च भूम्न्येव ” इत्यमरः ॥ धनपति-
गृहादिति पाठे “ उत्तरेण ” इति नैनप्रत्ययान्तं किंतु “ तोरणेन ” इत्यस्य
विशेषणं तृतीयान्तम् ॥ धनपतिगृहादुत्तरस्यादिशि यत्तोरणं बहिर्द्वारं तेन लक्षि-
तमित्यर्थः ॥ अस्माकमिदमस्मदीयम् ॥ “ वृद्धाच्छः ” इति छप्रत्ययः ॥
अगुरं गृहम् । सुरपतिधनुश्चारुणा मणिमयत्वाद्भ्रकषत्वाच्चेन्द्रचापसुन्दरेण तोर-
णेन बहिर्द्वारेण दूराल्लक्ष्यं दृश्यम् । अनेनाभिज्ञानेन दूरत एव ज्ञातुं शक्यमि-
त्यर्थः ॥ अभिज्ञानान्तरमाह—यस्यागारस्योपान्ते प्राकारान्तःपार्श्वदेशे मे मम
कान्तया वर्धितः पोषितः कृतकतनयः कृत्रिमसुतः ॥ पुत्रत्वेनाभिमन्यमान
इत्यर्थः ॥ हस्तेन प्राप्यैर्हस्तावचेयैः स्तबकैर्गुच्छैर्नमितः ॥ “ स्यादुच्छकस्तु
स्तबकः ” इत्यमरः ॥ बालो मन्दारवृक्षः कल्पवृक्षोऽस्तीति शेषः ॥

इतः परं पञ्चभिः श्लोकैराभिज्ञानान्तरमाह—

14 There to the north of *Kubera's* building, (stands) my house
visible from afar, by the arched-door-way as beautiful as the rain-
bow,—close to which (house) is a young *Mandâra* tree bent down
by the clusters of flowers, within reach of hand and reared by my
wife as an adopted son

14. W. M. अत्र for तत्र P. W G1. G2. K1 R. N. M.
°गृहात् for °गृहात्. P. त्वदमरधनुः,° K1. M. तदमरधनुः° for सुरप-
तिधनुः°. P. W. G1. G2 K1 R. K2 N. M. उद्याने for उपान्ते.
P. M. वर्धितः कान्तया for कान्तया वर्धितः. M. °विनतः for °नमितः.

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः ।

यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं संनिवृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः॥१५॥

तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनककदलीवृष्टनप्रेक्षणीयः ।

मद्देहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण

प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततटितं त्वां तमेव स्मरामि॥ १६ ॥

१५. वापीति ॥ अस्मिन्मदीयागारे मरकतशिलाभिर्बद्धः सोपानमार्गो
यस्याः सा तथोक्ता । विदूरे भवा वैदूर्याः ॥ “ विदूराञ्ज्यः ” इति व्यप्रत्य-
यः ॥ वैदूर्याणां विकारा वैदूर्याणि ॥ विकारायेंऽणप्रत्ययः ॥ स्निग्धानि वैदूर्या-
णि नालानि येषां तैर्हैमैः सौवर्णैर्विकचकमलैश्छन्ना वापी च । अस्तीति शेषः ॥
यस्या वाप्यास्तोये कृतवसतयः कृतनिवासा हंसास्त्वां मेघ प्रेक्ष्यापि व्यपग-
तशुचो वर्षाकालेऽपि व्यपगतकलुषजलत्वाद्गीतदुःखाः सन्त सनिकृष्ट सनिहि-
तम् । सुगममपीत्यर्थः । मानस मानससरी नाध्यास्यन्ति नोत्कण्ठिष्यन्ति ॥
“ आध्यानमुत्कण्ठास्मरणम् ” इति काशिकायाम् ॥

१६ तस्या इति ॥ तस्या वाप्यास्तीरे पेशलैश्चरामि ॥ “ चारौ दक्षे च
पेशलः ” इत्यमरः ॥ इन्द्रनीलै रचितशिखरः । इन्द्रनीलमणिमयशिखर इ-

15 And in it, there is a pool the way to which is a flight of steps
made of emerald stones, and which is covered with blown golden
lotuses with stalks (consisting) of glossy *Vaiduryas*, the swans
residing in whose waters freed from sorrow, no longer long for
the *Mānasa* (lake) which is near, even though they see thee

16 On its bank stands a mountain of sport, the top of which is

15. P. स्फीता, K2. M. स्यूता for छन्ना. M. विकचकुसुमै
M. कनककमलैः, W. M. कमलमुकुलैः for विकचकमलैः. P. M.
“दीर्घवैदूर्यं”, G2 K1. K2. R. N. M. “स्निग्धवैदूर्यं” for “स्निग्धवैदूर्यं”.
P. W. G1. G2. K1 K2. R. N. M. न ध्यास्यन्ति, M. न
ध्यायन्ति for नाध्यास्यन्ति P. प्राप्य for प्रेक्ष्य.

16. W. K2. M. यस्याः for तस्याः P. विहितं, K2 M.
नचितं for रचितं. W. K1. M. “कदलीवृष्टनः”, R. N. M.
“कदलार्वाष्टनं” for “कदलीवृष्टनं”. P. “स्फुरिततटितं” for स्फुरिततटितं.

रक्ताशोकश्वलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः

प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य ।

एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी

काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छन्ननास्याः ॥१७॥

त्यर्थः । कनककदलीनां वेषेण परिधिना प्रेक्षणीयो दर्शनीयः । क्रीडाशैलः । अस्तीति शेषः ॥ हे सखे । उपान्तेषु प्रान्तेषु स्फुरितास्तडितो यस्य तत्तथोक्तम् ॥ इदं विशेषणं कदलीसाम्यार्थमुक्तम् ॥ इन्द्रनीलसाम्यं तु मेघस्य स्वाभाविकमित्यनेन सूच्यते ॥ त्वा प्रेक्ष्य मद्देहिन्याः प्रिय इति हेतोः । तस्य शैलस्य मद्रुहिणीप्रियत्वाद्धेतोरित्यर्थः ॥ कातरं भीतेन चेतसा ॥ भयं चात्र सानन्दमेव । “वस्तूनामनुभूतानां तुल्यश्रवणदर्शनात् । श्रवणात्कीर्तनाद्वापि सानन्दा भीर्यथा भवेत्” इति रसाकरे दर्शनात् ॥ तमेव क्रीडाशैलमेव स्मरामि ॥ एवकारो विषयान्तरव्यवच्छेदार्थः ॥ सदृशवस्त्वनुभवादिष्टार्थस्मृतिर्जायत इत्यर्थः । अत एवात्र स्मरणाख्योऽलंकारः । तदुक्तम्—“सदृशानुभवादन्यस्मृति स्मरणमुच्यते” इति ॥ निरुक्तकारस्तु “त्वा तमेव स्मरामि” इति योजयित्वा मेघशैलत्वारोपमाच्छेदं तदसंगतम् । अनार्जवात् । अद्याकारोपस्य पुरोर्वीतित्यनुभवात्मकत्वेन स्मरतिशब्दप्रयोगायोगात् ॥ शैलत्वभावनास्मृतिरित्यपि नोपपद्यते । भावनायाः स्मृतित्वे प्रमाणाभावादानुभवायोगात्सादृश्योपन्यासवैयर्थ्याच्च । विसदृशेऽपि शालग्रामे हरिभावनादर्शनादिति ॥

१७. रक्तेति ॥ अत्र क्रीडाशैले कुरबका एव वृतिरावरणं यस्य तस्य । मधौ वसन्ते भवा माधव्यस्तासां मण्डपस्तस्यातिमुक्तलतागृहस्य ॥ “अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्याद्वासन्ती माधवी लता” इत्यमरः ॥ प्रत्यासन्नौ सनिकृष्टौ

composed of beautiful sapphires and which is fine-looking on account of the enclosure of golden plantain trees, on seeing thee, O friend, with lightnings flashing about (thee), I recollect with a trembling heart, the self-same mountain as being dear to my wife

17 Hereon are the red *Ashoka* with its waving sprouts, and the beautiful *Bahula* (tree), in the vicinity of the bower of the *Madhar* (creepers) hedged in by *Kurabaka* plants, the former longs

17. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M °किशलयः for °किसलयः. W. M तत्र for चात्र W. M. प्रत्यासन्नः, M. प्रत्यासन्ने for प्रत्यासन्नौ. W. G2. K1 R. N. M. कुरबक° for कुरबक°. K1. N. K2. M. वाङ्क्षत्यन्यः for काङ्क्षत्यन्यः. P. वदनमदिराः for वदनमदिराम्. P. दोहद° for दोहद°.

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-

मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः ।

तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे

यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद् ॥१८॥

चलकिसलयश्चञ्चलपङ्खवः । अनेन वृक्षस्य पादताडनाय प्राञ्जलित्वं व्यज्यते । रक्ताशोकः । रक्तविशेषण तस्य स्मरोद्दीपकत्वादुक्तम् । “ प्रसूनकैरशोकस्तु श्वेतो रक्त इति द्विधा । बहुसिद्धिकरः श्वेतो रक्तोऽत्र स्मरवर्धनः ” इत्यशोक-कल्पे दर्शनात् ॥ कान्तः कमनीयः केसरो बकुलश्च ॥ “ अथ केसरे । ब-कुलो वञ्जुल ” इत्यमरः ॥ स्त इति शेषः ॥ एकस्तयोरन्यतरः । प्राथमिक-त्वादशोक इत्यर्थः । मया सह तव सख्याः । स्वमियाया इत्यर्थः ॥ वामपादा-भिलाषी । दोहदच्छद्मनेत्यत्रापि संबन्धनीयम् ॥ स चाह च अभिलाषिणावि-त्यर्थः ॥ अन्य केसरः । दोहदो वृक्षादीना प्रसवकारण सस्कारद्रव्यम् ॥ “ त-रुगुल्मलतादीनामकाले कुशले कृतम् । पुष्पाद्युत्पादक द्रव्यं दोहदः स्यात्तु त-त्क्रिया ” इति शब्दार्थवे ॥ तस्य छद्मना व्याजेन ॥ “ कपटोऽस्त्री व्याजद-म्भोपधयश्छद्मकैतवे ” इत्यमरः । अस्यास्तव सख्या वदनमदिरा गण्डूषमयं काक्षति ॥ मया सहेत्यत्रापि संबन्धनीयम् ॥ अशोकबकुलयोः स्त्रीपादताडनं गण्डूषमदिरा च दोहद इति प्रसिद्धिः ॥ “ स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियङ्गविकसति ब-कुलः सीधुगण्डूषसेकात्पादावातादशोकस्तिलककुम्भकौ वीक्षणालिङ्गना-भ्याम् । मन्दारो नर्मवाक्यात्पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्रवाताच्चूतो गीतान्नमेरु-विकसति च पुरो नर्तनात्कर्णिकारः ” ॥

१८. तन्मध्ये इति ॥ किं चेति चार्थः ॥ तन्मध्ये तयोर्वृक्षयोर्मध्येऽनति-

with me for thy friend's (1 e my wife's) beautiful foot and the latter desires (with me) the wine from her mouth, under the pretext that it is an operation essential in causing their blossoming

18 And between them, is a golden perch having a crystal slab and built at the bottom with jewels (emeralds) as shining as young bamboos, on which, at the close of day, sits thy blue-necked friend

18. M. तत्तन्मध्ये for तन्मध्ये च. G1. G2 K1. K2. R. N. M. स्फटिकफलका for स्फटिकफलका. M. नद्धा for बद्ध . P. M. सिञ्जद्वलय°, W. G2. K1 K2 R. N M. शिञ्जद्वलय° for शिञ्जावलय°. G2. M सभ्रूभगे करतलयैर्नर्तितः, K1. सभ्रूभंग करतलयैर्नर्तितः for तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः. P. K1. W. M. कान्तया नर्तितः, M. नर्तितैः कान्तया for नर्तितः कान्तया.

एभिः साधो हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा ।

क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्पयति स्वामभिरुयाम् ॥ १९ ॥

प्रौढानामनतिकठोराणां वशानां प्रकाश इव प्रकाशो येषां तैस्तरुणवेषेण च्छाद्यैर्मणिभिर्मरुतशिलाभिर्मले बद्धा कृतवेदिकेत्यर्थः ॥ स्फटिक स्फटिकमय फलरुपीठं यस्यां सा । काञ्चनस्य विकारः काञ्चनी सौवर्णी वासयष्टिर्निवासदण्डः । अस्तीति शेषः ॥ शिञ्जा भूषणध्वनिः ॥ “ भूषणानां तु शिञ्जितम् ” इत्यमरः ॥ भिदादित्वादङ् ॥ शिञ्जिधातुरयं तालव्यादिर्न तु दन्त्यादिः ॥ शिञ्जाप्रधानानि वलयानि तैः सुभगा रम्यास्तैस्तालैः करतलवादनैर्भेदं मम कान्तया नर्तितं वा युष्माकं मुहत्सखा नीलकण्ठो मयूरः ॥ “ मयूरो बार्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्गमुक् ” इत्यमरः ॥ दिवसविगमे सायंकाले या यष्टिकामध्यास्ते । यष्ट्यामास्त इत्यर्थः ॥ “ अधिशिष्टस्थासां कर्म ” इति कर्मत्वाद्वितीया ॥ “ तत्रागारम् ” इत्यारभ्य पञ्चमु श्लोकेषु समृद्धवस्तुवर्णनादुदात्तालकारः । तदुक्तम्—“ तदुदात्तं भवेद्यत्र समृद्धं वस्तु वर्ण्यते ” इति ॥ न चैषा स्वभावोक्तिर्भाविक वा तत्र यथास्थितवस्तुवर्णनात् । अत्र तु “ कविप्रतिभोत्थापितसमाव्यमानैश्वर्यशालिवस्तुवर्णनादारोपितविषयत्वमिति ताभ्यामस्य भेदः ” इत्यलङ्कारसर्वस्वकारः ॥

१९. एभिरिति ॥ हे साधो निपुण ॥ “साधुः समर्थो निपुणो वा ” इति काशिकायाम् । हृदयनिहितैः । अविस्मृतैरित्यर्थः ॥ एभिः पूर्वोक्तैर्लक्षणैस्तोराणादिभिरभिज्ञानैर्द्वारोपान्ते ॥ एकवचनमविवक्षितम् ॥ द्वारपार्श्वयोरित्यर्थः ॥ लिखिते वपुषौ आकृती ययोस्तौ तथोक्तौ शङ्खपद्मौ नाम निधिविशेषौ ॥

(a peacock) made to dance by my wife with the clappings of the hands (rendered) charming by her jangling bracelets

19 By means of these marks, treasured up in thy heart and on seeing *Sankha* & *Padma* (two of Kubera's treasures) whose figures are drawn on both the sides of the door, thou wilt, O clever one, recognise (my) house, now indeed with its lustre diminished by my absence, (for) at sunset, the lotus does not, forsooth, retain its beauty

19. K1. K2. N. M. मनासि for हृदयं K2. M. लक्षणीय for लक्षयेथाः. W. M. मन्दं for क्षामं. M. K1. G1. N. R. अभिक्षा for अभिरुयाम्.

गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः

क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः ।

अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं

खद्योतालीविलसितानिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥ २० ॥

“ निधिर्ना शेषधर्मेदा. पद्मशङ्खादयो निधेः ” इत्यमरः ॥ दृष्ट्वा च नूनं सत्य-
मबुनेदानीम् ॥ “ अधुना ” इति निपा ॥ मद्वियोगेन मम प्रवासेन क्षाम-
च्छोय मन्दच्छायमुत्सवापरमात्क्षीणकान्ति भवन मद्गृह लक्ष्यया निश्चिनुयाः ।
तथा हि । सूर्यापाये सति कमल पद्म स्वामात्मीयामभिख्या शोभाम् ॥ “ अ-
भिख्या नामशोभयोः ” इत्यमरः ॥ न पुष्यति नोपचिनाति खलु । सूर्यविरहितं
पद्ममिव पतिविरहितं गृहं न शोभत इत्यर्थः ।

निजगृहनिश्चयानन्तरं कृत्यमाह—

२०. गत्वेति ॥ हे मेघ । शीघ्रसंपात एव हेतुस्तस्य । शीघ्रप्रवेशार्थमि-
त्यर्थः ॥ “ षष्ठी हेतुप्रयोगे ” इति षष्ठी ॥ “ संपात पतनेयोगे प्रवेश वेदस-
विदोः ” इति शब्दार्णवे ॥ सद्यः सपदि कलभस्य करिपोतस्य तनुरिव तनुर्यस्य
तस्य भावस्तामल्पशरीरता गत्वा प्राप्य प्रथमकथिते “ तस्यास्तीरे ” इत्या-
दिना पूर्वोद्दिष्टे रम्यसानौ । निषण्णयोग्य इत्यर्थः । क्रीडाशैले निषण्ण उपविष्टः
सन् । अल्पाल्पा अल्पप्रकाराभाः प्रकाशो यस्यास्ताम् । “ प्रकारे गुणवचनस्य ”
इति द्विरुक्तिः ॥ खद्योतानामाली तस्या विलसितं स्फुरितं निभा समाना वि-
द्युदुन्मेषां विद्युत्प्रकाशः स एव दृष्टिस्ता भवनस्यान्तर्गतर्भवनं तत्र पतिता प्र-
विष्टा कर्तुमर्हसि । यथा कश्चित्किञ्चिदन्विष्यन्कचिदुन्नते स्थित्वा शनैः शनै-
रतितरा द्राघीयसीं दृष्टिमिष्टदेशे पातयति तद्वदित्यर्थः ॥

सप्रति दृष्टिपातफलस्याभिज्ञानं श्लोकद्वयेनाह—

20 After assuming forthwith the size of a young elephant, for the purpose of quick entrance, thou, seated on the aforesaid beautiful-topped mountain of sport, shouldst be pleased to cast, inside the house, a glance in the form of a flash of lightning, of a very slight brilliancy and resembling the twinklings of a line of fireflies

20. W. M. तत्परित्राणं for शीघ्रसंपातं. G2. M. °भासा for भास. G2. M. °विलसनं for °विलसितं.

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥ २१ ॥

२१. तन्वीति ॥ तन्वी कृशाङ्गी । न तु पीवरी ॥ “ श्लक्ष्ण दम्न कश-
त्तनु ” इत्यमरः ॥ “ वीतो गुणवचनात् ” इति ङिप् ॥ श्यामा युवतिः ॥
“ श्यामा यौवनमध्यस्था ” इत्युत्पलमालायाम् ॥ शिखराण्येषा सन्तीति शि-
खरिणः कौटिमन्तः ॥ “ शिखर शैलवृक्षाग्रकक्षापुलककांठिषु ” इति विश्वः ॥
शिखरिणी दशना दन्ता यस्याः सा । एतेनास्या भाग्यवत्त्व पत्यायुष्करत्वं च
सूच्यते । तदुक्तं सामुद्रिके—“ स्निग्धा. समानरूपाः सुपङ्क्तयः शिखरिणः
श्लिष्टाः । दन्ता भवन्ति यामा तासा पादे जगत्सर्वम् ॥ ताम्बूलसरक्तेऽपि-
स्फुटभासः समोदयाः । दन्ताः शिखरिणो यस्याश्चिर जीवति तत्पतिः ” इति ॥
पक्व परिणत बिम्ब बिम्बिकाफलमिवाधरोष्ठी यस्याः सा पक्वबिम्बाधरोष्ठी ॥
शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपी समासः ” इति वामनः ॥ “ नासिकोद्-
रोष्ठ—” इत्यादिना ङिप् ॥ मध्ये क्षामा । कृशोदरीत्यर्थः । चकितहरिण्याः
प्रेक्षणानीव प्रेक्षणानि दृष्टयो यस्याः सा तथोक्ता ॥ एतेनास्याः पद्मिनीत्व व्य-
ज्यते । तदुक्तं रतिरहस्ये पद्मिनीलक्षणप्रस्तावे—“ चकितमृगदृशाभे प्रान्तरक्तं
च नेत्रे ” इति ॥ निम्ननाभिर्गम्भीरनाभिः ॥ अनेन नारीणां नाभिगाम्भीर्या-
न्मदनातिरेक इति कामसूत्रार्थः सूच्यते । श्रोणीभारादलसगमना मन्दगामिनी ।
न तु जघनदोषात् ॥ स्तनाभ्यां स्तोकनप्रेषदवनता । न तु वपुर्दोषात् ॥ युवत-
य एव विषयस्तस्मिन् युवतिविषये । युवतीरधिकृत्येत्यर्थः । धातुर्ब्रह्मण आद्या सृष्टिः
प्रथमशिल्पमिव स्थितेत्युत्प्रेक्षा ॥ प्रथमनिर्मिता युवतिरियमेवेत्यर्थः ॥ प्रायेण
शिल्पिनां प्रथमनिर्माणे प्रयत्नातिशयवशाच्छिल्पनिर्माणसौष्टव दृश्यत इत्याद्यवि-

21 Slender, youthful, possessed of pointed teeth, and of lips like
ripe *Bimba* (fruit), thin-waisted, possessed of eyes like those of a
timid fawn, of deep navel, moving slowly on account of the weight
of the hips, slightly bent down by the (two) breasts, (and) the
first work, as it were, of the creator in the department of women,—
who may be (of such a description) there

21. G2. W. K1. R. N.M. शिखरदशना, G1 M. अशिखरि-
दशना for शिखरिदशना. M. अधरोष्ठी for अधरोष्ठी. M. क्षीणा for
क्षामा. B. आस्ते for स्यात्. P. युवतिविषया for युवतिविषये. W.
K1. M. आद्यैव for आद्येव.

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
 दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम् ।
 गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
 जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम् ॥२२॥

शेषणम् । तथा चास्मिन्प्रपञ्चे न कुत्राप्येवविद्यारामणीयक रमणीरत्नमस्तीति भावः । तदेवभूता या स्त्री तत्रान्तर्भवेन स्यात् । तत्र निवसेदित्यर्थः । तामित्युत्तरश्लोकेन सवन्धः ॥

२२. तामिति ॥ सहचरे सहचारिणि । अनेन वियोगासहिष्णुत्वं व्यज्यते । मयि दूरीभूते दूरस्थिते सति । सहचरे चक्रवाके दूरीभूते सति चक्रवाकीं चक्रवाकवधूमिव ॥ “जातेस्त्रीविषयादयोपधात्” इति ङीष् ॥ परिमितकथा परिमितवाचम् । एकामेकाकिनीं स्थिता तामन्तर्भवनगता म द्वितीय जीवित जानीथाः ॥ जीविततुल्या मत्प्रेयसीमवगच्छेरित्यर्थः । ‘तन्वी’ इत्यादिपूर्वलक्षणैरिति शेषः ॥ लक्षणानामन्ययाभावभ्रममाशङ्क्याह—गाढेति ॥ गाढोत्कण्ठा प्रबलविग्रहवेदनाम् । “रागे त्वलब्धविषये वेदना महती तु या । सशोषणी तु गात्राणा तामुत्कण्ठा विदुर्बुधाः” इत्यभिव्यानात् ॥ बाला गुरुषु विरहमहत्स्वेषु वर्तमानेषु दिवसेषु गच्छत्सु सत्सु शिशिरेण शिशिरकालेन मथिता पद्मिनीं वा पद्मिनीमिव ॥ “इवद्वयायाशब्दौ” इति दण्डो ॥ अन्यरूपा पूर्वविपरीताकारा जाता मन्ये । हिमहतपद्मिनीव विरहेणान्यादृशी जातेति तर्कयामीत्यर्थः । एतावता नेयमन्येति भ्रमितव्यमिति भावः ॥

22 Thou canst know her, (who is) taciturn, (and) in the absence of me, her companion, solitary like a *Chakravali*, to be my second life (i e my wife), I imagine (that) young woman (filled) with ardent longing, to have become changed in appearance like a lotus-plant-blighted by winter, during these heavy days that are (now) passing

22. P R. W. K1. K2 G1. G2. N. M. जानीथाः for जानीथाः. P. गाढोत्कण्ठा for गाढोत्कण्ठाम्. P. बाला जाता for बालाम् जाताम्. P. ‘मथिता पद्मिनीवान्यरूपा for ‘मथितां पद्मिनीं वान्यरूपा. K1. G1. N. M. K2. तुहिनं for शिशिरं.

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।

हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-

दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणाक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥ २३ ॥

२३. नूनमिति ॥ प्रबलरुदितेनोच्छूने स्तब्धे स्थण्डितपुटे नेत्रे यस्य तत् । उच्छूनोति श्वयते. कर्तरि क्तः ॥ “ओदितश्च” इति निष्ठा नत्वम् । “वचिस्व-
पि-” इत्यादिना सप्रसारणम् । “सप्रसारणाच्च” इति पूर्वरूपत्वम् । “हल”
इति दीर्घः ॥ “च्छू शूडनुनामिके च” इति ऊट् आदेशे कृते रूपसिद्धि-
रिति वर्तमानसामीप्यप्रक्रिया प्रामादिकीत्युत्प्रेक्षा । तथा सति धातोरिकारस्य
गत्यभावादूडादेशे ह्योरन्त्यत्वेन विशेषणाच्चेति ॥ एतेन विषादो व्यज्यते । निः-
श्वासानामशिशिरतयान्तस्तापोष्णत्वेन भिन्नवर्णो विच्छायोऽधरोष्ठो यस्य तत् ।
हस्ते न्यस्त हस्तन्यस्तम् । एतेन चिन्ता व्यज्यते ॥ लम्बालकत्वात्संस्कारा-
भावाल्लम्बमानकुन्तलत्वादसकलव्यक्त्यमपूर्णाभिव्यक्तिः तस्याः प्रियाया मुखं
त्वदनुसरणेन त्वदुपरोधेन । मेवानुसरणेनेति यावत् । क्लिष्टकान्तेः क्षीणकान्ते-
दिन्दोर्दैन्यं शोच्यता बिभर्ति । नूनमिति वितर्के ॥ “नून तर्केऽर्थनिश्चये”
इत्यमरः ॥ पूर्ववत्तथापि न भ्रमितव्यामिति भावः ॥

सर्वविरहिणीसाधारणानि लक्षणानि संभावनयोत्प्रेक्षयाणीत्याह “आलोक्ये”
इत्यादिभिस्त्रिभिः—

23 Possibly that loved one's fan resting on her hand, with eyes
swollen on account of excessive weeping, with lips deprived of their
colour on account of the heat of the sighs, and partly visible owing to
the hair hanging (loosely over it) wears the wretched appearance
of the moon whose beauty has been impaired by thy persecution.

23. G1. G2 N. M. °उत्सून° for °उच्छून°. P. M. बहूनां for
प्रियायाः. W. M. हस्ते न्यस्तम् for हस्तन्यस्तम्. M. G2, त्वदुपसरण°
for त्वदनुसरण°. M. विभर्तु for बिभर्ति.

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
 मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ।
 पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थाम्
 कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥ २४॥

२४. आलोकेति ॥ हे मेघ । सा मत्प्रिया । बलिषु नित्येषु प्रोषितागमनार्थेषु च देवताराधनेषु व्याकुला व्यापृता वा । विरहेण तनु क्लेश भावगम्यम् । तत्काश्यस्यादृष्टचरत्वात्संप्रति सभावनयोत्प्रेक्ष्यमित्यर्थः । मत्सादृश्यं मदाकार-साम्यम् । मत्प्रतिकृतिमित्यर्थः । यद्यपि सादृश्यं नाम प्रसिद्धवस्त्वन्तरगतमाका-रसाम्यं तथापि प्रतिकृतिवत्त्वेन विवक्षितमितरथालेख्यत्वासम्भवात् । अक्षय्यकोशे “ आलेख्येऽपि च सादृश्यम् ” इत्यभिधानात् ॥ लिखन्ती कचित्फलकादौ विन्यस्यन्ती वा चित्रदर्शनस्य विग्रहिणीविनोदोपायत्वादिति भावः ॥ एतच्च कामशास्त्रसंवादेन सम्यग्विवेचितमस्माभी रघुवशसजीविन्याम् “ सादृश्यवृ-त्तिकृतिदर्शनैः प्रियायाः ” इत्यत्र । मधुरवचना मज्जभाषिणीम् । अतएव पञ्जर-स्थाम् । हिंसेभ्यः कृतसरक्षणामित्यर्थः । सारिका स्त्रीपक्षिविशेषम् । हे रसिक भर्तुः स्वामिनः स्मरसि कच्चिद् ॥ “ कच्चित्कामप्रेवदने ” इत्यमरः ॥ भर्तारं स्मरसि किमित्यर्थः ॥ “ अधीगर्थदयेश कर्मणि ” इति कर्मणि षष्ठी ॥ स्मरणे कारणमाह । हि यस्मात्कारणान्च तस्य भर्तुः । प्रीणातीति प्रिया ॥ “ इगुपधज्ञाप्रिकिरः कः ” इति कप्रत्ययः ॥ अतः प्रेमास्पदत्वात्स्मर्तुमर्हसीति भावः । इत्येव पृच्छन्ती वा ॥ वाशब्दो विकल्पे ॥ “ उपमाया विकल्पे वा ” इत्यमरः ॥ ते तवालोके दृष्टिपथे पुरा निपतति । सद्यो निपतिष्यतीत्यर्थः ॥ “ स्यात्प्रबन्धे पुरातीते निकटागामिके पुरा ” इत्यमरः ॥ “ यावत्पुरानिपात-योर्लट् ” इति लट् ॥

24. She will (just) come under thy notice, engaged in worship, or drawing my likeness emaciated by separation (and) conceivable in (her) imagination, or asking the sweet-voiced *Sarika* confined in the cage, “Do you, O sweet one remember your master, (i.e. my husband), for you were his pet ”

24. W. M. पुरे for पुरा. W. M. विरहतनुता° for विरहतनु वा P. M. मधुरवचनं for मधुरवचना. W. M. K2. निभृते for रसिके.

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां

मद्गोत्राङ्गं विरचितपदं गेयमुद्रातुकामा ।

तन्त्रीमाद्रा नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचि-

द्भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती॥२५॥

२५. उत्सङ्गेति ॥ हे सौम्य साधो । मलिनवसने । “ प्रोषिते मलिना कृशा ” इति शास्त्रादित्यर्थः ॥ उत्सङ्ग ऊरौ वीणा निक्षिप्य । मम गोत्र नामाङ्गश्चिद् यस्मिन्मद्गोत्राङ्ग मन्नामाङ्ग यथा तथा ॥ “ गोत्र नाम्नि कुलेऽपि च ” इत्यमरः ॥ विरचितानि पदानि यस्य तत्तथोक्त गेयं गानार्हं प्रबन्धादि ॥ “ गतिम् ” इति पाठे स एवार्थः ॥ उद्रातुमर्चैर्गातु कामो यस्याः सा ॥ “ तुं काममनसोरपि ” इति मकारलोपः ॥ देवयोनित्वाद्गन्धारग्रामेण गातुकामेत्यर्थः । तदुक्तम्— “ षड्भ्यमध्यमनामानौ ग्रामौ गायन्ति मानवाः । न तु गान्धारनामान स लभ्यो देवयोनिभिः ” इति ॥ तथा नयनसलिलैः प्रियतमस्मृतिजनितैरश्रुभिराद्रा तन्त्री कथंचित्कृच्छ्रेण सारयित्वा । आर्द्रत्वापहरणाय करेण प्रमृज्यान्यथा कणनासभवादिति भावः । भूयो भूयः पुनः पुनः स्वयमात्मना कृतामपि । विस्मरणानर्हामपीत्यर्थः । मूर्च्छना स्वरारोहावरोहकमम् । “ स्वराणां स्थापनाः सान्ता मूर्च्छनाः सप्त सप्त हि ” इति सगीतरत्नाकरे ॥ विस्मरन्ती वा । “ आलोके ते निपतति ” इति पूर्वेणान्वयः ॥ विस्मरणं चात्र दयितगुणस्मृतिजनितमूर्च्छावशादेव ॥ तथा च रसरत्नाकरे— “ वियोगायोगयोरिष्टगुणानां कीर्तनात्स्मृते । साक्षात्कारोऽथवा मूर्च्छा दशधा जायते तथा ” इति ॥ मत्सादृश्यमित्यादिना मनःसङ्गानुवृत्तिः सूचिता ॥

25 Or having placed, O good one, the lute on her lap with a duty garment, or desirous of singing a song in which words are arranged so as to have my name as their characteristic, (and) having somehow wiped the string wet with tears, forgetting often, and often, the air although made by herself.

25. G2. M. गीतं for गेयम् P. W. M तन्त्रीमाद्राः for तन्त्रीमाद्राम्. P. M. अधिकृताम् for अपि कृताम्.

शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा

विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः ।

संभोगं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती

प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः ॥ २६ ॥

२६. शेषानिति ॥ अथवा विरहस्य दिवसस्तस्मात्स्थापितस्य तत् आ-
रम्भ निश्चितस्यावधेरन्तस्य शेषान्गतावशिष्टान्मासान्देहलीदत्तपुष्पैः ॥ देहली
द्वारस्याधारदारु ॥ “ गृहावग्रहणी देहली ” इत्यमरः ॥ तत्र दत्तानि
राशित्वेन निहितानि यानि पुष्पाणि तैर्गणनया एको द्वावित्यादिसंख्यानेन
भुवि भूतले विन्यस्यन्ती वा । पुष्पविन्यासैर्मासान्गणयन्ती वेत्यर्थः ॥ यद्वा हृदये
निहितो मनसि सकल्पित आरम्भ उपक्रमो यस्य तम् । अथवा हृदयनिहिता
आरम्भाश्चम्बनादयो व्यापारा यस्मिस्तं संभोग गतिमास्वादयन्ती वा । “ आ-
लोकं ते निपतति ” इति पूर्वेषु सबन्धः ॥ ननु कथमयं निश्चय इत्याशङ्क्य अ-
र्थान्तरन्यासेन परिहरति । प्रायेण बाहुल्येनाङ्गनानां रमणविरहेष्वेते पूर्वोक्ता
विनोदाः कालयापनोपायाः । एतेन संकल्पावस्थां कृत्वा । तदुक्तम्—“ सकल्पो
नाथविषयमनोरथ उदाहृतः ” इति ॥

26 On counting on the floor with flowers placed at the threshold,
the remaining months of the period settled (commencing) from the
day of separation, or experiencing the pleasure of sexual intercourse
(with me) the actions whereof are laid in the mind, these are generally
the pastimes of women during separation from their husbands

26. W. G1. G2. K1. K2 R. N M B. गमनं, M.
मनसि for विरहं. K1. R. M. °दिवसे for दिवसं M. °प्रस्थितस्य
for °स्थापितस्य P G1. W. G2 K1 K2. R N M. °मुक्तपुष्पैः
for °दत्तपुष्पैः. P. R. W N G1. G2. M सयोग वा, K1. K2.
M मत्सयोगं, M सयोगे मे, B. M. मत्संभोग, C1. C2. M. मत्सग
वा for संभोग वा. P. M. °रचितां, M. °विहितां for °निहितां.
K1. W. R G1. G2. N M. आसादयन्ती for आस्वादयन्ती, W.
M. °विरहे हि for °विरहेषु.

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेद्विप्रयोगः

शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते ।

मत्संदेशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे

तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः ॥ २७ ॥

२७. सव्यापारामिति ॥ हे सखे । अहनि दिवसे सव्यापारा पूर्वोक्तबलि-
चित्रलंखनादिव्यापारवतीं ते सखीं स्वप्रिया विप्रयोगो मर्दिरहस्तथा तेन प्रका-
रणे ॥ “ प्रकारवचने थाल् ” इति थाल्प्रत्ययः ॥ न पीडयेत् । यथा रात्रा-
विति शेषः ॥ किं तु रात्रौ निर्विनोदा निर्व्यापारा ते सखीं गुरुतरा शुभ्य-
स्यास्ता गुरुतरशुचमतिदुर्भरदु स्वा शङ्के तर्कयामि ॥ “ शङ्का वितर्कभययोः ”
इति शब्दार्णवे ॥ अतो निशीथेऽर्धरात्र उन्निद्रामुत्तृष्टनिद्राम् । अवनितेव शयनं
शय्या यस्यास्ताम् ॥ नियमार्थं स्थण्डिलशायिनीम् ॥ साध्वी पतिव्रताम् ॥
“ साध्वी पतिव्रता ” इत्यमरः ॥ अतो नान्यथा शङ्कितव्यमिति भावः । तां
त्वत्सखी मत्संदेशैर्मद्वार्ताभिरल पर्याप्त सुखयितुमानन्दयितु सौधवातायनस्थः
सन्पश्य ॥ “ सखा धात्री च पितरौ मित्रदूतशुकादयः । सुखयन्तीष्टकथनमु-
खापायैर्विधोगिनीम् ” इति रसरन्नाकरे ॥ दूतश्चाय मेघ इति भावः ॥ अनेन
जागरावस्थोक्ता ॥

पुनस्तामेव विशिनष्टि “ आधिक्षामाम् ” इत्यादिभिश्चतुर्भिः—

27 I fear that separation (from me) will not so afflict thy friend
during the day-time when (she is) employed as (it will) during
the night when (she is) without amusement (and therefore) in excess-
ive grief, in order to cheer her up completely with messages from
me, thou, standing at midnight, at the window of the mansion, shouldst
behold the chaste one sleepless and having the ground for her bed

27. K2. M. खेदयेत् for पीडयेत् W. C1. C2. G1. N. R.
G2. K1. M. K2. मद्वियोगः for विप्रयोग. P. M. अतः for अलम्.
W. M. °शयनां सन्नवातायनस्थः, P. B. K1. K2. M. °शयनां सन्न-
वातायनस्थः, G1. G2. R. N. M. °शयनासन्नवातायनस्थः for °शयना
सौधवातायनस्थः.

आधिक्षामां विरहशयने संनिषण्णैकपाश्वार्थं
 प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ।
 नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
 तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥ २८ ॥
 पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टा-
 न्पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं संनिवृत्तं तथैव ।

चक्षुः खेदात्सलिलगुरुभिः पक्षमभिश्छादयन्तीं
 साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥ २९ ॥

२८. आधिक्षामामिति ॥ आधिना मनोव्यथयाक्षामा कृशाम् ॥ “पुंस्या-
 धिर्मानसी व्यथा ” इत्यमरः ॥ क्षायते. कर्तरि क्त. ॥ “ क्षायो म. ” इति
 निष्ठातकारस्य मकारः ॥ विरहे शयनतस्मिन्विरहशयने । पल्लवादिरचिन इत्यर्थः ।
 संनिषण्णमेक पार्श्वं यस्यास्ताम् । अत एव प्राच्याः पूर्वस्या दिशो मूले । उदय-
 प्रान्त इत्यर्थः ॥ प्राचीग्रहण क्षीणावस्थाद्योतनार्थम् । कलामात्र कलैव शेषो
 यस्यास्ता हिमांशोस्तनु मूर्तिमिव स्थिताम् । तथा या रात्रिर्मया सार्धमिच्छया
 कृतानि रतानि तैः ॥ शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपी समामः ॥ क्षण इव
 नीता यापिता ता तज्जातीयामेव रात्रि विरहेण महती महत्त्वेन प्रतीयमानामु-
 ष्णैरश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥ यातेर्ष्यन्ताच्छतृप्रत्ययः ॥ “ अर्तिह्री—” इत्यादिना
 पुगागमः ॥ स एव काल सुखिनानल्पः प्रतीयते । दुःखिना तु विपरीत इति
 भावः । एतेन कार्यावस्थोक्ता ॥

२९. पादानिति ॥ जालमार्गप्रविष्टान्गवाक्षविवरगतानमृतशिशिरानि

28 Worn out by mental agony lying on one side on her bed of separation, resembling the disk of the moon which has only its sixteenth part remaining on the Eastern horizon, and passing in hot tears that very night made long by solitude, (yet) which was spent like a moment with me in unrestrained (indulgence of) pleasures

29 Covering with the eyelashes heavy by tears of sorrow, the eye

28. W. M. सन्निकीर्णैकं, M विप्रकीर्णैकं for सन्निषण्णैकं. P. K1. W. K2. G1. G2. R N. M क्षणमिव for क्षण इव. W. G1. G2. K1. N. M. °जनिताः, M R K2. °पतितैः for °महतीम्.

29. R. N. M. K1. K2. अभिमुखगत for गतमभिमुखम्. P. G2. M. K1. K2. N. R. खेदाच्चक्षुः for चक्षुःखेदात्. M. सजलं for सलिलं. M. छादयित्वा for छादयन्तीम्.

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्ती

शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम् ।

मत्संभोगः कथमुपनमेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा-

माकाङ्क्षन्ती नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम्॥३०॥

न्दो. पादान्दस्मीन्पूर्वप्रीत्या पूर्वस्नेहेन । पूर्ववदानन्दकरा भविष्यन्तीति बु-
द्धयति भावः । अभिमुख यथा तथा गत तथैव सनिवृत्त यथा गत तथैव प्रति-
निवृत्तम् । तदा तषामतीव दुःसहत्वादिति भावः । चक्षुर्दृष्टिं खेदात्सलिलगु-
रुभिरश्रुदुर्भरैः पक्ष्मभिश्छादयन्तीम् । अत एव साध्रे दुर्विनेऽहि दिवसे न प्र-
बुद्धा मेधावरणादविकसिता न सुप्तामहरित्यमुकुलिताम् ॥ उभयत्रापि नञर्थस्य
नशब्दस्य सुप्सुपेति समासः ॥ स्थलकमलिनीमिव स्थिताम् । एतेन विषयद्वे-
षाख्या षष्ठी दशा सूचिता ॥

३०. निःश्वासेति ॥ शुद्धस्नानात्तैलादिरहितस्नानात्परुष कठिनस्पर्शं नून-
निश्चयेनागण्डलम्बम् ॥ सुप्सुपेति समासः ॥ अलक चूर्णकुन्तलान् ॥ जा-
तावेकवचनम् ॥ अधरकिसलय क्लेशयति क्लिश्नातीति वा तेन तथोक्तेन । उ-
द्वेगेनेत्यर्थः ॥ क्लिश्यतेर्ण्यन्तात्क्लिश्नातेरण्यन्ताद्वा ताच्छील्ये णिनिः ॥ निःश्वा-
सेन विक्षिपन्ती चालयन्ती तथा स्वप्नजोऽपि स्वप्नावस्थाजन्मोऽपि । साक्षात्संभो-
गासम्भवादिति भावः । मत्संभोगः कथं केन प्रकारेणोपनमेदागच्छेत् । इ-

which, out of previous friendship, turns towards the moon's rays cold
as nectar, (and) entering through the apertures of the lattices, and
immediately turns away, (and so) resembling the *Sthala-Kamaln*;
(plant) on a cloudy day, when it is neither open nor shut

30 Throwing aside with a sigh afflicting (by its heat) her shoot-
like lip, the hair, rough owing to their being merely washed and
actually hanging down (loosely) over her cheeks, and longing for
sleep, opportunity for which is prevented by the gushing forth of tears,
thinking how enjoyment with me, even in a dream could be had

30. M. विश्वासेन for निश्वासेन G1. G2. R. N. M. K1.
K2. आगण्डलम्बि for आगण्डलम्बम्. P W. R. G1. G2. K1.
K2. N. M. मत्संभोगः for मत्संभोगः. C1. P. C2. M. B. कथमु-
पनयेत्, R. G1. G2. K1. M. N. K2. सुखमुपनयेत्, M. कथमपि न-
वेत्, W. M. क्षणमपि भवेत्. for कथमुपनमेत्. P. C1. C2. B.
G1. G2. K1. K2. R. N. M. उपनयेत् for उपनमेत्. M. स्वप्नगोष्ठी-
विनिद्रा for स्वप्नजोऽपीति निद्रां M. रुद्धाश्रुवृत्त्या for रुद्धावकाशम्.

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम् ।

स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं
गण्डाभोगात्कठिनाविषमामेकवेणीं करेण ॥ ३१ ॥

त्याशयेनेति शेषः ॥ इतिनैवोक्तार्थत्वादप्रयोगपौनरुक्त्यादित्याशकानिरासः ।
प्रार्थनाया लिङ् ॥ नयनसलिलोत्पीडेनाश्रुप्रवृत्त्या रुद्धावकाशामाक्रान्तस्थाना
म् । दुर्लभामित्यर्थः । निद्रामाकाङ्क्षन्तीम् । ज्ञेहातुरत्वादिति भावः ॥ अत्राश्रु
विसर्जनेन लज्जात्यागो व्यज्यते ॥

३१ आद्य इति ॥ आद्ये विरहदिवसे दाम मालां हित्वा त्यक्त्वा या
शिखा बद्धा ग्रथिता शापस्यान्ते विगलितशुचा वीतशोकेन मयोद्वेष्टनीया मो-
चनीयाम् स्पर्शक्लिष्टां स्पर्शे सति मूलकेशेषु सव्यथामित्यर्थः । कठिना च
सा विषमा निम्नोन्नता च ताम् ॥ खञ्जकुञ्जादिवदन्यतरस्य प्राधान्यविवक्ष
या “ विशेषण विशिष्येण बहुलम् ” इति समासः ॥ एकवेणीमेकीभतवेणी
म् ॥ “ पूर्वकाल—” इत्यादिना तत्पुरुषः ॥ तथाभूतां ता शिखाम् । अयमितां
अकर्तितोषान्ता नखा यस्य तेन करेण गण्डाभोगात्कपोलविस्तारादसकृन्मुहु-
र्मुहुः सारयन्तीमपसारयन्तीम् । “ तां पश्य ” इति पूर्वेण सबन्धः । असकृ-
त्सारणाच्चित्तविभ्रमदशा सूचिता ॥

31 Pushing aside often and often from the region of her cheeks,
with her hand with nails unpaired, that single-braided, hard and rough
knot of hair painful to the touch, which was tied up on the first
day of separation after the garland being laid aside, and which is to be
untwisted by me freed from sorrow at the termination of (the period
of) curse

31 W. M. G1. या, G2. K1. K2. R. N. M. सा
for ताम्. K1. W. R. G1. G2. M. N. मयोद्वेष्टनीया, M K2.
मयोन्मोचनीया for मयोद्वेष्टनीयाम्. M. G1. अपमित for अयमित.
G1. G2. K1. R. N. M. सारयन्ती for सारयन्तीं M. गण्डाभोगात्
for गण्डाभोगात्. K2. M. कलुषविषमा for कठिनविषमा. M. G2.
विषमात् for विषमाम्.

सा सन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती

शय्योत्सङ्गे निहितमसकृदुःखदुःखेन गात्रम् ।

त्वामप्यस्त्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं

प्रायः सर्वो भवति करुणा वृत्तिरार्द्रान्तरात्मा॥३२॥

३२ सेति ॥ अबला दुर्बला सन्यस्ताभरण कृशत्वात्परित्यक्ताभरणमस-
कृदनेकशो दुःखदुःखेन दुःखप्रकारेण ॥ “प्रकारे गुणवचनस्य” इति द्विर्भा-
वः ॥ शय्यात्सङ्गे निहित पेशल मृदुल गात्र शरीर धारयन्ती वहन्ती ॥ अने-
नात्यन्ताशक्त्या मूर्च्छावस्था सूच्यते ॥ सा त्वत्सखी त्वामपि नवजलमय न-
वाम्बुरुपमस्र बाष्पमवश्य सर्वथा मोचयिष्यति ॥ “द्विकर्मसु पचादीनामु-
प ख्यानम्” इति मुचेः पचादित्वाद्विकर्मकत्वम् ॥ तथा हि । प्रायः प्राये-
णार्द्रान्तरात्मा मृदुहृदयः । मेघस्तु द्रवान्तःशरीरः । सर्वैः करुणा करुणामयी
वृत्तिरन्तःकरणवृत्तिर्यस्य स करुणावृत्तिर्भवति । अस्मिन्नवसरे सर्वथा त्वया शीघ्र
गन्तव्यमनन्तरदशापरिहारायेति सदर्भाभिप्रायः ॥ ननु किमिदमादिमा चक्षुः-
प्रीतिमुपेक्ष्यावस्थान्तराप्येव तत्रभवान्कविरादृतवाच । उच्यते—“सभोगो
विप्रलम्भश्च द्विधा शृङ्गार उच्यते । सयुक्तयोस्तु सभोगो विप्रलम्भो वियु-
क्तयोः ॥ पूर्वानुरागमनाख्यप्रवासकरुणात्मना । विप्रलम्भश्चतुर्धात्र प्रवासस्तत्र
च त्रिधा ॥ कायतः सभ्रमाच्छापादस्मिन्काव्ये तु शापजः । प्रागसंगतधैर्य-
नोः सति पूर्वानुरज्जने ॥ चक्षुःप्रीत्यादयोऽवस्था दश स्युस्तत्क्रमा यथा ॥
दृष्टमन सङ्गसकल्पा जागरः कृशता रतिः । ह्रीत्यागोन्मादमूर्च्छान्ता इत्यनङ्ग-
दशा दश ॥ पूर्वसंगतयोरेव प्रवास इति कारणात् । न तत्र पूर्ववच्चक्षुःप्रीतिरुत्प-
त्तिमर्हति ॥ हृत्सङ्गस्य तु सिद्धस्याप्यविच्छेदोऽत्र वर्ण्यते । अन्याश्च पूर्ववद्वाच्या-
इति तावद्वच्यवस्थितिः ॥ वैयर्थ्यादादिमा हित्वा वैरस्यादन्तिमा तथा । हृत्सङ्गा-
दिरिहाचष्ट कविरष्टाविति स्थितिः ॥ मत्सादृश्यं लिखन्तीति पद्येऽस्मिन्प्रतिपा-
दिता । चक्षुःप्रीतिरिति प्रोक्त निरुत्तरकृताननम् ॥ चक्षुःप्रीतिर्भवेच्चित्रेष्वदृष्टचर-
दर्शनात् । यथा मालविकारूपमग्निमित्रस्य पश्यतः ॥ प्रोषिताना च भर्तृणा क

32 That woman bearing a body delicate, void of ornaments, and placed again and again with intense distress in the middle of the bed, will assuredly cause even thee to drop a tear of fresh water, for, every tender-hearted person is as a rule of a compassionate disposition

32. P. M. पेलवं, W. K1. N M कोमल for पेशल. N. W. R. M. अश्रु, G1. G2. K1. K2. M. अश्रु for अस्त. W, M. जललव°, M. K1. जलकण° for नवजल°,

जाने सख्यास्तव मयि मनः संभृतस्नेहमस्मा-

दित्थंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि ।

वाचालं मां न खलु सुभगंमन्यभावः करोति

प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद्भातरुक्तं मया यत् ॥३३॥

दृष्टादृष्टपूर्वता अथ तत्रापि सदेहे स्वकलत्राणि पृच्छतु ॥ किं भर्तृप्रत्यभिज्ञा
स्यात्किं वैदेशिकभावना । प्रवासादागते स्वस्मिन्नित्यल कलहैर्वृथा ” इति ॥
नन्वीदृशीं दशमापन्नेति कथं त्वया निश्चितमत आह—

३३. जान इति ॥ हे मेघ । तव सख्या मनो मयि संभृतस्नेहं सचिता-
नुराग जाने । अस्मात्स्नेहज्ञानकारणात्प्रथमविरहे । प्रथमग्रहण दुःखातिशययो-
तनार्थः । तां त्वत्सखीमित्यभूता पूर्वोक्तावस्थामापन्नामह तर्कयामि ॥ ननु
सुभगमानिनामेष स्वभावो यदात्मनि स्त्रीणामनुरागप्रकटनं तत्राह—वाचाल-
मिति ॥ सुभगमात्मानं मन्यत इति सुभगमन्यः ॥ “ आत्ममाने खश्च ” इति
खश्चप्रत्ययः । “ अरुद्विषद्—” इत्यादिना मुमागमः ॥ तस्य भावः सुभगमन्य-
भावः । सुभगमानित्वं मां वाचालं बहुभाषिणं न करोति खलु । सौन्दर्याभिमा-
नान्न प्रलपामीत्यर्थः ॥ “ स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक् ”
इत्यमरः ॥ “ आलजाटचौ बहुभाषिणि ” इत्यालच्छप्रत्ययः ॥ किंतु हे भ्रातः ।
मयोक्तं यत् “ आधिक्षामाम् ” इत्यादि तन्निखिलं सर्वमचिराच्छीघ्रमेव ते
तव प्रत्यक्षम् । भविष्यतीति शेषः ॥

33. I know that thy friend's heart is full of affection for me, I
therefore conclude her to have so become during this separation for the
first time. It is not a high opinion of my amiability that makes (so)
boastful, all that I have said will ere long be before thine eyes, O
brother.

३३. G1. G2. M. सुभगं मन्यमानः, M. G1. सुभगं मन्युभावं,
M. G2. सुभगं मत्प्रभावः for सुभगं मन्यभावः. M. G2. त्वत्सखी
for तामह. M. तव, M. यत् for ते. M. ते, M. तत् for यत्. B.
G1. M. G2. सकल for निखिलं.

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं

प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ।

त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या

मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥ ३४ ॥

वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-

र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं स्याजितो दैवगत्या ।

संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां

यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥ ३५ ॥

३४. रुद्धेति ॥ अलकै रुद्धा अपाङ्गयोः प्रसरा यस्य तत्तथोक्त । अञ्जनेन स्नेहः स्नेह्य तेन शून्यम् । अपिच किंच मधुनो मद्यस्य प्रत्यादेशान्निराकरणात् । परित्यागादित्यर्थः ॥ “प्रत्यादेशो निराकृतिः” इत्यमरः ॥ विस्मृतो भ्रूविलासो भ्रूमङ्गो येन तत् । नयनस्य रुद्धापाङ्गप्रसरत्वादिक विरहसमुत्पन्नमिति भावः । त्वय्यासन्ने सति । स्वकुशलवार्तांशसिनीति शेषः । उपर्यूर्ध्वभागे स्पन्दते स्फुरतीत्युपरिस्पन्दि । तथा च निमित्तानिदाने—“स्पन्दान्मूर्ध्नि च्छत्रलाभ ललाटे पट्टमशुकम् । इष्टप्राप्ति दृशोरूर्ध्वमपाङ्गे हानिमादिशेत्” इति ॥ मृगाक्ष्या-स्त्वत्सख्या नयनम् । वाममिति शेषः । “वामभागस्तु नारीणा पुसा श्रेष्ठस्तु दक्षिणः । दाने देवादिपूजाया स्पन्देऽलकरणेऽपि च” इति स्त्रीणां वामभाग-प्राशस्त्यात् ॥ मीनक्षोभान्मीनचलनाच्चलस्य कुवलयस्य श्रियाः शोभायास्तुला सादृश्यमेष्यतीति शङ्के तर्क्याभि ॥ “तुल्यार्थैरतलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्या-म्”—इत्यत्र सदृशपर्यायस्य तुलाशब्दस्य प्रतिषेधादत्र च सादृश्यवाचित्वा-त्तद्योगेऽपि तृतीया ॥

३५. वाम इति ॥ मदीयैः कररुहपदैर्नखपदैः ॥ “पुनर्भवः कररुहो नखो-

34 I think that the eye of the deer-eyed one, with the movements of its outer-corners obstructed by the hair, devoid of the moisture of collyrium, forgetful of the sportings of the eyebrows, owing to the rejection of wine and throbbing in its upper part at thy approach, will bear comparison to the beauty of a lotus trembling on account of the motion of fish

35 And her left thigh, abandoned by the marks of my nails, made

34. M. K1. अपरि° for उपरि°. B. G1. M. G2. °स्पन्दि for °स्पन्दि. W. G1. M. G2. °क्षोभाकुल° for °क्षोभाचल°.

35. K2. M. G2. वा for च. W. M. G1. चिरविरचितं, M. नवपरिचितं. for चिरपरिचित. M. G2. °सवाहनस्य for °सवाह. नानाम्. W. M. K2. कनक°, M. सरल° for सरस°. P. M. G2-गर्भगौरः for °स्तम्भगौरः.

तस्मिन्काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-
दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व ।

मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथचि-

त्सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥ ३६ ॥

ऽस्त्री नखरोऽस्त्रियाम् ” इत्यमरः ॥ मुच्यमानः परिहीयमाणः । नखाङ्गरहित इत्यर्थः । ऊर्वोर्नखपदास्पदत्वं तु रतिरहस्ये—“कण्ठकुक्षिकुचपार्श्वभुजोरःश्रो-
णिसन्निधौ नखास्पदमाहुः ” इति ॥ चिरपरिचित चिराभ्यस्त मुक्ताजाल मौ-
क्तिकसरमय कटिभूषण दैवगत्या दैववशेन त्याजितः । सप्रति नखपदोष्माभा-
वेन शीतोपचारस्य तस्य वैयर्थ्यादिति भावः ॥ त्यजतेर्ष्यन्तात्कर्मणि क्तः ।
“ द्विकर्मसु पचादीनां चोपसख्यानमिष्यते ” इति पचादित्वाद्विकर्मकत्वम् ॥
सर्भोगान्ते मम हस्तसवाहनानां हस्तेन मर्दनानाम् ॥ “सवाहन मर्दनं स्यात्”
इत्यमरः ॥ समुचितो योग्य ॥ सरसो द्रवभाव परिपक्वो न शुष्कश्च विवक्षि-
तः । तत्रैव पाण्डिमसभवात् । स चासौ कदलीस्तम्भश्च स इव गौरः पाण्डु-
र ॥ “ गौरः करीरे सिद्धार्थे शुक्ले पतितेऽरुणेऽपि च ” इति मालतीमालायाम् ॥
अस्याः प्रियाया वाम ऊरुश्चलत्वं स्पन्दनं यास्यति प्राप्स्यति ॥ “ ऊरो' स्पन्दा-
दिति विद्यादूर्वोः प्राप्तिं सुवाससः ” इति निमित्तनिदाने ॥

३६. तस्मिन्निति ॥ ई जलद । तस्मिन्काले त्वदुपसर्पणकाले सामत्प्रियालब्ध
निद्रासुखं यया तादृशी स्याद्यादि स्याच्चेत् । एना निद्राणामन्वास्य । पश्चादासित्वे-
त्यर्थः ॥ उपसर्गवशात्सकर्मकत्वम् । स्तनितविमुखो गर्जितपराङ्मुखो नि शब्दः
सत् । अन्यथा निद्राभङ्गः स्यादिति भावः । याममात्रं प्रहरमात्रम् ॥ “ द्वौ
यामप्रहरौ समौ ” इत्यमरः ॥ सहस्व प्रतीक्षस्व ॥ प्रार्थनाया लोट् ॥ शक्त-
योरेकवारसुरतस्य यामावधिकत्वात्स्वप्नेऽपि तथा भविष्यमित्यभिप्रायः । तथा

by the force of fate, to give up the long-worn pearl-string, accus-
tomed to be shampooed by my hands after enjoyment and fair as the
juicy stem of a plantain tree, will have palpitations in it

36 If at that time (i. e. the time of thy approach), O cloud, she
should be enjoying sleep, wait for three hours by sitting near her
without making a noise, (for) when she has with difficulty found
me her husband in a dream, let not her close embrace be one with the
knot of her creeper-like arms dropping suddenly from the neck

36 W. G1. G2. R. N. M. K1. K2. तन्नासीनः, M.
अन्वासीनः for अन्वास्यैनाम्. W. M. सह्याः, M. क्षमस्व for सहस्व,
P. M. G2. जने for मयि.

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन

प्रत्याश्वस्तां समभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम् ।

विद्युद्भर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे

वक्तु धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ॥ ३७ ॥

च रतिसर्वस्वे—“ एकवारावधिर्यामो रतस्य परमो मतः । चण्डशक्तिमतोर्यु-
नारुद्धटक्रमवर्तिनो. ” इति ॥ यामसहनस्य प्रयोजनमाह—मा भूदिति ॥ अस्याः
प्रियाया प्रणयिनि प्रेयसि मयि कथंचित्कृच्छ्रेण स्वप्रलब्धे सति गाढोपगढ
गाढालिङ्गनम् ॥ नपुसके भावे क्त. ॥ सद्यस्तत्क्षण कण्ठाच्चयुत. सस्तां भुजलत-
योर्ग्रन्थिर्वन्धो यस्य तन्मा भून्मास्तु । कथंचिल्लब्धस्यालिङ्गनस्य विधातो मा
भूदित्यर्थः । न चात्र निद्रोक्तिः “ तामुन्निद्राम् ” इति पूर्वोक्तेन निद्राच्छेदेन
विरुध्यते पुनः सप्तम्याद्यवस्थासु पाक्षिकनिद्रासमवाय ॥ तथा च रसरत्नाकरे-
—“ अशक्ती रांदन निद्रा निर्लज्जानर्थवाग्रमः ॥ सप्तमादिषु जायन्ते दशा-
भेदेषु वासुके ” इति ॥

३७. तामिति ॥ ता प्रियां स्वस्य जलकणिकाभिर्जलबिन्दुभिः शीतलेना-
निलेनोत्थाप्य प्रबोध्य । एतेन तस्याः प्रभुत्वाद्भयजनानिलसमाधिव्यज्यते । य-
थाह भोजराजः—“ मृदुभिर्मर्दनैः पादे शीतलैर्व्यजनैः स्तनौ । श्रुतौ च मधुरै-
र्गतैर्निद्रातो बोधयेत्प्रभुम् ” इति ॥ अभिनवैर्नूतनैर्मालतीनां जालकैः सम
जातीकुड्मलैः सह ॥ “ सुमना मालती जातिः ” इति । “ साकं सत्रा समसह ”
इति । “ क्षारकां जालकं क्लीबे कलिका कोरकं पुमांश्च ” इति चामरः ॥
प्रत्याश्वस्ता सुस्थिताम् । शिशिरानिलसंपर्कात्पुनरुज्जीवितामित्यर्थः ॥ श्वसेः

37 Having roused that proud one by means of a breeze cooled by drops of thy water, thou with (thy) lightning hidden (in thee) and becoming steady, shouldst begin to address her refreshed along with the fresh buds of the *Malati* (creepers) and with her eyes rivetted on the window occupied by thee, with words of thunder

37. P. M. प्रोत्थाप्यैना for तामुत्थाप्य M. सजल° for स्वजल°. R. M. प्रत्यश्वस्ता for प्रत्याश्वस्ता. K2 M. मालतीनां रजोभिः for जालकैर्मालतीना. P. विद्युद्भर्भे स्तिमितनयनां, W. M. विद्युत्कपस्तिमितन-यना, M. विद्युन्नेत्रस्तिमितनयना, G2. M. K1. K2. विद्युद्भर्भे स्तिमि-तनयना, M. विद्युद्भर्भे स्तनितनयनां, M. विद्युद्भर्भो निहितनयना for विद्युद्भर्भः स्तिमितनयना, P. M. धीरस्तनितवचनः, G1. W. G2. M. K1. K2. N. R. धीरस्तनितवचनैः, M. धीर ध्वनितवचनैः for धीरः स्तनितवचनैः.

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं

तत्संदेशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम् ॥

यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां

मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥३८॥

कर्तरि क्तः । “ आदितश्च ” इति चकारादिट्प्रतिषेधः ॥ एतेनास्याः कुसुमसौ-
कुमार्यं गम्यते ॥ स्वत्सनाथे त्वत्साहिते ॥ “सनाथ प्रभुमित्याहुः सहिते चित्तता-
पिनि ” इति शब्दार्णवे ॥ भवाक्षे स्तिमितनयनां कोऽसाविति विस्मयान्निश्चलने-
त्रां मानिनीं मनस्विनीम् । अनौचित्यासहिष्णुमित्यर्थः । विद्युद्गर्भोऽन्तःस्था य-
स्य स विद्युद्गर्भः । अन्तर्लीनविद्युत्क इत्यर्थः ॥ “ गर्भोऽपवरकेऽन्तःस्थे गर्भोऽग्रा कु-
क्षिगेऽर्भके ” इति शब्दार्णवे । दृष्टिप्रतिवातेन वक्तुर्मुखावलोकनप्रातिबन्धकत्वा-
न्न द्योतितव्यमिति भावः । धीरो दृढः सत् । अन्यथाशीलत्वादिनैतदनाश्वास-
नप्रसगादिति भावः । स्तनितवचनैः स्तनितान्येव वचनानि तैर्वक्तु प्रक्रमेथा उ-
पक्रमस्व ॥ विध्यर्थे लिट् ॥ “ प्रोपाभ्यां समर्थोभ्याम् ” इत्यात्मनेपदम् ॥

सप्रति दूतस्य श्रोतृजनाभिमुखीकरणचातुरीमुपदिशति—

३८. भर्तुरिति ॥ विधवा भर्तृभर्तृका न भवतीत्यविधवे सभर्तृके । अनेन
भर्तृजीवनसूचनादनिष्टागमशङ्कां निरस्यति । मां भर्तुस्तव पत्न्युः प्रिय मित्र प्रिय-
सुहृदम् । तत्रापि हृदयनिहितैर्मनसि स्थापितैस्तत्संदेशैस्तस्य भर्तुः संदेशैस्त्व-
त्समीपमागतम् । भर्तृसंदेशकथनार्थमागतमित्यर्थः । अम्बुवाह मेघ विद्धि जा-
नीहि ॥ न केवलमह वार्ताहरः किंतु घटकोऽपीत्याशयेनाह ॥ योऽम्बुवाहो
मेघः । अबलानां स्त्रीणां वेणयस्तासां मोक्षे मोचन उत्सुकानि पथि श्राम्यतां
श्रान्तिमापन्नानां प्रोषितानां प्रवासिनाम् । पान्थानामित्यर्थः । वृन्दानि सवान्
मन्द्रेर्गन्धर्वैरित एवस्निग्धैर्धुरैर्ध्वनिभिर्गोर्जितैः । करणैः । त्वरयति । पान्थोप-
कारिणो मे किमु वक्तव्यं सुहृदुपकारित्वमिति भावः ॥

भर्तृसख्यादिज्ञापनस्य फलमाह—

38 Oh thou, whose husband is living, know me (to be) thy hus-
band's dear friend come to thee with his messages stored up in my
mind,—a cloud which, by its deep and pleasant thunders urges, on
the way, the crowds of wearied travellers, eager to loosen their wives,
braids of hair

38. P. M. अभिदवे for अविधवे. W. M. तत्सदेशान्मनासि
निहितात्, M. त्वत्सदेशान्मनसि निहितात्, M. तत्सदेशाद्हृदयनिहितात्.
P. G2. K2 R. N. M. G1. तत्सदेशैर्मनसि निहितै for तत्सदेशै-
र्हृदयनिहितैः. M. सान्द्रं, M. मन्त्रं for मन्द्रं M. मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिः
for मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिः.

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
 त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैव ।
 श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां
 कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः संगमात्किंचिदूनः ॥३९॥

३९. इतीति ॥ इत्येवमाख्याते सति पवनतनयं हनूमन्तं मैथिलीव सीतेव सा मत्प्रिया । उन्मुख्युत्कण्ठपौत्सुक्येनोच्छ्वसितहृदया विकसितचित्ता सती त्वा वीक्ष्य संभाव्य सत्कृत्य च । अस्माद्भर्तृमैत्रीज्ञानात्परं सर्वं श्रोतव्यम् । अवहिताममत्ता सती श्रोष्यत्येव ॥ अत्रसीताहनूमदुपमानादस्याः पातिव्रत्यं मेघस्य दूतगुणसपतिश्च व्यङ्ग्यते । तद्रुणास्तु रसाकरे—“ब्रह्मचारी बली धीरो मायावी मानवर्जितः । धीमानुदारो निःशङ्को वक्ता दूतः स्त्रियां भवेत् ” इति ॥ ननु वार्तामात्रश्रवणादस्याः को लाभ इत्याशङ्क्यार्थान्तरं न्यस्यति । हे सौम्य साधो । सीमन्तिनीनां वधूनाम् ॥ “ नारी सीमन्तिनी वधूः ” इत्यमरः ॥ सुहृदा सुहन्मुखेनोपगतः प्राप्तः सन् । सुहृद्वद विप्रलम्भशङ्कानिवारणार्थम् । कान्तस्योदन्तो वार्ता कान्तोदन्तः ॥ “ वार्ता प्रवृत्तिवृत्तान्त उदन्तः स्यात् ” इत्यमरः ॥ संगमात्कान्तसपर्कात्किंचिदून ईषदूनस्तद्वदेवानन्दकारीत्यर्थः ॥

सप्रति संदिशति—

39 When so much has been said, she, with her face uplifted and her heart thrilled by eagerness will look at and honour thee, as *Maithele* (Sita) did the son of wind (Hanumân), and after this will of course listen to thee attentively, (for) to women, O gentle one, news about (their) husbands received from friends, falls very little short of an actual meeting.

39. M. G2. °तनये for °तनयम्. W. G1. G2. K¹. K2 N. M. संभाव्य चैव for संभाव्य चैव. P. परमवहित K2. M. परमपि हितं for परमवहिता. P. कान्तोपान्तात्सुहृदुपगतः for कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः. M. °उपगतः, G1. G2. K1. N. M. K2. °उपहतः for उपगतः.

तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं

ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः ।

अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः

पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ ४० ॥

४०. हे आयुष्मन् ॥ प्रशसाया मनुष्य ॥ परोपकारश्चाध्यजीवितेत्यर्थः । मम वचनं प्रार्थनावचनं तस्माच्चात्मनः स्वस्योपकर्तुं च । परोपकारेणात्मानं कृतार्थयितुमित्यर्थः ॥ उपकारक्रिया प्रति कर्मत्वेऽपि तस्यानुकरोतीत्यादिवत्सम्बन्धमात्रविवक्षायामात्मन इति षष्ठी न विरुध्यते । यथाह भारवि—“ सा लक्ष्मीरुपकृते यया परेषाम् ” इति । तथा श्रीहर्षश्च—“ साधनामुपकर्तुं लक्ष्मीं द्रष्टुं विहायसा गन्तुम् । न कुतूहलिकस्य मनश्चरितं च महात्मना श्रोतुम् ” इति । तथा च “ क्वचित्क्वचिद्वितीयादर्शनात्सर्वस्य तथा ” इति नाथवचनमनाथवचनमेव ॥ ता प्रियामेव ब्रूया । किमित्याह । हे अबले । तव सहचरो भर्ता रामगिरेश्चित्रकूटस्याश्रमेषु तिष्ठतीति रामगिर्याश्रमस्थः सन्नव्यापन्नः । न मृत इत्यर्थः । वियुक्तो वियोग प्राप्नो दुःखी सस्त्वां कुशलं पृच्छति ॥ दुःख्यदित्वात्पृच्छतेर्द्विकर्मकत्वम् ॥ तथाहि । सुलभविपदामयत्नासिद्धविपत्तीना प्राणिनामेतदेव कुशलमेव पूर्वाभाष्यमेतदेव प्रथममवश्यं प्रष्टव्यम् ॥ “ कृत्याश्च ” इत्यावश्यकार्थे प्यत्प्रत्ययः ॥

40 O long-lived one, in accordance with my request, and in order also to benefit thyself, thou shouldst address her as follow— “ Thy consort, O lady, (is) alive and dwelling amongst the hermitages of *Ramagiri*, (and) being separated (from thee) enquires of thee about thy welfare, (for) in the case of creatures (easily subjected to misfortunes this necessarily ought to be the first subject of inquiry

40. K2. M. आयुष्मात्र for आयुष्मन्. G1 G2. K1. M. N. आत्मना for आत्मनः P. R. G1. G2. K1. K2. N. M. ब्रूयादेव, M. ब्रूयादेक, M. ब्रूया ह्येव for ब्रूया एवम्. W. M. वियुक्ता, P. M. नियुक्तः for वियुक्तः. P. M. K2. पूर्वाशास्य सुलभविपदा प्राणिनामेतदेव, W. M. भूतानां हि क्षयिषु करणेष्वायमाश्वास्यमेतत्, M. भूतानां हि सुलभविपदां पूर्वभाष्यमेतत्, M. पूर्व भाष्य सुलभविपदा प्राणिनामेतदेव, M. पूर्वाश्वास्य सुलभविपदा प्राणिनामेतदेव for पूर्वाभाष्य सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव.

अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
 सास्त्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ।
 उष्णोच्छ्वास समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
 संकल्पैस्तैर्विंशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः॥४१॥
 शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्ता-
 त्कर्णं लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ।
 सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य-
 स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह ॥ ४२ ॥

४१. अङ्गेनेति ॥ किं च । दूरवर्ती दूरस्थः । न चागन्तुं शक्यत इत्या-
 ह । वैरिणा विरोधिना विधिना दैवेन रुद्धमार्गः प्रतिबद्धवर्ती स ते सहचर ।
 तनुना कृशेन गाढतप्तेनात्यन्तसंतप्तेन सास्त्रेण साश्रुणा । उत्कण्ठा वेदनास्य ज-
 तोत्कण्ठित तेनोत्कण्ठितेन ॥ “ तदस्य सजातम्—” इत्यादिनेतत्प्रत्ययः । उ-
 त्कण्ठतेर्वा कर्तरि क्तः ॥ समधिकतर अतिप्रबल उच्छ्वासितीति समधिकतरोच्छ्वा-
 सि तेन । दीर्घानि श्वासिनेत्यर्थः ॥ ताच्छील्ये णिनिः ॥ अङ्गेन स्वशरीरेण प्र-
 तनु कृश तप्त वियोगदुःखेन दुष्प्रमश्रुद्रुतमश्रुक्लिन्नम् ॥ “ अश्रु नेत्राभ्यां । रोदनं
 चास्त्रमसु च ” इत्यमरः ॥ अविरतोत्कण्ठमविच्छिन्नवेदनमुष्णोच्छ्वासं तावन्नि-
 श्वासम् ॥ “ तिग्म तीव्र खर तीक्ष्ण चण्डमुष्ण पटु स्मृतम् ” इति हलायुध
 ॥ अङ्गं त्वदीयं शरीरं तैः स्वसवद्यैः सकल्पैर्मनोरथैर्विंशति । एकीभवतीत्यर्थः ॥
 अत्र समानुरागित्वद्यातनाय नायकं नायिकायाः स्वसमानावस्थास्वमुक्तम् ॥
 ४२. शब्दाख्येयमिति ॥ हे अबले । यस्ते प्रियः सखीनां पुरस्तादग्र

41 Living at a distance, and having his way obstructed by adverse
 fate, with his body thin, greatly scorched, full of tears, anxious and
 sighing very heavily, he enters (i e unites himself to) thy body,
 very thin, scorched (by pain), wet with tears, unceasingly anxious,
 and sighing hotly, with those (various) desires (i e which are
 known to himself alone)

42 He, who from a desire to touch (kiss) thy face, used indeed

41. P M तनु च, W. M सुतनु for प्रतनु. P. N M. K2 G1.
 K1 अस्रद्रव, R. M. G2 अश्रुद्रव, C1. C2. अस्रद्रुतं for अश्रुद्रुत.
 W. M. दीर्घोच्छ्वासं for उष्णोच्छ्वास. W. M. ते for तैः.

42. M. तत् for ते. M. तव for यः. M. अगात् for अभूत्.
 M. लोचनानां for लोचनाभ्या. P. M. G1 अदृष्टः, K2. M.
 अगम्यः for अदृश्यः. M. “विरहित” for “विरचित”. M. समुखेन
 for मन्मुखेन.

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।

उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासा-

न्हन्तैकस्मिन्कचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति॥४३॥

आमनस्पर्शे त्वन्मुखसपर्के लोभाद्वाध्न्यात् । अथरपानलोभादित्यर्थः । शब्दा-
ख्येयं शब्देन रवेणाख्येयमुच्चैर्वाच्यमपि यत् । तद्वचनमपीति शेषः । कर्णे कथ-
यितुं लोलं लालसोऽभृत्कल ॥ “ लोलुपो लोलुपो लोलो लालसो लम्पटोऽ-
पि च ” इति यादवः ॥ श्रवणविषय कर्णपथमतिक्रान्तः । तथा लोचनाभ्या-
मदृश्यः । अतिदूरत्वाद्दृष्टुं श्रोतुं च न शक्य इति भावः । स ते प्रियः । त्वामु-
त्कण्ठया विरचितानि पदानि सुप्रिङ्गन्तशब्दा वाक्यानि वा यस्य तत्तथोक्तम् ॥
“ पदं शब्दं च वाक्ये च ” इति विश्वः ॥ इदं वक्ष्यमाणं “ श्यामास्वङ्गम् ”
इत्यादिकं नन्मुखेनाह । मद्व्यवधानेन स एव ब्रूत इत्यर्थः ॥

सदृशप्रतिकृतिस्वप्नदर्शनतदङ्गस्पृष्टस्पर्शाख्यानि चत्वारि विग्रहितां विनोद-
स्थानानि । तथा चोक्तं पताकायाम्— “ वियोगे चायोगे प्रियजनसदृशानुभ-
वनं तताश्चित्रं कर्म स्वप्नसमये दर्शनमपि । तदङ्गस्पृष्टानामुपनतवतीं स्पर्शनम-
पि प्रतीकारोऽनङ्गव्याधितमनसां कोऽपि गदितः ” इति ॥ तत्र सदृशवस्तुदर्शन-
माह—

४३. श्यामास्विति ॥ श्यामासु प्रियङ्गुलतासु ॥ “ श्यामा तु महिलाङ्ग-
या । लता गोवन्दनी गुन्द्रा प्रियङ्गुः फलिनी फली ” इत्यमरः ॥ अङ्गं शरीरमु-
त्पश्यामि । सौकुमार्यादिमाम्यादङ्गमिति तर्कयामीत्यर्थः । तथा चकितहरिणी-
नां प्रेक्षणे ते दृष्टिपातं शशिनि चन्द्रे वक्त्रच्छाया मुखकान्तिम् । तथा शिखिनां

to become solicitous to whisper, in thy ear in the presence of thy friends (something) which might have been as well uttered in words (i e aloud), being (now) out of the reach of thy ear and invisible to thy eyes, addresses to thee, by my mouth this (message), the words of which have been arranged (dictated) by sorrow

43 In the Priyangu creepers I see (in my imagination) thy body, in the glance, of the timid deer, thy glance in the moon the beauty of thy face, in the tufts of the peacocks' feathers thy hair, in the

43. P. K1. R. W. G1. G2. N. M. °प्रेक्षिते for °प्रेक्षणे. W. G1. G2. K1. K2. R. N. M. दृष्टिपातात् for दृष्टिपातं. M. वक्त्र-
च्छाय, W. M. गण्डच्छाय, M. गण्डच्छाया for वक्त्रच्छायां. K1. N. M. भ्रूपताकाः for भ्रूविलासां P. W. G1. K1. K2. R. G2. M. एकस्य for एकस्मिन्. G1. G2. M R. B. K1. K2. भौर for चण्डि.

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।

अस्रस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे

क्रूरस्तस्मिन्नापि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥ ४४ ॥

बाहिणा बर्हभारेषु बर्हसमूहेषु केशाश्च । प्रतनुषु स्वल्पामु नदीना वीचिषु ॥ अत्र वीचीना विशेषणापादाने नानुक्तगुणग्रहदोषः । भ्रूसाम्यनिर्वाहाय महत्त्वदोषनि-
राकरणात्तत्त्वात्तस्यति । तदुक्तं रसरत्नाकरे—“ ध्वन्युत्पादे गुणोत्कृष्टे भावोक्तौ दोषवारणे । विशेषणाद्विशेष्यस्य नास्त्यनुक्तगुणग्रहः ” इति गुणविशेषके गुणग्रहणात् ॥ भ्रूविलासाच्च ॥ “ अपताकाः ” इति पाठे भ्रुवः पताका इवेत्युपमितज्ञमामः ॥ उत्पश्यामीति सर्वत्र स्रव्यते ॥ तथापि नास्ति मनोनिवृत्तिरित्याश्रयेनाह—
हन्तेति ॥ हन्त विषादे ॥ “ हन्त हर्षेऽनुकम्पाया वाक्यारम्भविषादयोः ” इत्यमरः ॥ हे चण्डि कोपने ॥ “ चण्डस्त्वत्यन्तकोपने ” इत्यमरः ॥ यौरादित्वाच्च दीप् ॥ उपमानकथनमात्रेण न कोपितव्यमिति भावः । कचिदपि कस्मिन्नप्येकस्मिन्व-
स्तुनि ते तव सादृश्य नास्ति । अतो न निवृत्तगोमीत्यर्थः । अनेनास्याः सौन्दर्य-
मनुपममिति व्यज्यते ॥

संप्रति प्रतिकृतिदर्शनमाह—

४४. त्वामिति ॥ हे प्रिये । प्रणयेन प्रेमातिशयेन कुपितां कुपितावस्थायुक्तां
त्वाम् । त्वत्प्रतिकृतिमित्यर्थः । धातवो भैरिकादयः ॥ “ धातुर्वातादिशब्दादि-
भैरिकादिष्वजादिषु ” इति यादवः ॥ त एव रागा रज्जकद्रव्याणि ॥ “ चि-
त्तादिरज्जकद्रव्ये लाक्षादौ प्रणयेच्छयोः । सारङ्गादौ च रागः स्यादाख्ये रज्जने
पुमान् ” इति शब्दार्णवं ॥ तैर्धातुरागैः । शिलायां शिलापट्ट आलिख्य नि-
र्मायात्मानं माम् । मत्प्रतिकृतिमित्यर्थः । ते तव । चित्रगताया इत्यर्थः चरण-
पतितं कर्तुं तथा लेखितुं यावदिच्छामि तावदिच्छासमकालं मुहुरुपचितैः प्रवृ-
द्धैरक्षैरश्रुभिः । कर्ताभिः ॥ “ अस्रमश्रुणि शोणिते ” इति विश्वः ॥ मे दृष्टिरालुप्यते ।
आव्रियत इत्यर्थः । ततो दृष्टिप्रतिबन्धनाल्लेखनं प्रतिबध्यत इति भावः । क्रूरो
धातुकः ॥ “ वृशसो धातुकः क्रूरः ” इत्यमरः ॥ कृतान्तो दैवम् ॥ “ कृ-

small ripples of the rivers, the sportings of thy eyebrows, (and yet) alas ! not even in any of these is there, O angry one, a likeness to thee

44. After portraying thee full of love-anger, on a stone with mi-
neral dyes, when I wish to draw myself (lying) prostrate at thy feet,
my sight is obscured by constantly gathering tears. cruel fate does
not brook our union even in that (picture).

44. M. सहति for सहते.

मामाक शमणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-

लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु ।

पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां

मुक्तास्थूलास्तरुक्सिलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥४९॥

तान्तो यमसिद्धान्तदैवाकुशलकर्मसु' 'इत्यमर' ॥ तस्मिन्नापि चित्रेऽपि ॥ नावा-
वयो' ॥ " युष्मदस्मादो' षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वानावौ " इति नावादंश ॥
संगम सहवासं न सहते । संगमलेखनमप्यावयोरसहमान दैवमावयो सङ्ग न
सहते इति किमु वक्तव्यमित्यपिशब्दार्थः ॥

अधुना स्वप्नदर्शनमाह—

४५ मामिति ॥ सुप्तस्य विज्ञान स्वप्नः ॥ " स्वप्न सुप्तस्य विज्ञानम् " इति विश्व ॥ सदृशं सवित् ॥ " दर्शनं समये शास्त्रे दृष्टौ स्वप्नेऽक्षिण सवि-
दि " इति शब्दार्णवे ॥ स्वप्ना इति सदृशनानि स्वप्नज्ञानानि ॥ चतुर्वृक्षादिव-
त्सामान्यविशेषभावेन सहप्रयोगः ॥ तेषु मया कथमपि महता प्रयत्नेन लब्धा-
या गृहीतायाः । दृष्टाया इति यावत् ॥ ते तव निर्दयाश्लेषो मादालिङ्गन स
एव हेतुस्तस्य । निर्दयाश्लेषार्थमित्यर्थः ॥ " षष्ठी हेतुप्रयोगे " इति षष्ठी ॥
आकाशे निविषये प्रणिहितभुज प्रसारितबाहुं मां पश्यन्तीनां स्थलीदेवताना
मुक्ता मौक्तिकानीव स्थूला अश्रुलेशा बाष्पविन्दवस्तरुक्सिलयेषु । अर्नन चेलाञ्च-
लनाश्रुधारणसमाधिर्वन्व्यते । बहुशो न पतन्तीति न किंतु पतन्त्येवेत्यर्थः ॥ निश्च-
ये नञ्द्वयप्रयोगः । तथा चाधिकारसूत्रम्—" स्मृतिनिश्चयसिद्धार्येषु नञ्द्वय-
प्रयोगः " इति । " महात्मगुरुदेवानामश्रुपातः क्षितौ यदि । देशभगो महादु-
ख मरण च भवेद्भूवम् " इति क्षितौ देवताश्रुपातनिषेधदर्शनाद्यक्षय मरणभा-
वसूचनार्थं तरुक्सिलयेषु पतन्तीत्युक्तम् ॥

इदानीं तदङ्गस्पष्टवस्तुदर्शनमाह—

45. Upon the shoots of trees fall in abundance, tear-drops as big as pearls, of the local Deities beholding me throwing out my arms into space, for the sake of closely embracing thee found with great difficulty, by me, in the visions of dreams.

45. M. G. निशि for मया. K1. M. अश्रुपाताः for अश्रुलेशाः.

भिन्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां
 ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।
 आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
 पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥ ४६ ॥
 संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
 सर्वावस्थास्वहरापि कथं मन्दमन्दातप स्यात् ।
 इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभप्रार्थनं मे
 गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वाद्वियोगव्यथाभिः ॥ ४७ ॥

४६. भिन्वति ॥ देवदारुद्रुमाणां किसलयपुटान्पल्लवपुटान्सद्यो भिन्वा । तत्क्षी-
 रस्रुतिसुरभयस्तेषां देवदारुद्रुमाणां क्षीरस्रुतिभिः क्षीरनिष्पन्नैः सुरभयः सुगन्धयः
 । तुषाराद्रिजातत्वे लिङ्गमिदम् । ये वाता दक्षिणेन दक्षिणमार्गेण ॥ तृतीयावि-
 धाने प्रकृत्यादिभ्य उपसख्यानात्तृतीया समेन यातीतिवत् । तत्रापि करणत्वस्य
 प्रतीयमानत्वात् । “कर्तृकरणयोरेव तृतीया” इति भाष्यकारः ॥ प्रवृत्ताश्चलिताः ।
 हे गुणवति सौशील्यसौकुमार्यादिगुणसपन्ने । ते तुषाराद्रिवाताः पूर्वं प्रागेभिर्वा-
 तैस्तवाग स्पृष्ट भवेद्यादि । किलेति सभावितमेतदिति बुद्धेयेत्यर्थः ॥ “वार्ता-
 सभाव्ययोः किल” इत्यमरः ॥ मयालिङ्ग्यन्त आलिङ्ग्यन्ते ॥ अत्र वायूनां
 स्पृश्यत्वेऽप्यमूर्तत्वेनालिङ्गनायोगादालिङ्ग्यन्त इत्यभिधानम् । यक्षस्यान्मत्त-
 त्वात्प्रलपितमित्यदोष इति वदन्निरुक्तकारः स्वयमेवोन्मत्तप्रलापीत्युपेक्षणीयः ॥

४७. संक्षिप्येतेति ॥ दीर्घां यामाः प्रहरा यस्या सा दीर्घयामा । विरहवेदनया

46 Those *Himalyan* breezes, Oh accomplished one, which, suddenly breaking open the folded shoots of the *Devadaru* trees, blow in a southerly direction, rendered fragrant by the flow of their sap, are embraced by me thinking that perhaps they might have already touched thy body

47 “How would the long-watched night be compressed into

46. B M. एतत्° for ये तत्°.

47. M G1. G2. K1. N. R. संक्षिप्यन्ते, M. संक्षिप्येव, M. संक्षिप्यैवम्, K2. M. संक्षिप्येन् for संक्षिप्येत. P. W. K2. G1. R. N. M. G2. K1. क्षणमिव for क्षण इव. B. M. मया for कथं. G1. G2 M. N. K1 K2. दीर्घयामात्रियामाः for दीर्घयामा त्रियामा. K2. M. अहरापि च मे for अहरापि कथं. W. K1, M. G2. गाढोष्माभिः for गाढाष्माभिः, C1. M. तद्वियोग° for तद्वियोग°.

नत्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे

तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम् ।

कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ ४८ ॥

तथा प्रतीयमानैत्यर्थः । त्रियामा रात्रिः ॥ “आद्यन्तयोरध्यामयोर्दिनव्यवहारा-
त्रियामा” इति क्षीरस्वामी ॥ क्षण इव कथं केन प्रकारेण संक्षिप्येत लघूक्रियेत ।
अहरपि सर्वावस्थासु । सर्वकालेष्वित्यर्थः । मन्दमन्दो मन्दप्रकारः ॥ “प्रकारे
गुणवचनस्य” इति द्विरुक्तिः । “कर्मधारयवदुत्तरेषु” इति कर्मधारयवद्भा-
वात्सुपो लुक् ॥ मन्दमन्दात्पमत्यल्पसन्तापं कथं स्यात् । न स्यादेव । हे चटु-
लनयने चञ्चलासि । इत्यमनेन प्रकारेण दुर्लभप्रार्थनमप्राप्यमनोरथं मेमम चेतो
गाढोष्माभिरतितीव्राभिस्त्वद्वियोगव्यथाभिरशरणमनाथ कृतम् ॥

न च मदीयदुर्दशाश्रवणाद्धेतव्यमित्याह—

४८. नत्विति नत्विति एक वाक्यातु शब्दे भेदकः किं तु न भेतव्यमित्यर्थः । अथवा
नन्विति पाठः ॥ नन्वित्यामन्त्रणे ॥ “प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु” इत्यम-
रः ॥ ननु प्रिये बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे तत्कल्याणं सुभगे । त्वत्सौभाग्ये-
नैव स्वैनैव ॥ “प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्” इति तृतीया ॥ अवलम्बे धारयामि ।
यथाकथञ्चिज्जीवामीत्यर्थः । तत्तस्मात्कारणात् । हे कल्याणि सुभगे । त्वत्सौभाग्ये-
नैव जीवामीति भावः ॥ “बह्नादिभ्यश्च” इति ङीष् ॥ त्वमपि नितरामत्यन्तं

(i e. so as to be like) a moment, how would the day also be of a
very reduced heat in all its parts, ” thus my heart, O trembling-eyed
one, full of unattainable desires is rendered helpless by the very
severe pangs of separation from thee.

48. But no (i e. be not afraid) I building hopes (about the
future in my mind) support myself by my own self, therefore thou
also, O fortunate one, shouldst not harbour very great fear (about
me) Whom does happiness invariably attend or misery invariably
befall? (Man's) condition goes up and down with the course of the
circumference of a wheel.

48. C1. C2. W P. G1. M ननु, M. N. G2.. K1. K2.
R. इति for न तु. W. G1. M. आत्मना नावलम्बे for आत्मनैवाव-
लम्बे. C1. C2. W. B. G1. G2. N. M. K1. K2. R. सुतरां
for नितरां. C1. C2. B K1. K2. N, R. W. G1. G2. M.
कस्यान्त्यन्तं for कस्यैकान्तं. W, G1. K2. M. उपगतं for उपनतं.

उत्तरमेषः

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणी

शेषान्मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ।

पश्चादावां विरहगणितं तं तमात्माभिलाषं

निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥ ४९ ॥

कातरत्वं भीरुत्व मा गमः मा गच्छ ॥ “गमेमाङ्गिलुङ्” “न मादयोगे” इत्य-
डागमाभावः ॥ तादृक्सुखिनोरावयोरीदृशि दुःखे कथं न बिभेमोत्थाशङ्क्याह-
कस्येति ॥ कस्य जनस्यैकान्तं नियतं सुखमुपनतं प्राप्तमैकान्ततो नियमेन दुःखं
वोपनतम् । किं तु दशावस्था चक्रस्य रथाङ्गस्य नेमिस्तदन्तः ॥ “चक्रं र-
थाङ्गं तस्यान्ते नेमिः स्त्री स्यात्प्रायः पुमान्” इत्यमरः ॥ तस्याः क्रमणे प-
रिपाठ्या ॥ “क्रमः शक्ती परीपाठ्याम्” इति विश्वः ॥ नीचैरथ उपरि च
गच्छति प्रवर्तते । एव जन्तोः सुखदुःखे पर्यावर्तते इत्यर्थः ॥

न च निरवधिकमेतद्दुःखमित्याह—

४९. शापान्त इति ॥ शार्ङ्गं नाम धनुः पाणो स्थितं यस्य स तस्मिन्शा-
र्ङ्गपाणी विष्णौ ॥ “सप्तमीविशेषणे—” इत्यादिना बहुव्रीहिः । प्रहरणार्थेभ्यः परे नि-
ष्ठासप्तम्यौ भवतः ” इति वक्तव्यात्पाणिशब्दस्योत्तरनिपातः ॥ भुजगः शेष एव
शयनं तस्मादुत्थिते सति मे शापान्तः शापावसानम् । भविष्यतीति शेषः ।
शेषानवशिष्टचतुरो मासान् । मेघदर्शनप्रभृति हरिबोधनादिनान्तमित्यर्थः । द-
शदिवसाधिक्यं त्वत्र न विवक्षितमित्युक्तमेव । लोचने मीलयित्वा निमील्य ग-
मय । धैर्येण प्रतिवाहयेत्यर्थः । पश्चादनन्तरं त्वं चाह चावाम् ॥ “त्यदादीनि
सर्वानित्यम्” इत्येकशेषः ॥ “त्यदादीनां मिथो द्वन्द्वे यत्परं तच्छिष्यते”
इत्यस्मदः शेषः ॥ विरहे गणितमेवमेव करिष्यामीति मनस्यावर्तितम् । तं तम् ॥
विप्साया द्विरुक्तिः ॥ आत्मनोरावयोराभिलाष मनोरथम् । परिणताः शरच्च-
न्द्रिका यासां तासु क्षपासु रात्रिषु ॥ निर्वेक्ष्यावो भोक्ष्यावहे ॥ विशतेर्लुट् ॥
“निर्वेशो भृतिभोगयोः” इत्यमरः ॥ अत्र कौश्चिद् “नभोनभस्ययोरेव व-

49 When the bearer of Shârngâ (Vishnu) rises from his serpent
bed, my curse will have its termination, pass the remaining four
months by closing (thy) eyes (i e with fortitude). After that,
we both will enjoy, during nights having the full autumnal moonlight,
the manifold desires revolved (in mind) during separation

49. P. M. मासानन्यान्, W. M. मासानेतान् for शेषान्मासान्.
P. W. R. G1. G2. M. K1. K2. °गुणितं, M. N. °जनित for
°गणितं. P. M. एवाभिलाष for आत्माभिलाष.

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे

निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वरं विप्रबुद्धा ।

सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे

दृष्टः स्वप्ने कितव रमयन्कामपि त्वं मयेति ॥५०॥

षिक्त्वात्कथमाषाढादिचतुष्टयस्य वार्षिकत्वमुक्तामिति चोदयित्वतुत्रयपक्षाश्रय-
णादविरोधः ” इति पर्यहारि तत्सर्वमसंगतम् । अत्र गतशेषाश्रित्वारो मासा
इत्युक्तं कविना न तु ते वार्षिका इति । तस्मादनुक्तोपालम्भ एव । यच्च ना-
थेनोक्तम् “ कथमाषाढादिचतुष्टयात्पर शरत्कालः ” इति तत्राप्याकार्तिकस-
माप्ते शरत्कालानुवृत्तेः परिणतशरच्चन्द्रिकास्वित्युक्तम् । न तु तदैव शरत्मा-
दुर्भाव उक्त इत्यादिरोध एव ॥

सप्राति तस्या मेघे वञ्चकत्वशङ्कानिरासायातिगूढमभिज्ञानमुपदिशति—

५०. भूय इति ॥ हे अबले । भूयः पुनरप्याह । त्वद्भर्ता मन्मुखेनेति शेषः ।
मेघवचनमेतत् । किमित्यत आह—पुरा पूर्वम् । पुराशब्दश्चिरातीति ॥ “स्या-
त्प्रबन्धे चिरातीति निकटागामिके पुरा ” इत्यमरः ॥ शयने मे कण्ठलग्नापि
त्वम् । गले बद्धस्य कथमपि गमनं न सम्भवेदिति भावः । निद्रां गत्वा किम-
पि । केन वा निमित्तमेत्यर्थः । सस्वरं सशब्दम् । उच्चैरित्यर्थः । रुदती सती
विप्रबुद्धा । आसीरिति शेषः । असकृद्बहुशः पृच्छतः । रोदनहेतुमिति शेषः ।
मे मम । हे कितव । त्वं कामपि रमयन्मया स्वप्ने दृष्ट इति त्वया सान्तर्हासं
समन्दहासं ययातथा कथितं चेति । त्वद्भर्ता भूयश्चाहंति योजना ॥

50) And he says moreover “ once thou, though attached to my neck on the bed, after falling asleep, didst awake crying aloud for some (unknown) reason, and with a suppressed laugh saidst to me, asking (thee for the reason) again and again, as follows —“Thou rogue, I saw thee, in my dream, enjoying some other woman”

50. W. M. चापि, M. K1 K2. चासि, G2. R. M. चाह for चाह P. W. M. त्वमसि for त्वमपि. W. N. R. G1. G2. M. K1. सस्वरं, M. सस्वनं for सस्वरम्. P. पृच्छतोऽसि for पृच्छ-
तश्च. K1. K2. M. कामिनीं कामपि त्वं for कामपि त्वं मयेति.

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी भूः ।
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ ५१ ॥

५१. एतस्मादिति ॥ एतस्मात्पूर्वोक्तात् । अभिज्ञायतेऽनेनन्यभिज्ञान लभ-
ण तस्य दानात्प्रापणान्मा कुशलिन क्षेमवन्त विदित्वा ज्ञात्वा । हे असितनयने ।
कुले जनसमूहे भवात्कौलीनाल्लोकप्रवादात् । एतावता कालेन परामुर्नो
चंदागच्छतीति जनप्रवादादित्यर्थः । “ स्यात्कौलीन लोकवादे युद्धे पश्वहि-
पक्षिणाम् ” इत्यमरः ॥ मयि विषयेऽविश्वासिनी मरणशङ्किनी मा भूर्न भव ॥
भवतेल्लेड् । “ न माडयोगे ” इत्यङागमप्रतिषेधः ॥ न च दीर्घकालविप्रकर्षा-
त्पूर्वस्नेहनिवृत्तिराशङ्क्यत्याह—स्नेहानिति ॥ किमपि । किञ्चिन्निमित्तं न वि-
द्यत इति शेषः । स्नेहान्प्रीतीर्विरहे सत्यन्यान्विप्रकर्षे सति ध्वंसिनो विनश्य-
रानाहुः । तत्तया न भवतीत्यभिप्रायः । किंतु ते स्नेहा अभोगाद्विरहे भोगा-
भावाद्धेतोः ॥ “प्रसज्य प्रतिषेधेऽपि” नञ्समास इष्यते । इष्टे वस्तुनि विषये ।
उपाचितो रसः स्वादो घृणु त उपाचितरसाः सन्त । प्रवृद्धदृष्ट्या इत्यर्थः ॥
“रसां गन्धरासे स्वादे तिकादौ विषरागयोः” इति विश्वः ॥ प्रेमराशीभवन्ति ।
वियोगासहिष्णुत्वमापद्यन्त इत्यर्थः ॥ स्नेहप्रेम्णोरवस्थाभेदाद्धेद । तदुक्तम्—
“ आलोकनाभिलाषौ रागस्नेहौ ततः प्रेमा ॥ रतिशृङ्गारौ योगे वियोगतो
विप्रलम्भश्च ” इति । तदेव स्फुटीकृत रसाक्रे—“ प्रेमा दिदृक्षा रम्येषु
तच्चिन्ता त्वभिलाषकः ॥ रागस्तत्सङ्गबुद्धिः स्यात्स्नेहस्तत्प्रणयक्रिया ॥
तद्वियोगासह प्रेम रतिस्तत्सहवर्तनम् ॥ शृङ्गारस्तत्समः क्रीडा संयोगः सप्रसा
क्रमात् ” इति ॥

इत्थं कुशलं सदिश्य तत्कुशलसदेशानयनमिदानीं याचते—

51 Knowing me to be well from the giving of this token, do not,
O dark-eyed one, be distrustful of me (i e of my existence) from
an evil report, they say, (but) without any ground, that the affecti-
ons die away during separation, but (the fact is that) they with
their ardour intensified towards the desired object through non-attain-
ment, become (i e develop into) a heap of love

51 G1 M. चकित° for असित°. P. M. विरह ह्रासिनस्तेऽप्य-
भोगात्, K2. M. विरहध्वंसिनस्ते ह्यभोग्याः, W. M. विरहव्यापदस्ते
ह्यभोग्याः, M. विरहव्यापिनस्ते त्वभोगाः, M. विरहह्रासिनस्ते त्वभोगाः,
M. N. G2 K1 K2. R. विरहे ध्वंसिनस्ते ह्यभोगात्, M. विरह-
ध्वंसिनस्तेऽप्यभोगाः for विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगात्. W. M. K2.
दृष्ट for इष्टे.

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते

शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः ।

साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि

प्रातःकुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः ॥ ५२ ॥

५२. आश्वास्येति ॥ प्रथमविरहेणोदग्रशोकां तीव्रदुःखा ते सखीमेव पूर्वो-
क्तरीत्याश्वास्योपजीव्य त्रिनयनस्य त्र्यम्बकस्य वृषेण वृषभेणोत्खाता अवदारि-
ताः कूटाः शिखराणि यस्य तस्मात् ॥ “ कूटोऽस्त्री शिखर शृङ्गम् ” इत्यमरः ॥
शैलात्कैलासादाशु निवृत्तः सन्प्रत्यावृत्तः सन्साभिज्ञानं सलक्षणं यथा तथा प्र-
हितं प्रेषितं कुशलं येषु तैस्तस्यास्त्वत्सख्या वचोभिर्ममापि प्रातःकुन्दप्रसवमिव
शिथिलं दुर्बलं जीवितं धारयेथाः स्थापय ॥ प्रार्थनाया लिङ् ॥

संप्रति मेघस्य प्रार्थनाङ्गीकारं प्रभ्रपूर्वकं कल्पयति—

52 After thus consoling thy friend (i. e. my wife) full of intense
grief on account of separation (from me) for the first time, thou,
returning from the mount (*Kailasa*) with its summits dug up by the
bull of the three-eyed God (*Siva*), should support my life also frail
as the morning *Kunda* flower, with her words conveying (tidings
of) her welfare together with a token

52. P. W. M एना for एव. P. M. प्रथमविरहे शोकदष्टा, W.
N. M. K2. प्रथमविरहादुदग्रशोका, M. प्रथमविरहेणार्द्रशोकां for प्रथ-
मविरहोदग्रशोकाम्. W. M. मे, M. स्वा G2 K1. R. M. तां for
ते. P. तस्माददेः, W. M. शैलादस्मात् for शैलादाशु P. M. साभि-
ज्ञान for साभिज्ञानं. P. प्रहितवचनैस्तत्रयुक्तैः, M. प्रहितकुशलैस्त्वद्वचोभिः
M. अभिहितकुशलैस्तद्वचोभिः for प्रहितकुशलैस्तद्वचोभिः. W. M.
त्रिनयनं for त्रिनयनं. M. प्रसविशिल, G2. M. प्रसविशिथिल for
प्रसवशिथिल. P धारयेद for धारयेथाः.

कच्चित्सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि ।

निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः

प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥ ५३ ॥

५३. कच्चिदिति ॥ हे सौम्य साधो । इदं मे बन्धुकृत्यं बन्धुकार्यम् ॥ देवदत्तस्य गुरुकुलमिति वत्प्रयोगः ॥ व्यवसितं कच्चित्करिष्यामीति निश्चितं किम् ॥ “कच्चित्कामप्रवेदने” इत्यमरः ॥ अभिप्रायज्ञापनं कामप्रवेदनम् ॥ न च ते तूष्णींभावादङ्गीकारं शङ्के यतस्ते स एवोचित इत्याह—प्रत्यादेशात्करिष्यामि इति प्रतिवचनात् ॥ “उक्तिरभाषणं वाक्यमादेशो वचनं वचः” इति शब्दार्णवे ॥ भवतस्तव धीरता गम्भीरत्वं न कल्पयामि न समर्थये खलु । तर्हि कथमङ्गीकारज्ञानं तत्राह—याचितः सन्निःशब्दोऽपि निर्गोजितोऽपि । अप्रतिजानानोऽपीत्यन्यत्र । चातकेभ्यो जलं प्रदिशसि ददासि । युक्तं चैतदित्याह—हि यस्मात्सता सत्पुरुषाणां प्रणयिषु याचकेषु विषय ईप्सितार्थक्रियैवापेक्षितार्थसंपादनमेव प्रत्युक्तं प्रतिवचनम् । क्रिया केवलमुत्तरमित्यर्थः ॥ “गर्जति शरदि न वर्षति वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः ॥ नीचो वदति न कुरुते न वदति सुजनः करोत्येव” इति भावः ॥

संप्रति स्वापराधसमाधानपूर्वकं स्वकार्यस्यावश्यंकरणं प्रार्थयमानो मेघ विद्यजति—

53 I hope, O gentle one, that thou hast undertaken this business of me thy friend, I, by no means, infer thy gravity from an affirmative answer (to my suit) Though silent, thou, when asked for, suppliest water to the *Chataka* birds, for, the performance of the desired object, on the part of the noble, is of itself an answer to the supplicants.

53. M. प्रत्याख्यानात्, M. प्रत्याख्यानम्, M. K1. R. प्रत्याख्यातुम्, M. प्रत्यादिष्टे, M. प्रत्यादेशम्, K2. M. प्रत्यादेष्टु for प्रत्यादेशात्. K1. R. M. अधीरता for धीरता. W. B. C1. C2. N. M. G2. K2. तर्कयामि for कल्पयामि. M. याचित for याचितः.

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितं प्रार्थनादात्मनो मे

सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या ।

इष्टान्देशाञ्जलद विचर प्रावृषा संभृतश्री-

र्माभूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥ ५४ ॥

५४. एतदिति ॥ हे जलद । सौहार्दात्सुहृद्भावाद्वा ॥ “हृद्भगासि-
न्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च” इत्युभयपदवृद्धिः ॥ विधुरो विद्युक्त इति हेतोः ॥
“विधुर तु प्रविश्लेषे” इत्यमरः ॥ मयि विषयेऽनुक्रोशबुद्ध्या करुणबुद्ध्या
वा । आत्मनस्तव अनुचित अनुरूपमपि म प्रिय मम प्रिय मेतत्सदेशहरण
प्रार्थनात् कृत्वा प्रावृषा वर्षाभिः ॥ “स्त्रिया प्रावृट् स्त्रिया भूम्नि वर्षाः” इत्यमरः ॥
संभृतश्रीरुपचितशोभ. सन् । इष्टान्स्वामिलषितान्देशान्विचर । यथेष्टदेशेषु वि-
हरेत्यर्थः ॥ “देशकालाध्वगन्तव्या कर्मसज्ञा ह्यकर्मणाम्” इति वचनात्कर्मत्व-
म् ॥ एवं मद्वत्क्षणमपि स्वल्पकालमपि ते तव विद्युता । कलत्रेगेति शेषः । विप्र-
योगो विग्रहो मा भून्मास्तु ॥ माडित्याशिषि लुङ् ॥ “अन्ते काव्यस्य नि-
त्यत्वात्कुर्यादाशिषमुत्तमाम् ॥ सर्वत्र व्याप्यते विप्रान्नायकेच्छानुरूपिणीम्” इति
सारस्वतालकारे दर्शनात्काव्यान्ते नायकेच्छानुरूपोऽयमाशीर्वादः प्रयुक्त
इत्यनुसंधेयम् ॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायमल्लिनाथसूरिविरचितया सजीविनीसमा-

ख्यया व्याख्यया समेतो महाकविश्रीकालिदासवि-

रचिते मेघदूते काव्ये उत्तरमेघः समाप्तः ॥

54 Having, either for friendship's sake or out of a feeling of compassion for me because I am separated, done this good unworthy of (being done by) thee, because of my solicitation, roam about, O cloud, through (whatever) regions thou chooseth with thy beauty heightened by the rainy season, and let there be no separation of this kind of thee from lightning (thy spouse) even for a moment

54 W M प्रियसमुचित प्रार्थन चेतसः, C1. C2. K1 M. प्रियमनुचितप्रार्थनावार्तिनः, G2. M. R. K2. प्रियमनुचितप्रार्थनावर्त्मनः, M. प्रियसमुचित प्रार्थनादात्मनः, M. प्रियमनुचित प्रार्थना वत्मनः, M. प्रियसमुचित प्रार्थित चेतसः, M. प्रियसमुचित प्रार्थना चेतसः for प्रियमनुचित प्रार्थनादात्मनः. R. P G2 M K1. K2. विचर जलद for जलद विचर. P क्षणमपि सखे, W. M. क्वचिदपि न ते, M. क्वचिदपि च ते for क्षणमपि च ते.

NOTES.

(I) The first verse as Prof Tilak observes like the one in *Kumārasambhava* introduces the subject of the poem at once (*ie*, without any benedictory stanza or preface) and it is certainly pedantic to refer for this to a *Sastra* which is surely based upon such examples as the present

कश्चित् = अनिर्दिष्टनामा *Sumativijaya* here notices an objection raised by some commentators on the ground that the omission of the name of the hero renders the poem faulty; and refutes the objection by quoting the following authority, —“ भर्तुराज्ञां न कुर्वन्ति ये च विश्वासघातका । तेषां नामापि न ग्राह्यं शास्त्रस्यासौ विशेषतः ॥” On this we remark that the objection is trivial, since यक्ष is a sufficiently distinctive name and a further particularization of it will not, in our opinion, materially enhance the merits of the poem, and therefore does not deserve such an elaborate refutation as the one given above

स्वाधिकारान् &c The duty assigned to the *Yaksha* by *Kubera* was, according to *Śrīoddhārīnī*, *Vallabha*, *Sumativijaya* and other *Jaina* commentators, “that he should every day in the morning fetch fresh flowers from the lake *Mānasa* for his lord when he was to attend on *Siva* But, unwilling to leave the embraces of his wife early in the morning, he one day, fetched the lotus-buds required for the next-day’s worship during the night When *Kubera* next morning began to worship *Siva* with those flowers he found one of his fingers severely bitten by a bee hidden in the folds of one of the buds Enraged at this, *Kubera* cursed him for neglect of his duty” According to *Bharata*, *Sanātana*, *Rāmanātha*, *Haragovindā*, and *Kalyānamalla* —“he was Warder of the gate of *Kubera*’s garden, and, quitting his post for a season, allowed *Indra*’s elephant to commit a trespass, and trample down the flower-beds”

वर्षभोगेण &c. This compound admits of another solution as —वर्षेण भुज्यते वर्षभोग्यः “terminating at the end of the

year” It also admits of another interpretation, *viz.*, वर्ष ‘तिर्यग्लोकवर्ति भारत क्षेत्र’ तत्र भाग्य.=“to be enjoyed at a sacred spot belonging to the *Bhārata* which is one of the nine divisions (वर्ष) of the then known world” *Sāro*.

यक्ष &c *Kshirasvāman* in his commentary on *Amara* derives the word as follows —यक्ष्यते पूज्यन्ते इति यक्षा । इ कामदेवस्तस्येवाक्षिणी अस्येति यक्ष इत्यन्ये । They form a class of certain demi-gods attendant on *Kubera*, the god of wealth The word is derived from यक्ष ‘to worship’, either because they minister to *Kubera*, are revered themselves by men, or are beloved by the *Apasaras*, the courtezans of *Indra*’s heaven Wilson. *Bhagvratha*, cited and censured by a commentator on the *Amara*, derives the name from जक्ष ‘to eat’ because he says they devour children —जक्षति खादन्ति शिशून् इति जक्षाः ।

जनकतनया &c Allusion is here made to the ablutions performed by *Sitā*, daughter of *Janaka*, during her stay on the mountain with her husband *Rāma* and his brother *Lakshmana* A peculiar sacredness, says *Sāro*, is imparted to the waters of *Rāmagiri* by their coming in contact with the body of *Sitā*—a woman celebrated for her highest chastity

स्निग्धच्छायातरु &c *Sārodahārini* explains this as follows —छाया आतपाभावस्तया उपलक्षितास्तरवो वृक्षा येषु तथोक्तेषु । अथ वा । छाया शोभा तया उपलक्षितास्तरवः । यद्वा । छाया पंक्तिस्तस्या तरवः । यद्वा । छाया दीनप्रतिपालनं तथाविधास्तरवः । अथ वा । स्निग्धाः अरुक्षाः सरसपल्लवोच्छासिनश्छायातरवो निश्चलाः पादप्रा येषु तथोक्तेषु । अथ वा । पूर्वापरदिग्भागेऽपि सवितरि येषां छाया न परिवर्तते ते छायातरव उच्यन्ते । The last interpretation appears to be better than that of *Mallinātha*, since it is more natural to understand छायातरु in the sense of shady trees in general than to restrict the word to a particular class of trees called नमेरु

रामगिर्याश्रमेषु—रामगिरि lit. means ‘the mountain of *Rāma*’, and may be applied to any one of those hills on which *Rāma* resided during his banishment. *Mallinātha* applies

this term to चित्रकूट, a mountain in Bundelakhand. It is true that this was the first mountain whereon *Rāma* resided for some days during his journey to the South, and this fact might probably have led *Mallinātha* and other expositors to fix this place as the locality of रामगिरि. Modern researches, however, determine the situation of the scene of the present poem to be in the vicinity of Nāgpoor. A glance at the route subsequently assigned by the *Yaksha* to the cloud will clearly show that *Rāmāgiri*, the starting point of the cloud's journey, must be below all the other places to be traversed during the journey. This requires that रामगिरि should be the modern रामटेक which is as mentioned above a hill situate near Nāgpoor. Its current name is रामटेकडी, which, in the Marāṭhi language, has the same import as रामगिरि, the hill of *Rāma*. This hill as Wilson says is covered with buildings consecrated to *Rāma* and his associates, which receive the periodical visits of numerous and devout, pilgrims. *Sāro* says — रामगिरिर्दण्डकारण्ये प्रसिद्धः । And this appears to be correct though no definite place is given.

आश्रमेषु &c. The plural according to *Mall.* indicates the unsteady state of mind of the love-smitten *Yaksha* and hence the successive changes of hermitages. Cf. *Sāro*.

“ वने रतिर्विरक्तस्याविरक्तस्य जने रतिः । अनवस्थितचित्तस्य न जने न वने रतिः ॥ ”

(II) कनकवलयभ्रश &c. *Sāro* explains this as follows.— कामित्वादलकरणधारित्व । उक्तञ्च । “ नाविदग्धः प्रियं ब्रूयान्नाकामी मण्डनप्रियः । निस्पृहो नाधिकारी स्यात्स्फुटवक्ता न वञ्चकः ” Cf. “ मणिबन्धनात्कनकवलयं स्वस्तं स्वस्तं मया प्रतिसार्यते. ” *S'ā* III

वप्रक्रीडा &c. The simile is very happy and is due to the fact that clouds often assume various fantastic forms like those of buffaloes, bulls, elephants, &c., when engaged in वप्रक्रीडा ‘butting at a bank.’ Thus, in *Purana Sarvasva*, clouds are described as—महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातङ्गरूपिणः ‘Shaped like buffaloes, boars, and wild elephants’ Cf. गोभा शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेया” *Ib.* I 56. “शैलादाशु त्रिनयनवृ-

षोऽस्वातकृटान्वितः” *It* II 52 “निःशेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रियामृ-
क्षवतस्तेषु” *R.* V 44 On वप्रक्रीडा &c *Sāno* has the
following remark “इति मेघस्य सामर्थ्यं व्यज्यते । सौहार्दशालिना
सामर्थ्येन च कार्यं सिध्यत इति भावः” ।

प्रथमदिवसे &c Some commentators including *Vallabha*
and others propose to read प्रथमदिवसे for प्रथमदिवसे. The argu-
ment they advance in support of their reading is that as the
next verse mentions the proximity of आवण, and as प्रथमदिवसे
is more in harmony with this proximity than प्रथमदिवसे, (the
last day of आषाढ being obviously nearer to आवण, than the
first day), the former should be preferred to the latter.
Mallinātha, however, rejects their new reading, as unnecessary
and unreasonable. What is mentioned in the next verse
is, he says, simple proximity, which can be had in the case
of his reading too. For, is not the general proximity, he asks,
between आषाढ and आवण an universally admitted fact? If
it is so, it follows, he argues, that there must also be a general
proximity between the first day of आषाढ and the month of
आवण, since a part is included in the whole. Close proximity,
being perfectly useless, is not at all required by the next
verse. “But”, says *Mall.*, “granting that the verse
demands close proximity, the want of it cannot be
urged as an objection against my reading parti-
cularly since it is common to your reading also.
Does प्रथमदिवसे possess this close proximity? No; in order
to bring it out, you must stretch the meaning of प्रथमदिवस
to प्रथमदिवसान्तिमक्षण which you cannot do unless you have
some special warrant for this arbitrary extension. And even
supposing that you have such a warrant, your position is in
no way improved, but on the contrary you incur the
danger of running into an absurdity in as much as you
are going to expect the appearance of a cloud in the sky
exactly at the last second of the last day, of आषाढ which no
man would do, since there is no certainty that a cloud would
make its appearance exactly at the time — nay — the second
required by him.”

प्रथमदिवस being thus shown to be without any reason *Mallinātha* proceeds to vindicate his own reading by an argument which is not possible, he says, in the case of his opponent The *Yaksha* seeing the approach of the rainy season—a season which is particularly hard for women in separation to bear—and anticipating her certain death in case no word of assurance and hope were sent to her without delay, fixes upon the first cloud that makes its appearance for his messenger But this reasoning, being applicable to प्रथमदिवस only, fully vindicates the superiority of प्रथमदिवस over its rival

The opponents of *Mallinātha* here raise an objection against his reasoning, which is thus —the anticipation of his wife's death on the part of the *Yaksha* and his consequent adoption of immediate measures for the prevention of the catastrophe at the earliest time possible imply an exercise of cool reasoning of which the *Yaksha*, intoxicated with love as he is, is wholly incapable *Mallinātha* flatters their argument by acquiescence and tries to sink them yet deeper in absurdity "By continuing your chain of reasoning," he says, "it would follow that the *Yaksha* being maddened by love was not in a condition even to think of adopting any measure at all, whether early or late, in anticipation of the impending evil and thus not in a condition to send the cloud as a messenger to his wife. This reasoning, displaying as it does a great critical acumen, explodes the very foundation upon which the fabric of the poem is constructed and renders the poet a fool, and therefore deserves condemnation and not approbation. What can be said of men who are so ignorant as not to know that the duty of a commentator is to explain, not to stultify his author ?"

Being foiled in this manner the commentators raise another objection against his reading by charging it with the fault of inconsistency. In उत्तरमेव the *Yaksha* happens to say in the 49th verse that the period of his curse is to terminate on the 11th of कार्तिक when god *Vishnu* is to wake from his sleep and calculates that there are only four

months remaining to the completion of that period But if we count, say they, the days from प्रथमदिवस to the 11th of *Kārtika* we get 10 days in addition to the period of 4 months calculated by the *Yaksha* in that verse Thus the reading ~~हह~~ is found to be inconsistent with the calculation made by *Yaksha* in that verse. *Mallinātha* admits the inconsistency but retorts that this inconsistency instead of being lessened or removed is greatly magnified in the case of his opponents in so far as 20 days are found to be wanting to the completion of the period of 4 months even if be accepted प्रथमदिवस and calculation begin therefrom *Mallinātha*, however, attempts to palliate the charge of inconsistency by remarking that the difference of 10 days is a trifling difference and that मासचतुष्टय should not be understood in such a strict sense as to preclude the inclusion of 10 additional days within the period it denotes Thus प्रथम is shown to be decidedly better than प्रथम. We have at the risk of being tautologous reproduced this whole discussion although it is given in *Mallināth's* commentary, with a view to draw the attention of the student to the passage and to enable him to understand it as being a fair specimen of the style generally employed in Sanskrit polemics *Mahāmasnha-ganī*, *Sumativijaya* and other expositors also give प्रथमदिवसे but interpret it as follows —प्रथ—जगद्विख्यात विस्तीर्ण वा—अ० कृष्णो विष्णुर्वा तस्य दिवसे कार्तिकेकादश्यामित्यर्थः। The reason they give for this interpretation is that it obviates the objection of inconsistency which *Mallinātha* could only palliate but could not remove. We admire the ingenuity of the commentators here, but discard their interpretation as quite artificial The interpretation of *Mallinātha* is natural and one which suggests itself at the very first sight. Besides we do not remember to have ever met with the use of obscure monosyllabic words made by *Kālidāsa* in any of his well-known works

(III) कैतुकृष्ण & *Sāroddhārīn*, *Vallabha*, *Sumativijaya*, *Lakshminivāsa*, *Bharata*, *Sanātana*, *Rāmanātha*, *Hara-govinda*, *Kalyānamalla*, *Wilson* and other eight Jaina

expositors read केतकाधान &c. and explain it as —केतकाधान-हेतोः केतकगर्भारोपणकारणस्य (अथ वा केतकीकुसुमोत्पादननिदानस्य) केतकपुष्पगन्धो हि विरहिणामत्यन्तदुःसह इति प्रियामाणबाधाचिन्ताहेतुः। ‘the cause of the birth of *Ketaka* flowers which excites longing’ We reject this reading, however, for the following reason —*Kālidāsa* wants to describe the effect produced by the appearance of the cloud upon the mind of the *Yaksha* as is evident from the last two lines of the verse, now the epithet कौतुकाधान &c. expresses this effect more directly than केतकाधान &c. and therefore is to be preferred

अन्तर्बाष्प &c *Sāro* has the following remark on this— ‘एतेन पुरुषत्वाच्चैर्य प्रतिपाद्यते ”

मेघालोके &c The commencement of the rainy season being peculiarly delightful in India, from the contrast it affords to the sultry weather immediately preceding, it, and the refreshing sensations it excites, becomes, to the lover and the poet, the source of love and tenderness Cf. “ एतेन पुनर्निवृतानामप्युत्कण्ठाकारिणा मेघोदयेनानर्थधीनो भविष्यति ”
V₂ IV

किंपनर्द्रसस्ये &c For the effect of the rain-cloud and its friends the peacock, the *Kadamba*-flower, thunder, and the plantain flower on lovers separated from their wives, compare —“ एतद्विरेर्मास्यवत् पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम् । नव पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्च समं विमृष्टम् ॥ पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र कम्पोत्तरं भीरु तवोपगूढम् । गुहाविसारीण्यतिवाहितानि मया कथंचिद्वनगर्जितानि ॥ आसारसिक्तक्षितिवाष्पयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नकोशैः । विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहभूमारुणलोचनश्रीः”॥
R. XIII.

(IV) मयासन्ने नभसि &c Cf The *Subhāshita*, as given by *Sāro* “शिखिनि कूजति गर्जति तोयदे । स्फुरति जातिलता कुसुमाकरे ॥ अहह ! पाथ ! न जीवति ते प्रिया । नभसि मासि न यासि नृह यदि ” ॥

नभसि &c. The reading मनसि for नभसि of *Nātha*, noticed and refuted by *Mallinātha*, is also open to another fault

that it renders the epithet प्रीतः in the fourth line superfluous

जीवितालबनार्थी &c. The motive of the act of sending tidings is more directly expressed by the reading जीवितालबनार्थम्—an adverbial compound—than the adjectival compound जीवितालबनार्थी or जीवितालबनार्थी *Bharata* has the following comments on “जीवितालबनार्थी” :—दयितायाः प्रियायाः जीवितस्य प्राणधारणस्य आलम्बनमवष्टम्भः स्थैर्यमर्थः प्रयोजनं यस्यास्तादृशीम् । कदाचित् श्रावणस्य प्रबलविरहपीडादायित्वात् प्राणास्त्यक्ष्यतीत्याशङ्क्य विरहिण्याः कान्तवार्ताश्रावणस्य प्राणधारकत्वात् स्ववार्ता प्रस्थाप्यत इति भावः ।

कल्पितार्थाय &c. The *Anga* generally comprises the following eight articles —“आप क्षीरं कुशाग्राणि इधि सर्पिश्च वृण्डुला । यवाः सिद्धार्थकं चैव अष्टाङ्गार्घ्यं प्रकीर्तितम् ” ॥ In the *आचारदर्श* of *Sridatta*, in a passage quoted from the *देवीपुराण*, they are stated somewhat differently as, “रक्तबिल्वाक्षतैः पुष्पैर्दधिदूर्वाकुशैस्तिलैः । सामान्यः सर्वदेवानामर्घोऽयं परिकीर्तितः ” । If any of these be not procurable they may be supplied by the imagination —“अभावे इधिदूर्वादेर्मानसं वा प्रकल्पयेत्,” and thus in the present case a few flowers only have been offered to the cloud

कुटजकुसुमैः &c. Cf. ‘कुसुमितकुटजेषु काननेषु’ *Ghatakharpa*. 13.

प्रत्यग्रैः &c. On this *Sāro*, says ‘आर्तवत्वान्मनोहरैः । आर्तवैर्हि कुसुमैर्देवतातिथिपूजनं कर्तव्यमिति ’ ।

(V) सलिलमरुतां &c. मरुत् (from मृ) is said by some to be from an obsolete root मृ ‘to shine’, fanciful etymologies are given by Sanskrit authors; मा हृद् ‘do not cry’ according to the legend told in *Rāmāyana* I 46 20, *Hari-vansa* 249, according to the *Nirukta* XI 13, the *Maruts* are so called because they are मितराविणो महद्भवन्तीति वा सलिलं—the older form सरिरं—from सृ connected with root सृ I *conj. P* ‘to go, to move rapidly.’

क—क &c. This is an example of विषमालंकार, as noticed by *Mallinātha* which consists in a statement of incongruity

between two facts Cf ' क हजा, हृदयप्रमाथिनी क च ते विश्वसनीयमायुद्धं ' *Mal* III ' क वत हरिणकाना जीवित चातिलोलं । क च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते ' ॥ *Sa*. I ' क सूर्यप्रभवो वश क चात्यविषया मति. ' *R* I 2.

पटुकरणै. &c *Vallabha* explains this as follows — चतुरेन्द्रियैर्मनैर्वैर्न तु निर्वुद्धिभिः. &c which seems better पटुकरणै 'with able limbs'—limbs that work intelligently — with प्राणिभि means intelligent beings. Cf ' तस्मिन्नुद्यन्नवजलधरध्वानमाकर्ष्य भय । कन्दर्पेण व्याथितहृदयोन्मत्ततुल्या ययाचे । प्रज्ञाहीनं वचनराहितं निश्चल श्रोत्रहीनं । दौत्य कर्तुं मुरहरपदो लक्षण पद्मलाक्षी' *Padānha-Duta* 3

गुह्यक. &c *Kṣhmasvāmin* explains this word as follows — गुह्यकाः निधिपाला मणिभद्रादयः गूहन्तीति ' *Rajamukuta* derives this word as — "गुह्यं कुत्सित कायति । कै गै रै शब्दे आतोऽनुपसर्ग इति क' । गुह्यको मणिभद्रादि. । एते च निधिरक्षका यक्षभेदाः । तथा च "निधि रक्षन्ति ये यक्षास्ते स्युर्गुह्यकसंज्ञकाः" इति व्याडिः" । *Sāro* and others say — "गुह्य कायति जल्पति गुह्यकः" and add that it is साभिप्राय. But it is surely far-fetched

ययाचे &c Cf. "न तस्या दोषोऽयं यदिह विहग प्रार्थितवती." *Hansadutta* 8.

प्रकृतिकृपणा. &c This expression and *Mallinatha's* commentary thereon admits of another interpretation, viz "naturally disposed to lament," which equally suits the context *Sumati*. comments on this as follows — "प्रकृत्या स्वभावेन कृपणाः विकलाः चेतनाचेतनस्वभावपरिज्ञानविकलाः भवन्तीत्यर्थः." The reading प्रकृति &c is certainly better than प्रणयकृपणाः &c. On this the *Sāro* has the following remark — "नैव पश्यति जात्यन्धः कामान्धो नैव पश्यति । न पश्यति मदोन्मत्तस्त्वर्थी दोषो न पश्यति । दश धर्म न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोधनात् । मत्तः प्रमत्त उन्मत्तो जातिकुद्धो बुभुक्षितः । त्वरमाणश्च भीरुश्च लुब्धः कामी च याचकः " ॥

(VI) पुष्करावर्तकाना &c. 'Ondiluvian clouds' which are thus described in the ब्रह्मांडपुराण and the पुराणसर्वस्व. —“पुष्करा नाम ते मेघा बृहतस्तोयमत्सराः । पुष्करावर्तकास्तेन कारणेनेह विश्रुताः ॥ नानारूपधरास्ते तु महाधीरस्वनास्तथा । कल्पातेवृष्टिकर्तारः संवर्तमानेनियामकाः” ॥ Cf.—“दग्धुं विश्वं दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्का वाता वाता दिशि दिशि न वा सप्तधा सप्तभिन्नाः । छन्न मेघैर्न गगनतलं पुष्करावर्तकाद्यैः पापं पापाः कथयत कथं शौर्यराशेः पितुर्मे” *Ve III Sano* and others derive it as follows — पुष्करं पानीयं आवर्तयन्ति. From what is said above पुष्करावर्तक appears to be one name while *Milli* takes the word as two distinct names of the cloud-race

प्रकृतिपुरुष मघोन &c. *Indra* is in mythology known as the god of rain, and as clouds distribute rain to every part of the world they are rightly called here “the chief officers of *Indra* or the right hand of *Indra*.” The appellative मघवन्, used in the original, is considered, by Etymologists, as irregularly derived from the passive form of मद्, ‘to adore,’ ‘to worship’ Thus *Rāyamulāta* says.—मह्यते मद् पूजायां । श्वश्रुक्षन् पूषन्—इत्यादिना कनिनि मघवन्निति निपातितः see *Pa. VI 4. 128*

This verse is an example of प्रेयोलेकार, a figure, when one pays a compliment to another in order to serve one's object. The object here is to induce the cloud to take the message to *Alakā*.

याच्ञामोघा &c. —This is a sentiment of rather an original strain, and indicates considerable elevation of mind. Wilson. Cf “इत्याश्वासादभिमनविधौ कामये त्वा नियोक्तुं न्यस्तसाध्यासि सफलतामर्थभारो हि धत्ते” ॥ *Uddhavasandesā 4*.

“अतोऽहं दुःखार्ता शरणमब्रूवा त्वा गतवती न भिक्षा सत्पक्षे ब्रजेति हि कदाचिद्विफलताम्”. *Hamsadāta 9*

(VII) अलका &c. *Kshmasvāmin* derives this word as follows.—“अलत्यलका । अल' भूषणे क्षिपकादित्वादिस्वाभाव ” *Rāyamulāta* derives it as अलति भूषयति अलका. It is the capital of the

Lord of the *Yakshas* and is situated on the mount *Karlása* a snowy peak of the *Himálaya*. It is also the residence of his dependent deities

हरशिरश्चन्द्रिका &c *Siva* represented as the friend of *Kubera* may occasionally visit *Alaká* and is therefore rightly said to reside in his outer-garden. The name of this garden is वैभ्राज. But according to *Sáro* “कलौसोपवनं चैत्राख्यं” Cf. “वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावामुख्यासहाया । बद्धालापा बहिरुपवन कामिनो निर्विगन्ति” || *Ib.* II 10 “नित्यज्योत्स्ना प्रतिहतमोवृत्तिरभ्याः प्रदोषा.” || *Ib.* II 3

यक्षेश्वराणा &c *Sáro* and others say — “पूज्यत्वे बहुवचनम्”.

(VIII) उद्धृतीतालकान्ता. &c. In connection with this the *Sáro*. quotes the following — “क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् । हास्यं परगृहे यात्रं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका” || This gives the reason why their hair were in a dishevelled state.

प्रत्ययाशब्दसत्य &c *Sáro*, *Su* and other commentators explain this as ‘निश्चयास्त्यरीभवत्य.’ ‘calmed by assurance,’ which is also possible

सन्नद्धे &c *Sáro* says — “प्रकटितसुरधनुताडिलतागार्जितादिसामग्रीकै,” which conveys the sense of equipment previous to bestirment.

According to *Sáro*, this verse is an example of व्यतिरेकालंकार which is thus defined — “उपमानाद्यद्वयस्य व्यतिरेकः स एव स.” *Ālavya* X.

On the anxiety and apprehension felt by lovers at the approach of rain-cloud. &c Cf — नवजलधर. संनद्धाये न दत्तनिशाचरः सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न नाम शरासनम् । अयमपि पटुर्धरासारो न बाणपरंपरा कनकनिकषस्त्रिधा विबुधप्रिया न ममोर्वशी.” *Vā* IV. 1

(IX) Some manuscripts read this verse after “तां चावश्यं &c” The order of *Mallī* here seems to be objectionable for the following reasons —

(a) *Mallīnāth*’s interpretation of this verse is unsatisfactory, for (1) यथा in the sense given renders अनुकूलः

superfluous, (2) नून loses all its propriety and force, (3) the sequence of tenses is not kept up, as नरति and नुस्ति are present, while सेविष्यन्ते is future, (4) one more च is necessary in the third or fourth line to connect the third omen with the first two. All these objections are removed if यथा be taken in its usual sense of 'as' The first two lines will then form antecedent sentences and the latter two a subsequent one; 'नून' receives its force, since, as the *Yaksha* would say, occurrence of the first two omens is a sure guarantee that the third will follow.

(b) The mention in the eighth verse of the incidental service to be rendered by the cloud on his way to *Alaká* must be immediately followed by that of the main end for which the journey is to be undertaken. This we gain by reading "ताञ्चावश्यं &c." after "त्वामारूढ &c." and not by *Mallinátha's* order.

(c) The particles च and अवश्यं are rendered by *Mallinátha's* order superfluous and unmeaning which is never found in *Kálidása's* poems

(d) This verse mentions omens auspicious for the journey, a subject which appears disconnected when the verse precedes "ताञ्चावश्यं &c" But coming after it, it appears to be well-connected with "कर्तुं यच्च &c" the subject of which is akin to that of "मन्दं मन्दं &c"

(e) This order is warranted by पाङ्क्ति-युद्ध which we consider to be a higher authority in this matter than *Mallinátha* for reasons given in the preface to this edition

The order given by some commentators, who read "ताञ्चावश्यं &c" after "कर्तुं यच्च &c" is also objectionable though not to the same extent as that of *Mallinátha* for the reasons given above.

अनुकूल &c *Sáro* and others explain this as.—“पृष्ठानुगामो मृदुगतिश्चानुकूलोऽभिधीयते.”

चाम. &c On the auspiciousness of *Chátaka's* movement on the

left, *Bharatamalla* quotes the following :—‘बहिणश्वातकाश्वाषा
ये च पुंसगिताः खगाः । मृगा वा वामगा हृष्टाः सैन्यसम्पदूलमदाः ॥’
Sáro and other commentators have —‘कामं वामसमायुक्ता भोग्ये
भोगमदायिनः । हृष्टास्तुष्टिं प्रयच्छन्ति प्रयातुर्मृगपक्षिणः’ ॥

चातक &c. The *chátuka* is a bird supposed to drink only rain
water ; of course he always makes a prominent figure in the
description of wet or cloudy weather. Thus in the rainy season
of our author’s ऋतुसंहारः—‘तृषाकुलैश्चातकपक्षिणा कुलैः । प्रयाचिता-
स्तोयभरावलम्बिनः । प्रयान्ति मन्दं नववारिधारिणो । बलाहकाः
श्रोत्रमनोहरस्वना’ ॥

सगन्धः &c. *Sáro*, *Lakshmi*, *Mahim*, *Su*, *Bha*,
Saná, *Rám*, *Har*, *Wilson* and others read सगर्व सहर्ष or
सोत्साह (जललाभात्). *Malli* notices another sense here, सगन्धः =
सबन्धी, which is also possible as there is remarkable kinship
between the cloud and *chátala*. Compare on the use of the
word in the same sense “तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि । सर्वं सगन्धेषु
विश्वासिति । द्वावप्यत्रारण्यक्राविति” । *Sa* V.; *Val*. and *Kalyá*
read चातकस्तोयगृध्नु. ‘wishing for water’.

गर्भाधानक्षमपरिचयात् &c. Here according to *Su* and *Sáro*. गर्भा-
धानावसरे क्षमपरिचयात् क्षममात्र परिचयः संगमः तस्मात्. The
meaning of क्षम given by *Malli* is not as natural as that
given above *Sáro* says ‘गर्भाधानक्षमपरिचयाद् गर्भग्रहणावस-
रात् त्वदीयगर्जितश्रवणेन तासां गर्भः समुत्पद्यते;’ and further it
says, ‘गर्भाधानं हि महिलानां महानुत्सवः । यत्समागमे महोत्सवो
भवति को नाम तस्य सेवा न कुर्यादिति’ *Bhr*, *Saná*, *Rám*, *Har*,
Wilson. and some MSS. read गर्भाधानक्षमपरिचय and explain
it as—‘गर्भस्य आधाने आरोपणे क्षमः समर्थः परिचयः सम्बन्धो
यस्य तादृशम्’ The rainy season, says *Wilson*, is
that of their gestation, which explains their attachment to
the cloud, and the allusion to its impregnating faculty
mentioned in the text of the original.

आबद्धमाला &c *Sáro.* says —‘पयोदकाले स्वभावादेव बलाका श्रेणीभूता भवन्ति’.

बलाका &c Is said to mean a small crane. The word is always feminine, and perhaps therefore means the female bird only. Indeed, some of the commentators on this poem call it the female of the बक (बकपत्न्य).

The periodical journeys and orderly flight of this kind of bird, observes Wilson, have long furnished classical poetry with embellishment *Sáro, Su* and others explain this as follows —‘यथा बलाकाः नवयौवनाः स्त्रियः आनन्ददायिकं पुरुषं खे एकान्ते सेवन्ते । बलेन यौवनमदेन अंकाति कुटिलं गच्छति * * * कथं भूतास्ताः । आबद्धमाला. परिहृतपुष्पस्रजः’ ।

(X) ताञ्च &c *Mall* omits च in his commentary, probably because he could not explain its propriety in the order of verses followed by him. But in the order preferred by us, it is perfectly appropriate as it connects the main good with the incidental one to be accomplished by the cloud’s journey

दिवसगणनात्स्वरां &c *Sáro, Val, Su* and other commentators explain this as —‘मदीयपत्युर्देशान्तरगतस्य एतावन्ति दिनानि बभूवुः । एतावद्भिर्दिवसै पुनरेव समागमो भविष्यतीति दिवसगणना.’

भ्रातृजायाम् &c *Sáro* explains this as follows:—‘भ्रातृजाया हि मातुः तुल्या भवति तथा च लक्ष्मणेनापि उक्त रामायणे । “नाभिजानामि केयूरे नाभिजानामि कुण्डले नूपुरे त्वभिजानामि निभ्यं पादाभिवन्दनात्.”

आशाबन्ध. &c. *Cf.* “आशाततुर्न च कथयतास्यतमुच्छेदनीय । प्राणत्राणं कथमग्निं करोत्यायताक्ष्याः स एक ” *Mālatī* A. 9. also *Cf.* “आशापाशैः सखि नवनवैः कुर्वती प्राणबन्धम् ।” *Uddhavasandesa* 83.

(XI) कर्तुं यच्च &c On the omission of this च by *Mall* see notes on the 9th and 10th verses

हृच्छिलीन्द्रामवन्त्या &c. *Sáro, Lakshmi, Maham, Su, Val, Bha, Rām, Har, Kalyā,* and other MSS. read उच्छिलीन्द्रातपत्राम् and explain it as —“उद्गतानि शिलीन्द्राणि भूमिस्फोटा एव आतपत्राणि यस्या सा तथा ताम् । उक्तं च अनेकार्थे । “छत्रमे वृक्षजातौ

च शिलीन्ध्रं स्पर्धते दुधैः ” । आतपशब्दस्य महाविभूतिसूचकत्वा-
त्पृथिव्याः सर्वशस्यसंपत्तिजनकत्वं व्यनक्ति ।”

मानसात्का &c The *Mánasa* lake is situated on mount *Karlása*. Cf. “कैलासशिखरे राम मनसा निर्मित सरः । ब्रह्मणा प्रागिदं यस्मात्तदभून्मानसं सरः ।” । *Rámáy.* The lake मानस in the *Himálayas* In the *वायुपुराण* it is stated that when the ocean fell from heaven upon Mount Meru, it ran four times round the mountain, then it divided into four rivers which ran down the mountain and formed four great lakes, अरुणोद् on the east, शीतोद् on the west, महाभद्र on the north, and मानस on the south. According to the mythological account, the river Ganges flows out of it, but in reality no river issues from this lake, though the river Satlej flows from another and larger lake called रावणहृद्, which lies close to the west of मानस But it lies as Wilson says, between the mountain *Himálaya* and the *Kailása*, a lofty range running parallel with and on the north of that mount It is the favourite haunt of flamingoes (राजहंसा.) at the beginning of the rainy season. *Sáro.* says —“ते हि सजलमेवोदयभीरुत्वात्कलुषितसलिलाशयाः सन्तः सुखवगेनालकायाः मानसं प्रति यान्ति ।” “Those birds finding in the rocks bordering on the lake an agreeable and safe asylum, when the swell of the rivers in the rains and the inundation of the plains conceal their usual food,” Moorcroft's Journey to मानससरोवर, Asiatic Researches, XII 466

आ कैलासात् &c. *Kshurasvāmūn* derives this word as —“कैल-योर्जलभूम्योरास्ते के लसनमस्य वा कैलासः स्फटिकं तस्यायं स्फटिकोऽ-द्रिः ।” । *Ráyamukuta* derives it as follows —“कैलीना समूह-कैल । अण् । तेनास्यतेऽत्र कैलासः । आस उपवेशने । हलश्चेत्याधि-करणे घञ् । यद्वा । कैलिः प्रयोजनमस्य कैलः आस्यतेऽत्रेत्यासः कैल-श्चासावासश्चेति । कृष्णसर्पवन्नित्यसमासः । कं जलमिला भूमिः कैल-योर्जलभूम्योरास्ते । के जले लासो लसनमस्येति वा कैलासः स्फटिकस्त-स्यायं कैलासोऽद्रिरिति तु स्वामी ।” । *Kailása* is the name of a mountain in the *Himálayas*, north of the मानस lake Siva

paradise is said to be on Mount Kailāsa, so also is Kubera's abode. It is called also गणपर्वत and रजताद्रि, 'silver mountain'. Kailāsa, as it here appears, says Wilson, a part of the Himālaya range, is in fable a mountain of costly gems or of crystal, the site of *Kubera's* capital, and the favourite haunt of Siva. He quotes the following account from Baldæus—The residence of ईश्वर is upon the silver mount कैलास, to the south of the famous mountain महानिह being a most delicious place, planted with all sorts of trees that bear fruit all the year round. The roses and other flowers send forth a most odoriferous scent, and the pond at the foot of the mount is enclosed with pleasant walks of trees, that afford an agreeable shade, whilst the peacocks and divers other birds entertain the ear with their harmonious noise, as the beautiful women do the eyes. The circumjacent woods are inhabited by a certain people called *Munis*, or *Risus*, who avoiding the conversation of others, spend their time in offering daily sacrifices to their God. It is observable, that though these Pagans are generally black themselves, they do represent their *Risus*, to be of a fair complexion, with long white beards, and long garments hanging cross-ways, from about the neck down over the breast. They are in such high esteem among them, that they believe whom they bless are blessed, and whom they curse are cursed. Within the mountain lives another generation called यक्ष, and किन्नर, and इन्द्र, who are free from all trouble, and spend their days in continual contemplation, praises and prayers to God. Round about the mountain stand seven ladders, by which you ascend to a spacious plain, in the middle whereof is a bell of silver and a square table, surrounded with nine precious stones of divers colours upon this table lies a silver rose, called *Tamarrapua* (?), which contains two women as bright and fair as a pearl one is called Brigasiri (?), i.e. 'The lady of the mouth. the other Tarasiri (?) i.e. 'The lady of the tongue' because they praise God with the mouth and tongue. In the centre of this rose is the triangle of शिवलिङ्ग; which, they say, is the permanent residence of God."

बिसकिस्लुयच्छेद० &c. Cf. “पश्चात्सरः प्रतिगमिष्यसि मानसं त्वं
पाथेयमुत्तुज बिसं ग्रहणाय भूयः” । *Val.* iv. 15. “मेघश्यामा दिशो
दृष्ट्वा मानसोत्सुकचेतसा । कूजितं राजहंसाना नेदं नूपुरशिजित ” ।
Val. iv 14. “ यस्यास्तोये कृतवसतयो मानस संनिवृष्ट नाध्यास्यन्ति
व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हसा ” । II. 16. “ हंसपक्तिरपि नाथ
संप्रति प्रस्थिता विद्यति मानसं प्रति” । *Ghatulhar para.* 9.

श्रवणसुभग गर्जितं &c. Cf. “बलाहका श्रोत्रमनोहरस्वना.” । *Rit Rainy*
season 3.

(XII) श्रमु शैल &c. This mountain must be *Rāmāgiri*
that stands a short distance north of Nāgapur, and
not *Chitrahūta* given by *Mall.* *Vide* note on (1)

तुग &c. *Sāro* explains this as —“तुगं महोन्नत अत एव गमन-
समये प्रश्नोपपत्तिः ” ।

भवतो यस्य सयोगमेत्य &c. *Su* and a few others differ from
Mall. in connecting the word सयोग with यस्य and भवतः with
स्नेहव्यक्ति But this interpretation is not satisfactory, as hot
tears would more naturally proceed from the mountain than
from the cloud Cf. *Val.* “पर्वता हि जलद्वृष्ट्या स्निग्धा भवन्ति बाष्प
श्च मुलूचन्ति” ।

मुञ्चतो बाष्पमुष्ण &c. *Sāro*, *Mahim.*, *Lalshmi*, and *Su*.
have the following remark on this —“अन्योऽपि य. किल चिर-
विरहदुःखितो भवति स तत्सयोगे सति उष्ण बाष्पमुञ्चति” ।

(XIII) मार्गतावत् &c. —We now begin, says Wilson, the
geographical part of the poem ; which as far as it can be made
out through the difference of ancient and modern appellations,
seems to be very accurately conceived The two extreme
points of the cloud’s progress are, the vicinity of Nāgapore,
as mentioned in the note on verse 1, and the mountain
Kailasa, or rather the *Himālaya* range. During this course,
the poet notices some of the most celebrated places, with the
greater number of which we are still acquainted. In the
first instance, we have here his direction due north from the
mountain of *Rāmāgiri*, and we shall notice the other points
as they occur.

श्रोत्रपेय &c. The reading of *Pārsvābhyudaya* here is श्रव्यवर्ध

“an arrangement of words fit to be heard by (i.e., pleasing to) the ears” *Val* says — “पानविश्रामौ हि सुतरमुपयुज्येत पथि” । So also *Sáro.*

शिखरिषु & *Sáro* explains this as — “शिखरिषु व्यक्तिग्रहणार्थं बहुवचनं । शिखरिणि शिखरिणि पादौ आरोप्य विश्राम्येत्यर्थः” ।

खिन्नः खिन्नः & *Sáro* says — “अन्योऽपि पथिकः खिन्नः सन् वृक्षेषु पदावस्थानं विधत्ते” । Mark शिखरिषु पर्वतेषु वृक्षेषु as explained by *Sáro.* and *Mahm.*

परिलघु & *Mahm* and a few others explain this as — “अन्योऽपि यः क्षीणो भवति तस्य परिलघ्वेव पथः पानमुचितः” । See *Mahnátha's* commentary on the same

(XIV) सिद्धागनाभिः & *Kshirasvāmin* derives and explains सिद्धाः as — सिध्यन्तीति सिद्धा । प्राप्ताष्टगुणैश्वर्यविश्वावसुप्रभृतयश्च । *Rāyamukuta* derives and explains this as — सिधुः हिंसासराध्योः । गत्यर्थकर्मकेत्यादिना कर्तरि क्तः । सिद्धोऽणिमादिगुणोपेतो विश्वावसुप्रभृतिः । २० — The semi-divine beings supposed to be of great purity and holiness, and are said to be specially characterised by the eight supernatural faculties (which are — “अणिमा लक्षिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा । ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामावसायिता” ॥) *Siddhas* tenant the upper regions of the air *Su.* says — सिद्धा = विद्याधराः.

मुग्धा & *Val* explains this as — “मुग्धा षोडशवार्षिकी. A pretty young maiden of sixteen.”

चकितचकित & *Cf.* “पश्यन्तीनां चकितचकित—” *Uddhavasana* *desa.* 32.

हिङ्गागानां & *C.* The elephants said to be presiding over the eight quarters of the world. They are — “ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः । पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः” ॥

The plural here, says *Sáro.*, indicates that the cloud is to proceed straight to the north abandoning all other directions. Also *Cf.* “नद्व्याकाशगंगाया श्रोतस्युद्गमदिग्गजे” । *R* I 62. See *Vallabha's* comments on the same.

वृष्टोत्साहः & *Val., Bha., Saná., Rāma. Hara., Kalyá*

Wilson and others read दृष्टोऽह्नायः and explain it as — “दृष्ट उच्छायः उन्नतिर्यस्य तादृशः” ।

सरसनिचलाद् &c *Sāro* and a few others quote here — “नवीतिरे गवां गोष्ठे क्षीरवृक्षे जलाशये । आरामेऽथ कृपादौ दृष्ट बन्धु विसर्जयेत्” ॥ and remark that the cloud should take leave of his बन्धु, the mountain at this सरस (सजल) place Cf “शार्ङ्गरवः—भगवन्नोत्क्रान्ता-स्मिन्धो जनोऽनुगंतव्य इति श्रूयते । तदिदं सरस्तीरं । अत्र सादिश्य प्रतिगंतुमर्हसि । काश्यप—तेन हीमा क्षीरवृक्षच्छायामान्वयाम्.” । *Sa A IV Val* says—इति मावृङ्गणम्.

हस्तावलेपान् &c *Su* and a few others explain — ‘अव-लेपानु—स्पर्शान् i.e. ‘contact’ On the contact of the cloud with the trunks of the quarterelephants Cf. “मेघा वाय्वाभि-घातेन विसृजन्ति जलं भुवि” ॥ also, “तेजोऽर्कः सर्वभूतभेद्य आदत्ते रश्मिभिर्जल” ॥ also, “मेहनाच्च भिहेर्धातोर्भेघत्वं व्यजयन्त्युत” ॥ also, “पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ने शीतसभवास्तुषारवृष्टिं वर्षन्ति हिमं सस्यविवृद्धये” ॥ also “हस्ती समुद्रादादाय करेण जलमीप्सित । दद्याद्वनाय तदद्याद्वातेन भेरितो घनः ॥ स्थाने स्थाने पृथिव्या च काले काले यथौचितं” ॥ Cf. “तस्याः पातु सुरगज इव व्योम्नि पश्चा-र्वलम्बी । त्वं चेदच्छस्फटिकविशद तर्कयेस्तिर्यगम्भः” ॥

Mallinātha suggests another implied sense of this verse, probably based on traditions current in his time or on information he had gathered about it In brief it runs thus —

“With thy vigour marked with admiration by the celebrated poets and women there, who have their faces raised up in doubt whether the glory of the mighty दिङ्नागाचार्य is being obscured by thee, rise triumphant, O muse, from this abode of the poet *Nichula* who has obviated the objections raised against thee, warding off the attacks of दिङ्नागाचार्य (i.e. my adversary) on the road of the *Sārasvata*”

For our remarks on this allusion to दिङ्नाग and निचुल, *Vide* preface.

Mahm. omits this verse as well as the 15th and 16th

(XV) रत्नछायाव्यतिकर &c. Here पादवीर्युदय reads रत्नच्छायाव्य-

विकर &c. This is grammatically more correct, as छाया assumes the form of छाय in the Tatpurusha compound

पुरस्तात् &c *Sáro., Su.* and others say that —“पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि”. But *Mall.* does not sanction it.

वल्मीकाघ्रात् &c The theories of the rainbow given by *Varāhamihara* are —(1) सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघटिता कराः सन्नि । वियाति धनुःसंस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः ॥ (2) केचिदनन्तकुलोरगानि श्वासोद्भूतमाहुराचार्या. तद्यायिना नृपाणामभिमुखमजयावहं भवति ॥ *Sáro. and Bha.* say :—(3) इदृचापं किल वल्मीकातर्व्यवस्थितमहानागाशिरोमणिकिरणसमूहात्समुत्पद्यते ।

वासुकिफणामगिगणद्युतिर्वल्मीकरन्वाग्निःसृज्य नभासि मेघे शक्रधनुराकारमापद्यत इत्यागमः ।

Mallinātha may have the 2nd or 3rd of these in his mind in interpreting वल्मीकाग्र as —“the top of an anthill” The following are the senses of वल्मीकाग्र given by *Sáro., Val., Sand., Rām., Bha., Hara., Kalyā.,* and others —

वल्मीकाघ्रात्—रामगिरिशृगात् (वामलूरे गिरेः शृगे वल्मीकपदामेष्यते इति गब्दार्णव) *Sand.* (2) वल्मीकाघ्रात्—सूर्यात् (वल्मीकः सातपो मेघो । वल्मीकः सूर्य इत्यपि इति कोशान्तरं) *Rām., Val., Sáro., &c.* (3) वल्मीकाघ्रात्=सातपमेघाघ्रात् (*Vide above*) *Bha.* But these senses are very doubtful as they are not found in any dictionary.

गोपवेशस्य विष्णोः &c, This seems to be an allusion made by *Kālidāsa* to the *Purānas* of *Bhāgavata* and *Harivansa* Cf. यथा बल्लवरूपस्य हरेः प्रसरत्कान्तिना पिच्छेन वपुः कान्तिमाप्तवत् । गोपा हि प्रायेण शरवन्मयूरपिच्छधारिणः । *Val.* गोपाला हि प्रायशो मयूरपिच्छैराभरणानि कुर्वन्तीत्यागमः । *Su.* गोपाला किल केलिकलितचेतसः केकिपिच्छं परिच्छेदमाद्रियन्ते एतावता चित्रचापधारिणः इन्द्रस्य बर्हिधारिणः कृष्णस्य च तुला प्राप्स्यन्ते इति व्यज्यते । *Sáro. Cf.* “चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमण्डलवलयितकेशप्रचुरपुरन्दरधनुरनुजितमेदुरमुदिरसुवेशम्” ॥ *Gṛtagovinda.* 3.

(XVI) भ्रूविकारानभिज्ञैः &c. *Sáro., Val., Su.,* and others explain this as — “प्राग्यत्वाद्” भ्रूविभ्रमाचतुरैः न तु प्रतीतेरभावात् ।

त्वय्यायत्तं कृषिकले &c Rain is the cause of husbandry which is the chief sustenance of the people of the country. Hence their women are said in the next line to look upon the cloud with great affection

सद्यः सीरोत्क्षपणसुरभि क्षेत्र &c Here *Pārsurābhyaṇḍaya*, *Val*, *Kalyā*, *Wilson* and others read सुरभिक्षेत्र taking the whole compound as an adjective to माल *Bha.*, *Sanā*, *Rām*, and *Harā* take सद्यसीरोत्क्षपणसुरभि as an adjective qualifying the noun माल They also differ from *Mallinātha*

Pio. *Isvarachandra* favours this reading and thus criticises *Mallinātha's* interpretation of this expression —

सद्यसीरोत्क्षपणसुरभीत्यस्य क्रियाविशेषणत्वं न संगच्छते क्रियाविशेषणत्वागीकारे सद्यःसीरोत्क्षपणेन सौरभं संपाद्येत्यर्थः प्रातिपद्यते तथात्वे चोत्क्षपणक्रियाकर्तृत्वं मेघे कल्पनीयं मेघस्य तु तत्कर्तृत्वं न संभवति ।

On this criticism we remark that by taking सुरभि as an adverb the cloud, no doubt, becomes the cause of the tilling and the fragrance of the ground. But that he should be the cause does not, however, necessarily require that he should himself till the ground, he is the cause in so far as he indicates the season when farmers should cultivate the soil Again, his reading, too, is objectionable, for if सुरभि be taken as an adjective, it would mean that the ground is fragrant before the fall of rain while the fact is that the fragrance is the joint product of the tilling of the ground and the sprinkling of it with drops of rain-water

Val has the following remark on this — “हलोत्क्रुष्टा हि भूर्जलक्ष्णं जलगतिकरात्सुरभिर्भवति” *Kalyā* also has the same — “सद्यसीरोत्खातं हि भूमिरभिनवजलबिंदुसिक्ता सुरभिगन्धा भवतीति भावः.”

माल &c *Malh* takes *Māla* to be the name of an elevated hilly spot But other commentators interpret it in the following ways — मालं—क्षेत्रसमूहं । मालाख्यं देशः वा । वनभूमिः वा *Sāro*, मालं—मालाख्यं देशः । “मालं देशे वनेऽप्युक्तं मालं ग्रामान्तराटवी । माल मालवदेशे च वसतेर्भूमिरुर्ध्वका ।” *Su*, मालं—मालमुद्गरं क्षेत्रं । *Val*, मालं—ग्रामान्तराटवी । *Lakshmi*; मालं—ग्रामान्तराटवी । मालाभिधानं देशमारुह्य । *Meghalatā*, मालं—वनभूमिं

Avachuri, माल—मालवदेशमारुह्य। *Avachuri* This district lies west and south-west of Bengal. Wilson, however, takes *Māla* to be the name of a town called *Mālā*, a little to the north of *Rattunapur*, the chief town of the northern half of the province of *Chhatrisagar*.

किञ्चित्पश्चात् &c. This is interpreted otherwise as follows — “ किञ्चिन्मनाक् पश्चात्पश्चिमभागाश्रितं माल आरुह्य = ascending *Māla* situated a little westward ” *Sāro*

किञ्चिन्मनागारुह्य पश्चादनतरं उत्तरेण व्रज—“ascend (*Māla*) a little then go to the north ”

But as *Mull* has given no direct reason why the cloud should turn to the west, we may be allowed to take “किञ्चित्पश्चात्” in the sense of “after a little while.”

व्रज लघुगतिः &c. *vl* प्रवलय गतिं—गतिं प्रवलय व्यावर्त्तय । मालं हि दक्षिणाग्रास्थं तेन चोत्तराग्रा गंतव्येति गतिप्रवलयन. *Val.*

अथ एवोत्तरेण &c. *Sāro*, *Bha*, *Sanā*, *Rām*, Wilson and others read — “ किञ्चित्पश्चाद्व्रज लघुगतिः किञ्चिदेवोत्तरेण, ” and explain it as — “लघुगति. शीघ्रगति. सन् किञ्चिदपि पश्चात्पश्चिमेन किञ्चिदुत्तरेण व्रज गमिष्यसि । *Bha.*”

Mahima omits this verse

लोचनैः पीयमान &c. *Cf.* “ अमु युवानं । दृशा पपुस्ता. सुदृश. समस्ताः । ” *Nav* VIII. 1. “ चक्रे शक्रादिनेत्राणा स्मर. पीतनलश्रियाम् ” । *Nav* XVII. 18. “ तमेकदृश्यं नयनैः पिबन्त्यः । ” *Ku* VII 64.

(XVII) आम्रकूट. &c. This must be the mountain now known as *Amarakantaka* from which the *Narmadā* and other rivers spring and which form the eastern part of the *Vindhya* mountain. The word आम्रकूट signifies — “ the mountain with its summits abounding with mango trees.” (See the next verse). But *Sāro* and others interpret आम्रकूट as — “आम्रगणं कूटो राक्षिर्यत्र सः A mountain which is densely covered over with mango trees.”

अध्वश्रमपरिगतं &c. *Sāro* remarks on this as — “अनेन विश्रामदाना-ईत्वमुक्त.” For the last two lines of this verse *Mahim.* reads last

two of the verse (1) given in the appendix and for the first two lines of this, *Val* reads the first two lines of the verse (1) in the appendix.

प्राप्ते मित्रे &c *Cf.* “आपदि येनोपकृत येन च हासितं दशामु चान्त्यासु । उपकृतपकृतपि च तयोर्धिसु पुरुष पर मन्ये.” *Pan* I 336 (XVIII) काननाम्रै &c *Sáro* explains this as—‘अरण्यचूतवृक्षैः । यद्वा । काननरूपता प्राप्तेः आम्रैः आश्रवणैरित्यर्थः’ ।

स्निग्धवेणीसवर्णे &c *Sáro*, *Su*, and others explain ‘स्निग्ध’ as कान्तिमत् shining, brilliant’

अमरनिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां &c On this *Sáro*, *Mahm*, and others thus remark —

‘तर्हि मिथुनमिति कथमुक्त । यतो न किञ्चित्थाविध स्त्रीणा स्तन-दर्शने कौतुकं सम्भाति । सत्यं स्तनैकत्वेन तासामपि प्रेक्षाकौतुकमुपपन्न-मेव’ ।

For a mountain spoken of as the breast of the earth, *Cf.* स्तनाविव दिगस्तस्या शैलौ मलयदर्दुरौ । *R* IV 51.

(XIX) तोयोत्सर्गद्गुनतरगाति &c ‘जलदा हि सलिलदानेन शीघ्र गच्छन्तीति प्रसिद्धं’ । *Val*.

रेवा &c This is another name of the *Narmadā*, one of the holy rivers of India. From *Amrucuta* where this river has its source, on the same spot with the *Sone* and *Hatsu* to the gulf of *Cambay*, where it disembogues itself into the sea, the channel of the *Narmadā* is confined by a range of hills, or by a tract of elevated ground, in which numerous rivers take their rise, and by their subsequent course towards the *Sone* and *Jamna* on one side, and towards the *Tapti* and *Ooliver* on the other, they, says Wilson, sufficiently indicate the superior elevation of that tract through which the *Narmada* has forced its way. नर्मदा rises in one of the Vindya mountains called आम्रकूट or more commonly अमरकंटक in the province of गोडवन, and after a westerly course of about 800 miles falls into the sea below Broach. *Sáro*, *Mahm*. and others have the following annotation on this — “गगास्नानेन यत्पुण्य तद्रेवादर्थनेन च ॥ यथा गगा तथा रेवा तथा देवी सरस्वती ॥ मम पुण्यफलं प्रोक्तं रत्नानादर्शनविन्ननैः” ॥

विन्ध्यपादे &c This is one of a class of seven mountains which are supposed to exist in each division of the continent, their names are — 'महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमान् ऋक्षपर्वतः । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च समैते कुरुपर्वताः' ॥ वन्ध्य or वन्ध as most of the commentators read, constitutes the limit between upper India and the Deccan. The most ancient Arian writers, as Wilson says, assign it as the southern boundary of the region which they denominate आर्यभूमि or आर्यावर्त. Modern authors, in like manner, make this the line which discriminates the northern from the southern nations of India. It reaches almost from the eastern to the western sea; and the highest part of the range deviates little from the line of the tropic. The mountainous tract, however, which retains the appellation, spreads much more widely. It meets the Ganges in several places towards the north, and the *Godāvarī* is held to be its southern limit. Sanskrit etymologists deduce its name from a circumstance to which we have just now alluded. It is called वन्ध्य, says the author of a commentary on the *Amara*, because the people think (ऽयावन्ती) the progress of the sun is obstructed by it. Suitably to this notion, the most elevated ridge of this tropical range of mountains is found to run from a point that lies between *Chhota Nagpore* and *Palamu*, to another that is situated in the vicinity of *Ougein*. According to a legend, the *Vindhya* mountain, being jealous of the mount *Meru* (or *Himalaya*) demanded that the sun should revolve round himself as about *Meru*, which the sun declined to do, whereupon the *Vindhya* began to rise higher and higher so as to obstruct the path of the sun and moon. The gods being alarmed sought the aid of the sage *Agastya*, who approached the mountain and requested that by bending down he would give him an easy passage to the south and that he would retain the same position till his return. This *Vindhya* consented to do (because according to one account, he regarded *Agastya* as his teacher), but *Agastya* never returned from the south, and *Vindhya* never attained the height of *Meru*.

विशीर्णा &c. For the river whose stream is obstructed by rocks

occurring in its way Cf 'नद्या इव प्रवाहो विषमाशिलासकटस्खलितवेगः । विन्नितसमागममुखो मनसि शयः शतगुणीभवति' ॥ *Vi*. III 8

(XX) तिक्तै &c *Mall* notices another sense of तिक्त=कषाय, 'pungent, bitter' So do *Sa'ro* and others

जम्बूकजप्रतिहतरय &c *Sa'ro* has the following remark on this —
अनेन कषायतोयोपपत्तिं भयवा प्रवाहस्थिरत्वकथनं

अन्तःसार &c Here *Su* and others take सार='water'

तुल्यितु &c *Sa'ro* and others say —तुल्यितु=आन्दोलयितु *Su*, says, पराभवः कर्तुं and *Val* says —परिच्छेत्तु

रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय &c *Su*, *Val*, *Mahm* and *Sa'ro*. explains this line as सर्वोऽपि यः कोऽपि रिक्तः क्षीणविभवः स लघुरनादरणीयः पूर्णता गौरवाय समृद्धिरादरार्थं सर्वस्य भवतीति । उक्तं च । "गुणयुक्तोऽप्यधो याति कूपरिक्तो घटो यथा । गुणहीनोऽपि संपूर्णो जैनः शिरसि धार्यते" ।

(XXI) नीप, कन्दली, &c. The blossoming of the *Kadambaras* and the budding of *Kandalis* accompany the advent of the rainy season Cf —'आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगान्माक्षिणोद्यच्च विभिन्नकोशैः । विडम्ब्यमानानां नव-कन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः' *R*. XIII 29. 'आरक्तराजिभिरियं कुसुमैर्नवकदलीसलिलगर्भैः । कोपादतर्बाण्ये स्मरयति मां लोचने तस्याः' ॥ *Vi*. IV. 5 'सीमते च त्वदुपगमजं यत्र नीप वधूना' *Me*. II 2. असलम्बिकुटुजाशुन-सजस्तस्य नीपरजसाङ्गरागिणः' *R*. XIX. 37.

जम्भारण्येषु &c Here *Pârsvâ*, *Sâro*, *Lakshma*, *Mahm*, *Su*, *Val*, *Bha*, *Sanâ*, *Hara*, *Râm*, *Wilson*, and fourteen other MSS. read दग्धारण्येषु. *Mall* notices this but from the way in which he explains it he does not appear to attach any importance to it The reading which he prefers here is, however, faulty for the following reasons—(1) Sanskrit idiom requires either the addition or the omission of one च, as there are three gerunds here to be connected (2) The word अधिक in अधिकसुरभि has no propriety (3) The gerund जम्भ्वा occurring in the second half of the verse is rather remote from its object कदली. which is in the first half All these objections are obviated by adopting the reading दग्धारण्येषु (1) Then only two gerunds remain in the verse and they are joined by that च which comes after आप्रायः The first च serves to connect नीप with कन्दली both of which are the objects of दृष्ट्वा (2) The forest ground is made more fragrant by the burning of the forest, and thus अधिक gains propriety (3) The gerund जम्भ्वा being abandoned no room is left for the third objection

सारङ्गाः &c. *Sâro*, *Mahm*, *Lakshma*, *Su*, and others derive this

५५—सारं मधुर गायन्तीति सारगा ध्रमरा. । सार शीघ्र गच्छन्तीति सारगा हरि-
णा. । सारं सलील गच्छन्तीति सारगा गज्जा. । सार जलं याचन्ते इति सारगाश्वा-
तका । *Malli* takes the word to mean elephants or antelopes The
mention of the former in connection with *Kadamba* trees and fra-
giant forest grounds is frequently found in *Kālidāsa's* works, while
this word is often used by the author in the latter sense. *Sāro.*
interprets the word as *Châtakas* for this reason.—भूचारिणां वारणह-
रिणानां गगनचारिणो मेघस्य मार्गोपदेशकथनमयुक्तमित्यादि But it is not
satisfactory as the *Châtakas* are mentioned in the very next verse
which (by the bye) he does not consider as an interpolation
Su interprets it as peacocks, but no lexicons in our possession give
this sense of the word and the mention of peacocks being made in
verse 23rd is tautologous here.

गवमात्राय चोर्व्या —सारगा &c *Cf* “ करीव सिक्तपृष्ठैः पयोमुचां । शुचि
व्यपाये वनराजिपल्वल ” । *R.* III ३.

जललवमुच &c The reading नवजलमुचः for this, is more appro-
priate as the phenomena described here are usually the effects of
new rain-drops.

(XXII) अम्भोविन्दु° &c. This verse is rightly regarded by
Mallinātha as an interpolation, because it contains no new idea.
All the ideas given here have already occurred in the previous
verses (*vide* 9,14, &c). It is also omitted in *Pārsvā.* and by
Ṭallabha, C1 and M.

सिद्धा. &c See note on verse 14

सध्रमालिगितानि &c *Cf* “ सपदि वारिधरा रवभीरवः । प्रणयिनः परिरब्धुम-
थागना । ववल्लिरे वल्लिरेचितमध्या. । ” *S.* VI ३८

सोत्कण्ठानि &c On this *Sāro* and *Mahima* have the following
remark — “ अन्यमनस्कानां सिद्धानां त्वरीयगार्जितमाकर्ण्य सजातसध्रमाणां
वह्मभवनितानां चादुशतदुर्लभान्यपि स्वयमहाश्लेषसुभगानि गाढोपशूढानि अकस्मा-
दयत्नसाध्यानि भविष्यन्तीति ” ।

(XXIII.) मत्प्रियार्थ. &c This admits of a double interpretation
given in *Sāro* as well as by *Mahima*, which is as follows — “ नक्षी
टकार्यसाधनार्थ—अस्मत्प्रियासदेशकथनार्थ वा ” ।

ककुभसुरभौ &c On this *Sāro.* has the following annotation.—“ व-
र्षवर्मवर्णनद्वारेण शिखरिणो रमणीयता कथिता ” ।

शुक्लपानैः &c The wild peacock is, as Wilson says, exceedingly
abundant in many parts of India, and is especially found in mar-
shy places The habits of this bird are, in a great measure, aqua-
tic, and the setting in of the rains is the season in which they pair
The peacock is therefore always introduced in the description of
cloudy or rainy weather, together with the cranes and *Châtakas*

whom we have already had occasion to notice Cf “नवाम्बुमन्ताः शिखिनो नदन्ति मेघागमे कुन्दसमानदन्ति ” । *Ghatakarpura* “शिखिकुलकलकका एव रम्या वनान्ताः । सुखिनमसुखिन वा सर्वमुत्कण्ठयन्ति ” ॥ *Bhartrihari*

सजलनयनैः &c “सजलनयनत्वमत्र चिरेण मित्रालोकनात् ” *Val* “चिरकालेन सुहृदालोकनाद्वाष्पवारितनेत्रैः । एतदेव सखित्वं यच्चिरेण सुहृदृष्टेन बाष्पाविर्भावो भवति ” *Mahima* After this stanza G2. reads “अम्भोबिन्दु &c ”

(XXIV) केनकैः सूचिभिर्नैः &c On this *Sâro* has the following annotation — “सूचिलक्षणसघातेभ्यः स्फुटितैः विकसितैः अनेन तेषां खण्डमण्डितत्वमुक्तं ” । *Mahima* and others say:—सूचिभिर्नैः = क्षुद्रकण्टकव्याप्तैः । *Val* says — सूच्या गर्भे कण्टकेन भिन्नविद्यारतैः । तेषां ह्यन्तस्थां सूचि भित्त्वा विनिर्यान्ति । *Su.* says — अर्धविकसितैः । Cf “प्रतिभान्त्यद्य वनानि केतकानां ” । *Ghatakarpura* a. 15.

गृहबलिभुजां &c *Mall* takes this to mean ‘crows and other domestic birds ’ *Su.* and *Mahima.* explain it thus — “गृह कलत्र तदानीं बलि भुजत इति वकाश्चटका वा = cranes and sparrows ” *Sâro* explains it as — “गृहबलिभुजां = चटकादीनां । यद्वा । गृहेषु बलिभुजः काकान्ते वकोट इत्यपि केषाचित्समत । एतेन अहिंसाजनिताभिरामाणां प्रतिपादनं ” ॥ The birds mentioned, as Wilson says, in the text by the epithet गृहबलिभुज are the cranes. The term signifies, “who eats the food of h.s female,” गृह m. commonly a house, meaning, in this compound, a wife At the season of pairing, it is said the female of this bird assists in feeding the male, and the same circumstance is stated with respect to the crow and the sparrow, whence the same epithet is applied to them also On this we remark that the word गृह may by synecdoche, mean गृहिणी = “the lady of the house,” but whether the word गृहिणी may with propriety be applied to a female-crane is very doubtful.

‘वनान्ता’ &c *Mall* explains अन्त as रम्य ‘lovely’ and supports it by quoting शब्दार्णव. But the natural sense of अन्त ‘border or region,’ suits here better and the word (as compounded with वन) is generally used by Kâlidâsa in this sense, Cf “वशिष्ठधेनोरनुयायिन तमावर्तमान वनिता वनान्तात्” । ‘सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुर्वृत्तः स नौ संगतयोर्वनान्ते’ । *R* II 19. 58 “विदधति भयमुच्चैर्विदधमाणा वनान्ता ” । *R* I 22 “अमति पवनधूत सर्वतोऽग्निरवनान्ते ” । *R* I 26 “नवसलिलनिषेकाच्छान्ततापो वनान्तः” । *R* II. 24 Besides *Mallinatha*’s interpretation is open to the fault of violation of symmetry. *Sâro* explains अन्त as मध्य *Su* and *Mahima.* explain this as अग्रभाग and further on they say, “वा अन्तशब्दः स्वरूपवाचकः ” । वर्षाकृतौ हि जम्बूवनानि अत्यन्तदृश्यानि दृश्यन्ते । *Val* has

the following annotation on this, he says:—"कथंगानीव हि जम्बूफलानि पाकेन श्यामायन्ते" । *Lakshmi* says—"जम्बूवनान्ता जाम्बूवनप्रदेशाः"

Val, *Bha*, *Sanâ*, *Râm*, *Hara*, *Wilson* and others read — फलपरिणतिश्यामजम्बूवनान्ताः and explain as — "फलानां परिणत्या पाकेन श्यामाः कृष्णा जम्बूवनान्ताः जम्बूवनानि यत्र ते तथा" । *Cf* "फलभरपरिणाम-श्यामजम्बूनिर्कुजस्खलिततनुतरगामुत्तरेण स्रवन्ती" ॥ *Mal.* IX.

चैत्या &c. According to *Sâro*, *Mâhima*, *Su*, and others — पृथ्व्यापादाः पिप्पलादयो देवतायतनानि वा and further on they say, "चैत्यं बुद्धाण्डजेष्वयुक्तं देवतायतने तथा" । ग्रामेषु हि प्रतिगृह प्रांगणे पिप्पलप्रभृतयः पूजार्थं लोकैरारोप्यन्ते । On this *Vallabha's* annotations are — "चैत्यं बुद्धालयः । यदि वा महाभोगप्रज्ञातनभोवनस्पतिचैत्यः । *Lakshmi* has the following — "चैत्याः पूजिता वृक्षा जिनगृहाणि वा येषु ते" । *Meghalata* and other *Jama Avachurus* have the above interpretation for this. The word चैत्य is derived from चिता or चित्या "the funeral ground or place;" it is an old custom among the Hindus to bury *Sannyâsins* on a river-side by the foot-path or road and to plant a पिप्पल or वट tree on their graves Round these trees they build a raised square of stones with a small temple of Siva or Hanumân. It is generally known in Marathi as, पिपळाचा पार or वडाचा पार And hence चैत्य means 'a sacred tree', 'a religious fig tree, &c.', growing in a village or near it, and held in veneration by the villagers. A number of trees, as *Pro Wilson* observes, receive particular veneration from the Hindus; as the Indian fig, the holy fig-tree, the Myrobalan trees, &c In most villages there is at least one of these, which is considered particularly sacred, and is carefully kept and watered by the villagers, is hung occasionally with garlands, and receives the प्रणाम or venerative inclination of the head, or even offerings and libations.

सप्तत्यन्ते &c *Sâro*. says, सप्तभिर्भाजो भविष्यन्ति.

कतिपयदिन &c. 'For some days, &c'. because as *Sâro* and *Mahima*. say—ते हि तूर्णं प्रतिष्ठसवोऽपि सुखवासलालसास्त्रिचतुराङ्गासखनिवल्बमाना मानस प्रति प्रयान्ति, यावद्मन्मोहरः प्रसूतनारन्ध्रजलधाराधोरणीभिरभिनवजलान्यानयति तावत्तत्र हसावस्थानं युज्यते । 'For a few days, only, &c.', because *Val.* and *Su.* say.— जलमालिन्यात्—मेघालोके मेघभयाद्वा ते मानसं गच्छन्ति

दशार्णाः &c *Bharata* and other commentators derive this word as. दशन् ten', 'and ऋण 'a strong-hold', meaning 'the district of the ten citadels'. दशार्ण is the name of a country lying south-east of मध्यदेश in the centre of Hindusthâna. In the स्मृति of Manu, the position of Madhyades'a is described as — "हिमवद्भिर्धियोर्मध्यं यत्प्राग्निवशनादपि । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ।" *Manu.* II. 21. दशार्णा is the

name of a river rising in the Vindhya hills, the ancient Dosarene. It may correspond, as Pro. Wilson says, with the modern district of *Chhatisagada*. This country is the eastern part of *Mālvā*. It is watered by many rivers, *Vetravati* being the fore-most of them.

(XXV) विदिशालक्षणां &c *Vidisa* is described here as the capital of the district of *Das'ârna*. It appears, as Wilson says, to be the modern Bhilsâ in the province of *Mālvā*. It is situated on the river *Vetravati* (See below). On this *Sâro* has the following annotation:—“यदि वा विदिशाभिधाना धुनी प्रसिद्धा सैव लक्षण अभिज्ञान यस्यास्तां तयोक्तां पुरोवर्तिनी” । *Su* quotes here a passage from शब्दार्णव. He says “प्रधाननगरी राज्ञां राजधानीति कथ्यते” ।

यत्तत् &c Here *Pârsvâ*. and a few others read यत्त and it is preferable as it makes the last sentence adjectival to the first.

वेन्नवत्याः &c This river is the modern *Betwâ*. It rises, as Pro. Wilson says, on the north side of the *Vindhya* chain and pursuing a north-easterly course of 340 miles, traverses the province of *Mālvâ* and the south-west corner of Allahabad, and falls into the *Yamunâ* below Kalpee. In the early part of its course, it passes through Bhilsâ or *Vidisa*.

मुखमिव &c On this *Sâro* has the following remark — ‘यथा कश्चि-त्कामी केषांचिद्देशानां राजधानी भूत्वा सद्यो नृपवरै रक्षिताया कस्याश्चित्कामिन्या रसनेन्द्रियप्रह्लादकार भूविलासभंशुर मुखकमलस्याविरत चुम्बन विधाय कामिभावस्य भुजगताया अविकल पूर्ण फल लभते.” *Su* has.—“यथा कामिन्या मुख कामी सभूभंग सशीत्कार पिबति तथा त्वमपीत्यन्वयः” *Vallabha's* annotations are.—कामी हि कामिन्याः कुटिलभ्रूवक्त्र स्वादु पिबति” *Mahma* —has “यथान्योऽपि धन्यो विलासी कामी भवति स वेन्नवत्या नायिकाया कामिन्या मुख पिबति. Another has.—अन्योऽपि यः किल कामी कस्याश्चित्कामिन्या मुख पिबति स खलु मणितध्वनितमुखरकण्ठो भवति”

स्तनितसुभग &c On this *Sâro* has the following remark — “अन्तर्मध्ये यत्स्तनित रतिकूजित तेन सुभग मनोज्ञ” *Val*. has — “स्तनितेन पक्षिकूजितेन स्वलितेन वा सुभग सुदूर” *Su*. has.—“नदीतीरोपान्तस्वलित हि पानीय सशब्दं भवति &c *Cf.* “तस्य च राज्ञः कलिकालभयपुञ्जीभूतकृतयुगानुकारिणी त्रिभुवनप्रसवभूमिरिव विस्तीर्णा मज्जन्मालवविलासिनीकुचतटास्फालनजर्जरितोर्मिमालया वेन्नवत्या परिगता विदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत्” । *Kâ* I

(XXVI) नीचैराख्य &c *Nichais* is the name of a mountain near *Vidisa* so called from its being of little elevation. *Cf.* *Sâro*, *Su.*, and others—खर्वनामान-वामनगिरि-खर्वाभिधान &c On this *Val* has the following annotation.—“आख्यया नीच स्वरूपतस्तूचामिति भावः”

विश्रामहेतोः &c On this *Val*. has the following remark.—“विश्रामहेतोः कवीनां प्रमादजः”.

रतिपरिमलोद्गारिभिः &c On this *Val.* gives the following quotation :— “सुरते स्यात्परिमलः” इति वैजयन्ती But *Sâro.* has— “तद्वपुस्सिन्धु-
न्दनादिविमर्शोत्थद्वयगन्धस्तमुद्गिरन्ति ”

पुलकितमिव &c On this *Sâro* has the following remark:—“अन्यस्या-
पि सुहृदालिग्नैः पुलककालिका समुत्पद्यते ” The erection of the hairs of
the body is, says Wilson, with the Hindus, constantly supposed to
be the effect of pleasure or delight.

(XXVII) वननदी &c There is, as *Sâro* says, a river of this name
in *Mâlva* Cf “अथ वा मालवेदेशे यूथिकाखण्डमण्डितोद्यानमालिततीरदेशा व-
ननदी नाम्नी सरिदस्तीति ” *Mallinatha*, however, takes the word वनन-
दी to signify the name of ‘many forest rivers’ The other readings
of the name of this river noticed by *Val*, *Lakshmi.*, *Su*, *Samâ.*,
Râm, *Mahima* and other *Jaina Avacharies* are नगनदी and नवनदी
The former may have been the name of a river west of the Betwa
which, as Wilson says, is now known as the *Parvatî* Both these
names bear a similar import and may therefore be the synonyms of
the same stream

वननदीतीरजातानि सिञ्चन् &c *Pa's'vâ.* reads वननदीतीरजानां निषिञ्चन्
which seems better as the locality of the *Udyânas* is thereby made
more definite.

यूथिकाजालकानि &c *Sâro* paraphrases this by मालतीकदम्बानि and
further on it remarks, ‘तानि स्थलजलसिक्तानि स्फुटन्ति । असुना संभोगयो-
ग्यस्थानकथन ’

क्षणपरिचित. &c On this *Sâro* has the following annotation, “आ-
तपमतिवेधात्क्षणप्रणयी *Val* has—सुहृत्तापापहारात्

पुष्पलाव्य. = पुष्पाणि लुनन्तीति पुष्पलाव्य = मालाकारागनाः । The use of
gallands, says Wilson, in the decoration of the houses and temples
of the Hindus, and of flowers in their offerings and festivals, fur-
nishes employment to a particular tribe or caste, the *Mâlâhâras* or
wreath-makers The females of this class are here alluded to. Cf.
in Marathi “माळिणी ”

(XXVIII.) उज्जयिन्या &c This was the capital of the country
called *Avantis*. It has been the place of great note from the earliest
period of Hindu tradition down to the present day. It is supposed to
have been the residence of our poet and the capital of his celebrated
patron, the *Harshavikramāditya*. It has many other names as विशा-
ला, अवन्ती, अवन्तिका and पुष्पकरण्डिनी It is also one of the seven
sacred cities of the Hindus, and the first meridian of their geogra-
phers, from which they calculate longitude, the modern उज्जयिनी is
about a mile south of the ancient city. Hwen Thsang describes

the capital of *U-sho-yen-na*, or उज्जयिनी, as 30 *h*, or 5 miles, in circuit, which is only a little less than its size at the present day. The kingdom was 6000 *h*, or 1000 miles, in circuit To the west it was bounded by the kingdom of *Mālvā*, with its capital of धारानगर, or धार, within 50 miles of उज्जयिनी The territory of *Ujain*, observes Cunningham, could not therefore have extended westward beyond the Chambal river, but to the north it must have been bounded by the kingdoms of मयुरा and जहोती, to the east by महेश्वरपुर, and to the south by the Sātapudā mountains running between the Narmadā and the Tapti. Within these limits, that is from Ranthambhāwar and Barhānapur on the west, to Damoh and Seoni on the east, the circuit of the territory assigned to *Ujain* is about 900 miles The kingdom of उज्जयिनी was under the rule of a Brahmana Rāja, like the two neighbouring states of जहोती and महेश्वरपुर, but the king of Jajhoti was a Buddhist, while the other two kings were Brahmanists

सौत्रोत्सर्ग° &c On this *Sāro*, *Mahima* and other Jaina commentators have the following explanation, they say, “ सौधानां सुधाधवन्ति-सद्यनां ” &c

पौरांगनानां &c *Sāro*. says, “ पौर्यश्च ता अगनाश्च तासा विदग्धवन्तिनां ”

वचितोऽसि &c Here *Pārsvā*. reads “ वचित स्या ” which is equally good On this *Sāro* and others have the following illustration, “ सुभाषितेन गीतेन युवतीनां च लीलया । यस्य न द्रवते चित्तं स वै सुस्तोऽथवा पशुः ” ॥

Bha, *Sanā*, *Rām*, *Hara.*, *Kalyā* and others explain it by adding, “ of the object of your life ” That is, if you have not seen these beauties, you might as well have been blind, or not have existed at all.

(XXIX) निर्विन्ध्याया &c This must be the name of one of the small rivers that flows between the *Parvatī* and the *Siprā* mentioned below It springs from the Vindhya mountain and flows northward. *Val* derives this word as — निर्गता विन्ध्यादिति निर्विन्ध्या *Malh* says, निष्क्रान्ता विन्ध्यान्निर्विन्ध्या On this *Sāro* has the following annotation, “ यथा कश्चित्कामी निर्विन्ध्याया सफलप्रार्थनाया नायिकाया रसाभ्यन्तर सन्निपत्य दृगाररहस्यमुपभुज्य मार्गे गच्छति । अन्यापि या किं कामिनी कस्मिन्नापि कामुक्ते बद्धाभिलाषा भवति सा तद्दर्शनात्क्षोभस्तनितकाञ्चीगुणा स्यात् स्वलितललित च ससर्पति आवर्तोपलक्षितां नाभिं दर्शयति । उत्तमस्त्रीणां हि नाभेर्दर्शनं वक्षिणावर्तः प्रशस्यते । कामुकोऽपि तस्या प्रकाशितस्वचेष्टितसानुरागाया रसोऽनुरागस्तस्यभ्यन्तर रहस सन्निपतति सश्रयति सभोगसर्वस्वमुपभुक्ते इत्यर्थः । तथा चोक्तं । “आकाशैरिगितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च । नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ” इति । *Su.* has “ स्त्रियो हि सुरतसभोगाभिलाष विभ्रमैरेवाविर्भावयन्ति न च वचनमात्रेण

वदन्तीति भावः । *Val.* has the following:—“अत्र चावर्तनाभिदर्शनादिके विलासे प्रवृत्त एव । स च नायिकया नद्या नायके मेघे कृतमिति सर्वमनवद्यम्.” *Mahima* explains as, “अन्यापि कामिनी किं कस्मिंश्चित्कामिनि बद्धाभिलाषा भवति सा तदभिलाषात्स्खलितसुभग गच्छति नाभिप्रदेशं दर्शयति । उत्तमस्त्रीणां हि नाभिर्दक्षिणावर्त्तो प्रशस्यते । युवतयो हि तदनुरक्तान्तर्वृत्तं सुरताभिलाषं विधैरेवमविर्भावयन्ति तदनु वचसा प्रार्थनां विदधतीति भावः । उक्तं च । “स्निग्धं दृष्टिपथं विभूषिततनुं कर्णस्य कण्डूयन । नाभिदर्शनमुत्पद्य च [अग्रतश्च] गमनं बालस्य चालिगन । केशानां च मुहुर्मुहुर्विवरणं वार्ता च संख्या सह [निश्चयस्य चान्तरणं] । कुर्युः प्रीतिवशात् स्त्रिय [कुर्वीरन्विवशा स्त्रियः] समदना दृष्ट्वा नरं वाञ्छितं ॥ दृष्ट्वा करोति हसितं मुखमुन्नमय । प्रभ्रशकं क्षिपति केशविबन्धलुप्तान् । नारी स्तनौ च जघनं च नितम्बविम्ब । सदृश्यत्यभिमुखी चलचिन्तवृत्तिः ॥ स्त्री कान्तं वीक्ष्य नारीं प्रकटयति मुहुर्विषिपन्ती कटाक्षान् । क्षीरं दर्शयन्ती रचयति कुसुमापीडसु-स्निग्धपाणि रोमाचस्वेदजभा श्रयति कुचतटभ्रंशं वक्षः विधत्ते । सौत्कण्ड्यं वन्ति नारीं शोथिलयति दशत्योष्टमगं भनन्ति ॥”

‘स्तनित’ &c Four MSS. in our possession read ‘क्वणित’ for ‘स्तनित’ which appears to be a better reading, for स्तनित is generally applied to ‘the rattling of thunder, rumbling of thunderclouds’ Cf. verses 22, 25, 41 पूर्वमेघः 36, 37 उत्तरमेघः while क्वणित is generally found in the sense of ‘juggling, tinkling of a bell or anklet’; it may also mean ‘to hum or warble,’ Cf. *H.* II. 86, *Amaru.* 28, *R.* III. 24, *Ku.* I. 54, *Utt.* III. 24, *Bk.* VI. 84

(XXX.) ‘सावतीतस्य’ &c Here *Pars'vâ.*, *Lakshmi*, *Mahima*, *Sâro*, *Val*, *Su*, *Bha*, *Sand*, *Râm*, *Hara*, *Kalyâ*, *Wilson*, and thirteen other MSS. read तामतीतस्य, which *Mallinatha* also notices but rejects as he says no river of this name exists there. But from the History of Râjasthâna by Todd we learn that there is a river named the little Sindhu which springing from Devas and passing along with many other minor streams by Oujein falls into the Chambal, or it may be the Kâli-Sindhu which springs from Bangi and also falls into the Chambal. Thus the reading adopted by *Pârs'vâ.* and the other commentators is more correct than the one adopted by *Mallinatha*.

‘वेणीभूत’ &c On this *Sâro* says, “वेणीबन्धो हि विरहिणीधर्मः”

विरहावस्थया व्यंजयन्ती &c. On this *Sâro* says, “युवतिरपि विरहे वेणीबन्धं पाण्डुता च धारयति.” *Val* has the following:—“प्रियाविरहेण हि नारी तल्लु पाण्डुश्च भवति” *Su.* has — “अर्तुरि दूरे सति स्त्री अशुफितवेणीरूपा पाण्डुवर्णा च भवति भर्तुर्विरहत्वात्”

सुभग विरहावस्थया &c. Three MSS. in our possession read असुभग-विरहावस्थया On this Pro. Isvarachandra Vidyâsâgara says:—“स-स्वप्ने असुभगेति विरहावस्थाविशेषणम्.”

(XXXI) अवन्तीन् &c Ayanti is the name of a country also called मालवक the capital of which is Oujjain. The capital of *Mo-la-po*, or Málvâ, is described by Hwen Thsang as situated to the south-east of the river *Mo-ho*, or Mahî, and at about 2000 *li*, or 333 miles, to the north-west of Bharoch. In this case both bearing and distance, observes Cunningham, are erroneous, as Málvâ lies to the north-east of Bharoch, from which the source of the river Mahî is only 150 miles distant. I would therefore read 1000 *li*, or 167 miles, to the north-east, which corresponds almost exactly with the position of धारानगर, or धार, one of the old capitals of Málvâ. The present town of धार is about three-quarters of a mile in length, by half a mile in breadth, or $2\frac{1}{2}$ miles in circumference; but as the citadel is outside the town, the whole circuit of the place cannot be less than $3\frac{1}{2}$ miles. The limits of the province are estimated at 6000 *li*, or 1000 miles. To the westward there were two dependencies of Málvâ, named *Khodâ*, with a circuit of 3000 *li*, or 500 miles, and आनन्दपुर, with a circuit of 2000 *li*, or 333 miles, besides an independent state, named वडरी, with a circuit of 6000 *li*, or 1000 miles. All these have to be squeezed into the tract of country lying between कच्छ and उज्जयिनी, on the west and east, गुर्जर and वैराट on the north, and वलभी and महाराष्ट्र on the south, of which the extreme boundaries are not more than 1350 miles in circuit. It seems probable, therefore, that the dependencies must have been included by the pilgrim within the limits of the ruling state. I would accordingly assign to Málvâ and its dependencies the southern half of the tract just mentioned, and to *Vadari*, the northern half. The limits of Málvâ would thus be defined, by *Vadari* on the north, *Valabhi* on the west, उज्जयिनी on the east, and महाराष्ट्र on the south. The circuit of this tract, extending from the mouth of the Banâs river, in the रण of कच्छ, to the Chambal, near Mandasor, and from the Sahyâdrî mountains, between Dâmân and Mâlegâm, to the Taptî river, below Barhanpur, is about 850 miles measured on the map, or nearly 1000 miles by road distance. According to Abu Rihan, the distance of the city of धार from the Narmadâ was 7 parasangs, and thence to the boundary of *Mahrâ-das*, 18 parasangs. This proves that the territory of धार must have extended as far as the Taptî, on the south.

Hwen Thsang mentions that there were two kingdoms in India that were specially esteemed for the study of the Buddhist religion,

namely, मगध in the north east, and Málvā in the south-west In accordance with this fact he notes, that there were many hundreds of monasteries in Málva, and no less than twenty thousand monks of the school of the Sammatiyas. He mentions, also, that 60 years previous to his visit, Málvā had been governed for 50 years by a powerful King, named शिलादित्य, who was a staunch Buddhist. See also Buddhist Records of the Western World by S. Beal. Vol II p 261

Of “असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नद्वरे किलचन्द्रनौले । तनिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रज्ञेयान् ॥ अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भेः कश्चिन्मनसो रुचिस्ते । सिध्दातरङ्गानिलकम्पितासु विहर्तुमुद्यानपरम्परासु” ॥ R VI 84—5

उद्यनकथा &c उद्यन was a prince of the Lunar race, and son of सहस्रानिक, who is the hero of a popular story. He was king of वत्स, and is commonly called वत्सराज. His capital was कौशाम्बी, the modern Kosam situated on the river यमुना. This village of Kosam is only 31 miles from the fort of Allahabad. Gen. Cunningham says that the city of कौशांबी was one of the most celebrated places in ancient India, and its name was famous amongst Brāhmans as well as Buddhists. The city is said to have been founded by कुसच, the tenth in descent from पुरुरवस्; but its fame begins only with the reign of चक्र, the eighth in descent from अर्जुन, the son of पण्डु, who made कौशाम्बी his capital after हस्तिनापुर had been swept away by the Ganges. कौशांबी is mentioned in the रामायण, the earliest of the Hindu poems, which is generally allowed to have been composed before the Christian era. The story of उद्यन, king of कौशांबी, is referred to by the poet कालिदास in his मेघदूत, where he says that अवती is great with the number of those versed in the tale of उद्यन. Now, कालिदास flourished shortly after A. D. 500. In the बृहत्कथा, of सोमदेव, the story of उद्यन is given at full length, but the author has made a mistake in the genealogy between the two *Śatānīkas*. Lastly, the kingdom of कौशांबी or कौशाबमण्डल, is mentioned in an inscription taken from the gate-way of the fort of खर which is dated in *Samvat* 1092, or A. D. 1035, at which period it would appear to have been independent of कनोज. And further he says that it is quite certain that the present Kosam stands on the actual site of the ancient कौशांबी, for not only do the people themselves put forward this claim, but it is also distinctly stated in an inscription of the time of Akbar, which is recorded on the great

stone pillar, still standing in the midst of the ruins, that this is कौशावीपुर ” The story of उद्यन or वत्सराज as he is also named is as follows — चण्डमहसेन (or प्रद्योत as he is also called by *Mahmasinha-gana*, *Sumativyaya*, *Sâro* and others,) was a sovereign of उज्जयिनी, who had a daughter named वासवदत्ता, and who intended her to be-stow in marriage upon a king, named सजय In the mean time the princess sees the figure of वत्सराज, sovereign of कुशावती, in a dream and becomes enamoured of him. She contrives to inform him of her love and he carries her off from her father and his rival This story is given in full in कथासरित्सागर and alluded to in मालतीमाधव of *Bhavabhūti*, and वासवदत्ता of *Subandhu* Also compare verse 34 *th*

‘कोविद्यामवृद्धान् &c Wilson explains this as, “great or illustrious by the number of those skilled in the tale of उद्यन ” But the sense which he attaches to वृद्ध being unusual, the interpretation is objectionable Others read ‘ज्ञान’ for ‘ग्राम’ But we object to it on the ground that it renders the word ‘कोविद्’ superfluous

अनुसर &c *Pârsva* reads here उपसर This reading is preferable as the prefix अनु is inappropriate and *Mallmâtha* is, therefore, obliged to pass it over, and explain अनुसर by गच्छ merely.

विशालान् &c One of the many names of उज्जयिनी *Sâro*. and *Val*. derive this thus.— ‘विशिष्टा शाला प्राकारभुवनानि वा यस्यां सा तां तथो-क्तां ’ That it is called here a portion of heaven is in strict keeping with the fame which it enjoys of being one of the seven sacred places They are all enumerated in this verse:— अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका । पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका ॥ *Cf* अस्ती-होउज्जयिनी नाम नगरी भूषण भुव । हसन्तीव सुधाधौते प्रासादैरमरावतीम् । यस्यां वसति विश्वेदो महाकालवपु स्वय । शिथिलीकृतकैलासनिवासव्यसनो हर ॥ *Kathâ* XI. 31—2.

(XXXII) शिप्रा° &c Name of a celebrated river on the bank of which stands उज्जयिनी and which unites with the *Chambal*. *Vallabha* says “सिप्राख्योउज्जयिन्यां नदी ”

स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषाय &c “विकसितपुण्डरीकपरिमलसपर्कसुरभि । एतेन सौरभ्यकथन ” । says *Sâro*

अङ्गात्कूल. &c *Sâro* has the following remark on this ‘ एतेन मान्द्यमुक्त ’

सारसानां &c *Sâro*, *Val*, *Mahm*, and others explain this word by ‘लक्ष्मविहगाना or लक्ष्मणा’ These commentators differ from *Mallmâtha* *Vide* commentary on the same *Cf* रामाणां रमणयिवक्त्र-

शशिनः स्वैरोहविन्दुस्तुतो । व्यालोलालकवह्वरी प्रचलयन् ध्रुवन् नितम्बाम्बरं । प्रात-
र्वाति मधौ प्रकाशविकसद्वाजीवराजीरजो । जालामोहमनोहरो रतिरसग्लानि हरन्मह-
त ॥ *Amarus'atakam* 58.

R. M. read this stanza after 'प्रद्योतस्य' &c and K1 after 'हारान्' &c

(XXXIII.) *Mallinātha* considers this and the following two verses to be interpolations, but they are found in *Pārs'vā* and 24 MSS with a little change in the order This verse is put after 'प्रद्योतस्य &c' while the third is given in the description of *Alakā* in उत्तरमे-
घ and, we think, rightly, as the incident of the battle with *Rāvana* alluded to in the verse has no connection with उज्जयिनी, while it is connected with *Alakā* which, we know, was invaded by *Rāvana* for obtaining the पुष्पकविमान from *Kubera*, the lord of *Alakā*. The third verse is also read by all other commentators in the description of *Alakā* in उत्तरमेघ

(XXXIV) प्रद्योतस्य &c For the story of वत्सराज referred to here *Vide* note on verse 31st

हैम तालद्रुमवनम् &c In addition to what is told before we may add that चण्डमहासेन was fond of hunting and had in उज्जयिनी a forest which might have been full of *Tāl*-trees प्रद्योत is the name of the king of the *Magadhas* whose daughter पद्मावती was also given in marriage to this वत्सराज But the facts mentioned here about the king प्रद्योत or in the story given by कथासरित्सागर, are given in connection with चण्डमहासेन From this it appears that either प्रद्योत has been confounded with चण्डमहासेन or प्रद्योत is but another name of चण्डमहासेन

In the latter inference we are supported by सारोद्धारिणी, महिमसि, हगणि, सुमतिविजय and others They say — 'प्रद्योतस्य = चण्डमहासेनन/स भो राज्ञः' 'प्रद्योतस्य = चण्डमहासेनस्य' 'प्रद्योतस्य = चण्डप्रद्योतनाम्नो भूः of स्य' The story of king चण्डमहासेन as given in कथासरित्सागर runs thus.— "There is in this land a city named उज्जयिनी, the ornament of the earth, that, so to speak, laughs to scorn with its palaces of enamelled whiteness अमरावती, the city of the gods In that city dwells शिव himself, the lord of existence, under the form of महाकाल, when he desists from the kingly vice of absenting himself on the heights of mount कैलास In that city lived a king named महेंद्रवर्मा best of monarchs and he had a son like himself named जयसेन Then to that जयसेन was born a son named महासेन, matchless in strength of arm, an elephant among monarchs. And that king, while cherishing his realm, reflected, 'I have not a sword worthy of me, nor

a wife of good family ' Thus reflecting that monarch went to the temple of दुर्गा, and there he remained without food, propitiating for a long time the goddess Then he cut off pieces of his own flesh and offered a burnt-offering with them, whereupon the goddess दुर्गा being pleased appeared in visible shape and said to him, ' I am pleased with thee, receive from me this excellent sword, by means of its magic power thou shalt be invincible to all thy enemies Moreover thou shalt soon obtain as a wife अङ्गारवती, the daughter of the Asura अङ्गारक, the most beautiful maiden in the three worlds. And since thou didst here perform this very cruel penance, therefore thy name shall be चण्डमहासेन ' Having said this and given him the sword, the goddess disappeared. But in the king there appeared joy at the fulfilment of his desire He now possessed, O king, two jewels, his sword and a furious elephant named नडगिरी, which were to him what the thunderbolt and वृषावण are to India Then that king, delighting in the power of these two, one day went to a great forest to hunt, and there he beheld an enormous and terrible wild boar, like the darkness of the night suddenly condensed into a solid mass in the day time That boar was not wounded by the king's arrows, in spite of their sharpness, but after breaking the king's chariot fled and entered a cavern The king, leaving that car of his, in revengeful pursuit of the boar, entered into that cavern with only his bow to aid him And after he had gone a long distance, he beheld a great and splendid capital, and astonished he sat down inside the city on the bank of a lake While there, he beheld a maiden moving along surrounded by hundreds of women, like the arrow of love that cleaves the armour of self-restraint She slowly approached the king, bathing him, so to speak again and again in a look, that rained in showers the nectar of love She said, ' who art thou, illustrious sir, and for what reason hast thou entered our home on this occasion? ' The king, being thus questioned by her, told her the whole truth, hearing which, she let fall from her eyes a passionate flood of tears, and from her heart all self-control The king said, ' Who art thou and why dost thou weep? ' When he asked her this question, she, being a prisoner to love at his will, answered him, ' The boar that entered here is the Daitya अङ्गारक by name And I am his daughter, O king, and my name is अङ्गारवती And he is of adamant frame, and has carried off the hundred princesses from the palaces of kings and appointed them to attend on me. Moreover this great Asura has become a Rakshasa owing to

a curse, but today as he was exhausted with thirst and fatigue, even when he found you, he spared you. At present he has put off the form of a boar and is resting in his own proper shape, but when he wakes up from his sleep he will without fail do you an injury. It is for this reason that I see no hope of a happy issue for you, and so these tear drops fall from my eyes like my vital spirits boiled with the fire of grief.' When he heard this speech of Angāravatī's the king said to her,—' If you love me do this which I ask you. When your father awakes, go and weep in front of him, and then he will certainly ask you the cause of your agitation, then you must say—If some one were to slay thee what would become of me? This is the cause of my grief. If you do this, there will be a happy issue both for you and me.' When the king said this to her, she promised him that she would do what he wished. And that *Asura*-maiden apprehending misfortune placed the king in concealment, and went near her sleeping father. Then the *Dāitya* woke up and she began to weep. And then he said to her, 'Why do you weep, my daughter?' She with affected grief said to him, 'If some one were to slay thee, what would become of me?' Then he burst out laughing and said,—'Who could possibly slay me, my daughter, for I am cased in adamant all over, only in my left hand is there an unguarded place, but that is protected by the bow.' In these words the *Dāitya* consoled his daughter, and all this was heard by the king in his concealment. Immediately afterwards the *Dānava* rose up and took his bath, and proceeded in devout silence to worship the god शिव, at that moment the king appeared with his bow bent, and rushing up impetuously towards the *Dāitya*, challenged him to fight. He, without interrupting his devout silence, lifted his left hand towards the king and made a sign that he must wait for a moment. The king for his part, being very quick of hand immediately smote him with an arrow in that hand which was his vital part and that great *Asura* अङ्गरक, being pierced in a vital spot, immediately uttered a terrible cry and fell on the ground, and exclaimed, as his life departed,—'If that man who has slain me when thirsty, does not offer water to my manes every year, then his five ministers shall perish.' After he had said this, that *Dāitya* died, and the king, taking his daughter अङ्गरवती as a prize, returned to उज्जयिनी. There the king चण्डमहसेन married that *Dāitya*-maiden, and two sons were born to him, the first named

गोपालक and the second पालक, and when they were born, he held a feast in honour of Indra on their account. Then India, being pleased, said to that king in a dream, 'By my favour thou shalt obtain a matchless daughter.' Then in course of time a graceful daughter was born to that king, like a second and more wonderful shape of the moon made by the Creator. And on the occasion a voice was heard from heaven,—'She shall give birth to a son, who shall be a very incarnation of the god of love, and king of the Vidyadharas.' Then the king gave that daughter the name of वासवदत्ता, because she was given by India being pleased with him. And that maiden still remains unmarried in the house of her father, like the goddess of prosperity in the hollow cavity of the ocean before it was churned. That king चण्डमहसेन cannot indeed be conquered by you, O king, in the first place because he is so powerful, and in the next place because his realm is situated in a difficult country. Moreover he is ever longing to give you that daughter of his in marriage, but being a proud monarch, he desires the triumph of himself and his adherents. But, I think, you must certainly marry that वासवदत्ता. When he heard this, that king of वत्स immediately lost his heart to वासवदत्ता."

नलगिरि & प्रद्योत also had a furious elephant named नलगिरि or नडगिरि, *vide* above note.

Calcutta editions, Wilson's edition and six other MSS omit this stanza.

(XXXV) For the proper position of this verse *vide* note on ३३: d and the verses descriptive of *Alakâ* in उत्तरमेघ.

चन्द्रहास *m* A glittering scimitar, 'deriding the moon,' the name of the sword of *Râvana*.

Bha, *Sana*, *Ra'm*, *Hara Kalya*, *Val*, *Sa'o*, *Pa's'vâl*, *Lakshmi Nemidûta*, Wilson, and twelve other MSS omit this stanza here, and read it in the उत्तरमेघ. *Mahim* reads it after "हरान् & c". Only nine MSS read it here.

(XXXVI) केशसस्कारधूपै & c *Cf* 'धूपोष्मणा त्वाजितमार्द्रभाव केशान्तमन्त कुसुमं तदीयम्' । *Ku* VII 18

बन्धुप्रीत्या & c The peacocks take delight in the appearance of the clouds and therefore they look upon the cloud as their brother *Val*, *Su* and, *Mahima* say—बन्धौ बन्धोरिति वा प्रीत्या.

पादरागाङ्कितेषु & c Staining the soles of the feet, says Wilson, with a red colour, derived from the मेढी, the lac & c, is a favourite practice of the Hindu toilet.

आलोल्लीर्जै. &c. On this *Sāro* has:— एतेन शरीरपाटवावापनमुक्त
धूपै &c *Sāro* says — धूपस्य धूमस्य पयोदध्यायिकत्वाच्चागराणां भो-
गित्ववर्णन

(XXXVII) भर्तु कण्ठच्छवि &c The dark blue of the cloud is compared to the colour of the neck of शिव, which became of this hue upon his swallowing the poison produced at the churning of the ocean. The story is thus related in *Mahimasinhagani's* gloss — “As the Devas and Asuras continued to churn the Ocean more than enough, that deadly poison issued from its bed, burning like a raging fire, whose dreadful fumes in a moment spread throughout the world, confounding the three regions of the universe with its mortal stench, until शिव, at the word of *Brahmā*, swallowed the fatal drug, to save mankind, and from that time he was called नीलकण्ठ, because his throat was stained blue ”

त्रिभुवनगुरो &c On this *Sāro* has the following remark.—शिव-
शक्तिसम्भवत्वात्रिजगत

चण्डीश्वरस्य &c Lit ‘The lord of चण्डी or पार्वती,’ one of the names of शिव : & महाकालेश्वर The other reading adopted by *Bha*, *Sanā*, *Rām*, *Hara*, and *Wilson* here is चण्डेश्वरस्य ‘of the terrible-lord’, i. e. शिव

गन्धवत्या &c This must be the name of a small brook in the vicinity of the temple of महाकाल, in उज्जयिनी

स्नानातिकै &c The word स्नान has an unusual sense, viz per-fumed-powder for the body

धृतोद्यान &c Cf “असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चन्द्रमौले । तन्निष्पक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्विशति प्रदोषान्” R VI, 34

The *Sāro* says that the अलङ्कार of this and the preceding verse is उदात्त — एतयो (because the *Sāro* and the other commentators take these verses to be a युग्म) उदात्तनामालङ्कार । तथाचोक्त । “आशयस्य विभूतेर्वा यन्महत्त्वमनूत्तम । उदात्त नाम त प्राङ्मुखकार मनीषिण ” ॥

(XXXVIII) महाकाल &c Is the name of the temple of शिव in the neighbourhood of उज्जयिनी. Anandoram Borooah in his ancient geography of India prefixed to the third volume of his Practical English-Sanskrit Dictionary says —“ On the north of the *Narmadā* lay *Avanti* with its capital उज्जयिनी, called from the province also अवन्तिपुरी or अवन्ति and विशाला “the great city” (“उज्जयिनी स्याद्विशालावन्ती पुष्पकरण्डिनी” Hemachandra IV 42 The last name I have not met with विशाला occurs in दशकुमार “विशालोप-शाल्ये” and in मेघदूत ३१ प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदप्रामद्वद्भान् । पूर्वोद्दिष्ट-

मनुसरपुरी श्रीविशालांविशालां “*Avanti and Avantipuri are common, e g, in Mr. 1 6*) It’s position on the शिप्रा (“शिप्रया परिक्षिप्ता . . विजितामरलोकद्युतिरवन्तिपूज्यिनी नाम नगरी,” *Ka*.) and similarity of name at once identify it with उज्जयिनी. It’s temple of महाकाल was widely known all over India. Hemachandra gives मालव as a synonym of *Avati* (“मालवा स्थुरवन्तय IV. 22). This is not, however, quite correct as मालव (*Malvâ*), as at present, covered a greater area than *Avanti* and Bâna Bhatta applies it to a neighbouring kingdom on the east, whose capital was विदिशा on the वेचवती (*Betwa*) river (“तस्य मज्जन्मालवविलासिनीकुचतटास्फालनजर्जरितोर्मिमालया...

वेचवत्या परिगता विदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत्” *Ka*) We know from *Ka’lâda’sa* that दशार्ण was the name of this country (see. मे. I. 24 25), through which the दशार्ण (*Dasan*) flows. I identify this town with Bhilsâ which agrees in name and position, four miles from which there is a detached hill with vast remains of antiquity This is probably the “low hill” of *Ka’lâda’sa* (see मे-I 26) According to the उत्तरकाण्ड, it was made over to the second son of शत्रुघ्न about the time of Râma’s death (“सुबाहुर्मधुरालेभे शत्रुघाती च वैदिशम्,” 171-10.) The province of *Avanti* in the time of the *Mahâbhârata* extended on the south to the banks of the नर्मदा (“ततस्तेनैव सहितो नर्मदामभितो ययौ । विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्येन महता वृतो । जिगाय सग्रे वीरावाश्विनेभ्यः प्रतापवान् । ततो रत्नान्युपादाय पुर भोजकट ययौ” *II* 31 10-11) and on the west probably to the banks of the मही (The name of this river occurs in the वनपर्व 222-23. “चर्मण्वती मही चैव मेध्या मेधातिथिस्तथा”¹). On the north of *Avanti*, there was another principality with its capital दशपुर on the चर्मण्वती river (“ततश्चर्मण्वतीकूले जभकस्यात्मज नृप । ददर्श वासुदेवेन शेषित पूर्ववैरिणा” *Mah* II 31-7 “पात्रीकुर्वन् दशपुरवधू-नेत्रकौतूहलानाम् । मे II 51). This may be the modern Dholpur (Vide stanza 51st, notes) This was the capital of रन्तिदेव, whose hospitality is twice described in the *Mahâbhârata* (“राज्ञो महानसे पूर्व रन्तिदेवस्य वै द्विज । द्वे सहस्रे तु वध्यते पशूनामन्वह तदा । अहन्यहनि वध्यते द्वे सहस्रे गवा तथा । . .” वनपर्व 208 8-9 See also द्रोणपर्व ch 67. See also our notes on 49th verse) On the south-west of this kingdom there was another small principality, whose position is fixed by the पर्णाशा (*Punass*) river (“पर्णाशा जननी यस्य शीततोया महानदी . .” द्रोणपर्व 92-45)

On the east of the दशार्णी is the hill of कालजर (*Galenjar*) celebrated for a form of *Siva* called हिरण्यबिन्दु (“हिरण्यबिन्दु कथितो गिरौ कालजरे महान्” *Mah*. III 87-21) South-west of it is Panna, which I identify with *Vâmana’s* पुञ्जागार (See *Parv* IV. 2. 43).

On the east of it was the ancient kingdom of दक्षिणकोसल. Rāmā's mother कौसल्या takes her name from this province ("तद्वयमपि वत्स-प्रवासदुर्नयामानां दक्षिणकोसलेश्वरसुतां देवीमुपेत्य सान्त्वयाम." *Anar Ra'gha* II). कुशावती or कुशस्थली was its capital in the defiles of the *Vindhya*, said to be named after his son कुश ("कुशस्य नगरी रम्या विन्ध्यपर्वतरोधसि । कुशावतीति सा नाम्ना कृता रामेण धीमता" *Rama*. उत्तरकांड 171-4) or more probably from the *Kusa* grass which grows luxuriantly in dry barren soil *Kusa* is, however, said to have returned to अयोध्या after some years' reign, making it over by one account to the great physician सुश्रुत, son of Rāmā's adviser विश्वामित्र ("कथमय कुशस्थलीनाथ । (प्रकाशम्) विश्वामित्रमहामुनेर्यदजनि ब्राह्मण्यलाभापुरा । क्षात्र गोत्रमय तदाहिनृपतिर्दिविश्रुत सुश्रुत । प्रोक्त येन नृणां महाकरुणया चित्र चिकित्सासृत । कीर्तिस्तमविभूषणाश्च ककुभो यद्वाहिनीशे कृता" ॥ ६० ॥ . मञ्जुदेसनरिन्ने एते " *Ba'la Rāmdyana* 18). The return journey is described in the पातालखंड of the पद्मपुराण and the 16th canto of the *Raghuvansa*'s ("मार्गेषिणी सा कटकान्तरेषु वैन्ध्येषु सेना बहुधा विभिन्ना । चकार रेवेव महाविरावा बद्धप्रतिश्रान्ति गृहामुखानि ॥ ३२ ॥ व्यलघयद्विन्ध्यमुपायनानि पश्यन् पुलिन्दैरुपपादितानि ॥ तीर्थे तदीये गजसत्तुबन्धात्यतीपगामुत्तरतोऽस्य गगाम् । अयत्नबालव्यजनीबभूवुर्हसा नभोलघनलोपक्षा ॥ इत्यध्वन कैश्चिद्दहोभिरन्ते कूल समासाद्य कुश सरयवा । वेदिप्रतिष्ठान् वितताध्वराणां श्रूपापपश्यच्छतशो रघूनाम्" ॥ *R. XVI* 31-35) It distinctly mentions the crossing of the *Vindhya* but only distantly alluded by name to the river नर्मदा कुशस्थली was, therefore, north of the नर्मदा but south of the विन्ध्य We must, therefore, look for it somewhere about Jabalpur or somewhere about Rāmnagar in Bundelkhand We have seen that Jabalpur was a different principality. Besides it was a forest during the time of Rāma I would, therefore, identify कुशावती with Rāmnagar or some place near it Its contiguity to both Ayodhyā and Benares favours my conclusion. I say "and Benares," because *Susruta* is said to have learnt medicine there. The only objection is the erroneous distance given by Hsien Tsang But *Vidarbha*, as General Cunningham supposes, cannot possibly be दक्षिणकोसल as the two kingdoms are always separately mentioned in Sanskrit works as, for instance, in the 31st act of the *Ba'la Rāmdyana* From the passage quoted from the *Raghuvansa*, we learn that the Pulindas were the inhabitants of this province. Cannot they be the Bundelas, from which Bundelkhand derives its name? The confluence of the Sona with the ज्योतिरथी (Johul) was a celebrated place of pilgrimage ("शोणस्य ज्योतिरथ्याश्चसगमे निवसञ्शुचिः । तर्पयित्वा पितृन् देवानग्निद्योमफल लभेत्" ॥

वनपर्व 85 8). Cf “एव च क्रमेणावन्तिविषय प्राप्नुः । तत्र च शिप्राजले स्नात्वा श्रीमहाकालदेव च प्रणम्य यावद्ग्रतो गच्छति” । P V.

अत्येति &c Many commentators read अभ्येति here, and explain it as “Till the sun rises to your view” They object to *Mallinātha*’s reading on the ground that the cloud is told in one of the following verses to pass the whole night there and proceed on his journey at the next sun-rise, while *Mallinātha*’s reading states that the cloud should depart thence after sunset. But the objection appears to us to be weak because the cloud is told to depart after sunset, no doubt, but from what? Not from उज्जयिनी, as they suppose, but from the temple of महाकाल, in order to visit and enjoy other parts of उज्जयिनी Again the reading they adopt is open to the objection that the sun being visible when the cloud arrives at महाकाल, by “sunrise” i. e. “the time of his departure in their opinion, they must mean next sunrise,” which requires a word like पुनर् in the text which there is not The following extracts would illustrate what they say “तावत्काले स्थातव्य भानुः सहस्रकिरणो नयनविषय यावदभ्येति । भानुरिति । भानुरस्तमयते इति मन्यन्ते तत्र युक्त । लोकाचारेण संध्यायां गमनस्य निषिद्धत्वात् । तथा अत्रैव “ता कस्याचिद्भवन्वलभौ” इति श्लोके रात्रिनिवासस्य सूर्योदय यावदवस्थानस्य च वक्ष्यमाणत्वात् । *Saro* तावत्त्वया स्थातव्यमासितव्य यावद्भानुरर्कश्चक्षुर्गोचरतां चक्षुर्दृशनत्वमभ्येत्युषात । *Val.* भानु सूर्यो नयनविषय इष्टिगोचर यावदभ्येत्यायाति तावत्ते त्वया मेघेन स्थातव्य स्थेय लोकेऽपि संध्यागमनस्य निषिद्धमिति । *Su* ते त्वया तावत्स्थातव्य यावद्भानुः श्रीसूर्यो नयनविषयमभ्येति लोचनगोचरे चरति । *Mahima*, भानु सूर्यो यावन्नयनविषय चक्षुर्गोचरमभ्येति प्राप्नोति यावन्नास्त गच्छतीत्यर्थः । *Bha*, *Sand.* *Rām*, and *Hara*

यावद्भानुर्नयनविषयमभ्येति सूर्योदयं यावदित्यर्थः । महाकालतीर्थमासाद्य त्वया तत्राहोरात्र स्थातव्यमिति भावः । *Kalyāṇa*.”

संध्याबलिपटहतां &c Wilson observes that there are three daily and essential ceremonies performed by the Brahmanas, termed *Sandhyas*, either from the word सन्धि, ‘junction,’ because they take place at the joinings of the day as it were, that is, at dawn, noon and twilight, or as the term is otherwise derived from सम् ‘with,’ and ध्ये, to meditate religiously’ (सन्ध्यायति सन्धीयते परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या) When the ceremonies of the *Sandhya* are of a public nature, they comprehend the ringing of bells, blowing the couch, beating a चौवडा, &c, and this kind of sound the cloud is directed by the यक्ष to excite, as an act of devotion Cf “देवानां बलिकाले ढक्कापटहादिवाद्यैर्भाष्य” । *Val* “बलिकाले देवानां ढक्कापटहादिवाद्य कार्यः” । *Mahima*.

पादव्यासि &c, 'Lit placing the feet.' A kind of dance called वैशिक, in which measured steps at interval are gracefully placed by the dancing girls having their loins, girded up with jangling zones set with diamonds and with their feet furnished with anklets having tinkling bells "Of देवालयप्रदक्षिणीकरणेन करगृहीतचामरेण वैश्यानां भगवद्गणिकानां कदिमेखला वाद्यन्ति" । *Sa'ro., Val, Sy.* For definition *vide* commentary on the same.

वेद्या &c Derived from विश् Women devoted to finery, because they put on fancyful dresses (वेशा). It is customary with the formers to engage the services of the courtezans for dancing in temples before the images of *Vishnu, Siva*, &c., in the morning as well as in the evening.

चामरै क्लान्तहस्ता. &c. The Chowrie is a brush of peacock's feathers, or the tail of a particular kind of cow called yak, set in a handle of such materials as suit the fancy or the means of the proprietor. It is used for a fan, or to whisk off flies and other insects, and this piece of attention is always paid by the Aryans to the figures of their gods. *Cf* "अनेन सौकुमार्यनिरूपण" । *Sa'ro., Val*

नखपद &c 'Nail-marks,' i.e. wounds their nails receive when dancing barefooted. Divesting the feet of the shoes is a mark of reverence or respect paid to sacred places, such as the interior or vestibule of a temple, which has been from the remotest times practised, says Wilson, in the Aryan nations

मधुकर्षणिर्दीर्घान् कदाक्षान् &c. *Cf.* "विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षा" । *R VII 11.* Although this allusion may be new observes Wilson, to European imagery, it is just and pleasing. The consequence of the glance is well conveyed by the sting of the bee (भुंगा), while its poetically radiating nature is not unaptly compared to the long flight of a line of these insects. The lengthened light of a glance is familiar to us, for Shakespeare speaks of "eyes streaming through the airy region" *Cf* "एतेन नयनकमनीयत्वं सादरविलोकनं च पुण्यवनितानां प्रतिपादित" । *Sa'ro.*

रत्नच्छायाखचितवलिभिः &c *Sa'ro., Val, and Mahima* interpret this couplet in a different way, they say :—"अथ वा खचिताः छुरिता वलयस्तासामेव चामरग्राहिणीनां वलय उदरेलेखा ये तैः" । *Sa'ro*

"रत्नच्छायाया खचिताः प्रकटीकृता वलय उदरेलेखा ये. तासां हि वासोयुगाच्छादितानां चामरमणिभासा मध्यवलयः प्रकटीभवन्ति" । *Val.* "अथ वा तासामेव चामरग्राहिणीनां उदरेरेखा येतैः" । *Mahima.*

(XL) **आर्द्रनागाजिनेच्छां** &c. It is related in mythology that when *Siva* killed *Gajāsura* in battle, he danced by covering his body

with the skin stripped off the body of the demon and wet with blood Monier Williams in his Indian Wisdom says.—“The elephant’s skin belonged to an असुर named गज or गय, who acquired such power that he would have conquered the gods, and would have destroyed the *Munis* had they not fled to Benares and taken refuge in a temple of शिव, who then destroyed the असुर, and, ripping up his body, stripped off the (elephant) hide, which he cast over his shoulders for a cloak ” On this *Sa’ro* has the following. —“तत्र पशुपति सन्ध्यासु रुधिरार्द्रं चाविल गजाजिन सुपरिचरै प्रसार्य नृत्यति” । For the dance, the elephant-skin, &c, of *Siva*, Cf “प्रचलितकुरिकृत्तिपर्यन्तचञ्चलखायातभिन्नेन्दुनिष्यन्दमानामृतश्रयोतजीवत्कपालावलीमुक्त-ण्डावृहासत्रसम्भूरिभूतप्रवृत्तस्तुति” । *M V*.

वृद्धभक्ति. &c For the dissolution of this compound, *vide Mallinātha* on :—“वृद्धभक्तिरपि ज्येष्ठे राज्यदृष्ट्यापराद्धसुख । मातु पापस्य भरत प्रायश्चित्तमिवाकरोत्” ॥ R XII 19

शान्तेद्वेगस्तिमितनयन &c *Sa’ro* and *Su* propose an optimal interpretation of this —“गजासुरचर्मावलोकनेन पूर्वं भवान्या रतिरुपपद्यते । अथ वा रुधिरद्रवाविलगजाजिनावलोकनेन प्रतिशिवस नृत्यारभे तस्या उद्वेग आसीत् । स च त्वयि गजाजिनत्व प्राप्ते शान्तस्तेन स्तिमितनयनत्व ।

(XLI) सूचिभेदै &c Lit ‘fit to be pierced by a needle,’ i.e. dense, impervious, impenetrable On this *Sa’ro* says —“अतिनिबिडत्वात्तमसां कविसमये सूचिभेद्यत्वमिष्यते । औपचारिकोऽय धर्म” । *Su* has —“अत्यन्त-निबिडत्वात्सूच्याप्रभागेणापि भक्तुमशक्ये” । So thick that it would be very difficult to pierce it with a needle to see through it

‘स्तिग्धया &c The sense ‘lustre, brightness,’ of स्तिग्ध given by *Mallinātha* is rather unusual but not unhappy. Cf “कनकनिकषस्तिग्धा विद्युत्प्रिया न ममोर्वशी *V* IV, I

तोयोत्सर्गस्तनित &c In giving the text of *Mallinātha’s* commentary on this we have followed the Bombay Edition of Bhātavadekar. The Mss in our possession read the text —“तोयोत्सर्गसहित स्तनितमिति विग्रह । विशिष्टस्यैव केवलस्तनितस्याप्यनिष्टत्वात्” । other printed editions read the text of *Mallinātha* in the following way —“तोयोत्सर्गसहित स्तनितमिति विग्रह । विशिष्टस्यैव केवल &c,” of these the latter is unintelligible to us and the former gives some sense but it is not good,

मा स्म भू &c. *Pa’s’va’bhyudaya*, *Bharata*, *Rāma’nātha*, Wilson and others read मा च भू here This is preferable as it serves to connect the two verbs in the verse. Prof. Isvarachandra Vidyāsāgara concurs with us and says —“एकस्य कर्तुं क्रियाद्वयसम्बन्धाच्चकार-वानिव पाठः साधीयान्” ।

विह्वलास्ताः &c. Cf. “सुतीक्ष्णमुद्धेर्ध्वनतां पयोमुचां घनान्धकारावृतशर्वरी-

वपि । तडित्प्रभादशितमार्गभूमय प्रयान्ति रागादभिसारिका स्त्रिय ” ॥ *Ri.*
Rainy season 10.

(XLII) भवनबलभि *m f* (°भी^f also written वडभि) The wooden frame of a thatch, a roof, a turret or temporary building on the roof of a house Cf “गृहादालिकायां प्रासादशिखरवर्तिचतु शालादौ” ।

सुप्तपारावतायां &c Cf “धूपैर्जालविनिःसृतैर्वडभय सद्विग्धपारावता” । *Vi.*
III 2 “सौधान्यत्यर्थतापाद्वलभिपरिचयेद्विषापारावतानि” । *Malavi* II, 12
On this *Sáro* has.—“भोगिनां हि वासभवनेषु कूजितध्वनिनिनादिपारावता
सभवन्ति । ते च स्वभावलब्धनिद्रा सतः कामिनीकठकूजितेन जागृव्यो भवन्ति ।
एतेन तस्या सन्निहितोद्दिपन विभाव्यते” । *Val* has —“ते हि कण्ठरुतश्रवणार्थ
नागरिकैर्गृहे धार्यन्ते” । *Mahm.* gives the following —“कण्ठोद्भवचतुरमधु-
रशब्दश्रवणार्थं हि भोगिनां गृहेषु पारावतां क्रीयन्ते” ।

°कृत्या &c Performance, achievement ‘The finishing, doing’
On this *Su* has the following note.—“एतेन लब्धकामोपभोगत्व जलस्य
सूचित” ।

चिरविलसनात् &c On this *Sáro* has the following note.—“चिर-
विलसनेन सुरतसमर्पे सूच्यते” ।

(XLIII) The पार्श्वभ्युदय reads the last two lines of this verse
first and the first two lines last, but not for the better

खण्डितानां &c The *Sáro*, *Mahima*, *Val* and *Su* define the
word खण्डित in the following way—निद्राकषायमुकुलीकृतताम्रनेत्रो नारि-
नखत्रणविशेषविचित्रिताग । यस्या कुतोऽपि गृहमेति पतिः प्रभाते सा खण्डि-
नेति कथिता कविभि पुराणै ॥ खण्डिता^f One of the eight *Nāyikās* in
Sanskrit poetry She is described as being angry with her hus-
band for his infidelity, The *Sāhitya Darpana* or Mirror of com-
position thus describes her —पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसभोगाचिह्नित ।
सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता” । The first definition given by
Sáro. &c is also supported by *Hemādri*, but *Chāntiavaraddhana*
gives the following —“प्रयोगादुचिते यस्या वासके नागत प्रिय । तदनाग-
मनार्त्ता तु खण्डितेत्यभिसंज्ञिता” ।

शान्तिं नेय &c On this *Sáro* and *Mahima* have the following
remark —“रात्रौ बहिरुषित्वापि प्रभाते तावद्दिनकृत्यार्थमवश्य पुरुषेण गृहमाग-
तस्य दिनकृत्यप्रवर्तनार्थं च दृष्टसापत्नदु खविक्रवाया प्रियाया केनापि वचनवि-
ज्ञानेन करस्पर्शेन वा नयनाम्रजल निवारणीय” ।

कमलवदनात् &c Cf ‘यातास्मि पद्मवदने समयो ममैष’ । *Ratna* II

नलिन्या &c The word नलिनी here is used in the sense of a
lotus-plant as will be seen from the way in which *Mallinātha*
solves the compound.

करस्थि &c कर is here used in the double sense of ‘hand,’ and

cray' *Sâroddhârma* also notices and comments on the reading "कमलनयनात् कमलमेव नयन तस्मादिति वा ।"

(XLIV) गभीराया &c This must be the name of one of the small rivers with which the province of Mâlavâ abounds "Wilson says that this river, and the गन्धवती in the vicinity of the temple of शिव, which lately occurred, are probably amongst the numerous and nameless brooks with which the province of Mâlavâ abounds" pellucid fi^c This word is used in the double sense of 'clear, complacent,^e from impurity' (when said of water) and 'pleased, छायात्मा &c 'acious (when said of the mind)

Mallinâtha — "This expression is interpreted in two ways by body reflected in w^c cloud's) self in the form of its shadow, or the अपि &c 'yet,' &c "

cloud is unwilling to enter *Mallinâtha* explains it, 'even though the willing,' because it is not to rectly the heart of the river', 'un-

On छायात्मापि *Sâro.* has the *av* on the road

तद्रूप आत्मा छायात्मा प्रकृतिसुभगस्य पु^{win} remark — "छाया भवेति । अन्यभा- भवेति नायिकाया छायात्मापि चित्रादिलक्षितरूपमा गभीराया = छायात्मापि पट्टिकाद्याले- वेपु व्याख्या । यथान्योऽपि य प्रकृतिसुभगो भवति नास्ति - यात्मापि पट्टिकाद्याले- ख्यगतमपि रूप कस्याश्चिद्गभीराया गाम्भीर्यगुणशालिन्याश्चित्ते प्रविशति परोक्ष- ऽपि तदनुरागिणी भवतीत्यर्थः" । *Mahima* says — "अन्योऽपि य प्रकृतिसुभगो- भवति तस्य छायात्मापि पट्टिकालेख्यगतमपि बिम्ब गभीरगुणशालिन्याः कामिन्या- श्चेतसि प्रवेश लभते" । *Su* has — "यथा प्रकृतिसुभगः स्वभावेन यो जनश्चतुर्थे भवति तस्य छायात्मापि चित्रलिखितमपि रूप गभीराया स्त्रिय चित्ते प्रविशति । चित्रलिखितरूपोऽपरि परोक्षेऽपि रागिणी भवति तथा गभीरायाश्चेतसि तव छाया- त्मापीति भावः" ।

Val says — "प्रसङ्गे तव स्वभावस्वच्छच्छाया रूपोऽन्यात्मा प्रतिबिम्बरूपश्चेत- सीव प्रवेश लप्स्यते" ।

धैर्यात् &c *Mallinâtha* explains this word here by धादृष्टात् 'through rudeness or impudence' & e it would be rude or impudent on your part to disappoint her love But this sense of the word is rarely found This word is generally used in the sense of 'firmness or strength of mind,' and it is also possible here *Of Sâro.* "धैर्यात् = धीरत्वात्" *Su* "कस्माद् धैर्याद् = धीरत्वलक्षणपुरुषगुणात्" *Val* "धैर्याद् = धीरत्वात्" *Mahima* धैर्याद् गाम्भीर्यात्" *Sâvachûr* No 25 of 1872-73 says, "धैर्याद् = धैर्यलक्षणम्" *Sâvachûr* No 64 of 1871-72 says "धैर्यात् = धीरत्वलक्षणपुरुषगुणात्" *Sâvachûr* No 142 of 1882-83 says — "धैर्यात् = धीरगुणत्वात्" *Meghalatâ* of Nâgapur, No 160 of 1864 says — "धैर्यात् = धीरत्वात्" *शिव्यहितैषिणी* of लक्ष्मीनिवास, No. 158

says—‘धैर्यान्’ = ‘धैर्यमाश्रित्य.’ Prof Isvarachandra Vidyāsāgara also condemns the explanation of *Mallinātha* and says—‘धैर्याद् धैर्यमाश्रित्य गभीराया अनुरागालिगदर्शनेऽपि निर्विकारचित्तो भूत्वैवैवर्थ । मल्लिनाथस्तु धैर्याद् धाट्थान् इति व्याख्यातवान् तन्न समीचीनम् । धैर्यशब्दस्य धाट्थार्थे प्रयोगस्यादर्शनात् यथाश्रुतार्थपरित्यागे प्रमाणाभावाच्च ।’

चटुलशफेराद्वर्तनप्रेक्षितानि &c Of “स ततार सैकतवतीरभित शफरीपरिस्फुरितचारुदृश । ललिता सखीरिव बृहज्जघना सुरनिम्नगामुपयती सरित ॥ *Kirat* VI 16

The शफर is described, observes Wilson, as a small white glistening fish, which darting rapidly through the water, is not unaptly compared to the twinkling glances of a sparkling eye. Assigning the attributes of female beauty to a stream, ceases to be incongruous when we advert to its constant personification by the Hindus and it is as philosophical as it is poetical, to affiancé a River and a Cloud

Sāro. says that the figure of this verse is —“अत्र वास्तवस्वरूपेण ।” But *Su.* says that it is:—“उपमारूपकयो सकलकारोऽत्र” ।

(XLIV) करधृतमिव &c ‘Held up by the hand’ Here *Sāro* not —“प्राप्तवान्नीरशोऽत two lines च्छिद्यिल यथा भवति एव करधृतमिव पा तव दभ्यमिव कामिनः पार The अहरतो मोक्तुमिच्छन्त्यपि स्वभावात् पुरन्ध्री गना रुणद्धि” । *Su.* notes —“यथा किञ्चित्करगृहीत केनचिद्भवति तदपि कटेन” । *Mahima* notes down —“अत्र हि आकृष्यमाण नारीकराभ्यां रुणद्धि । मोक्तुमिच्छन्त्यपि स्त्री स्वभावाद्भसन पाणिभ्यामवरुणद्धि अत एव करधृतमिव भवति” । *Val.* has the following,—“यथांशुक हरतो हि कामिनो नार्य कराभ्यां रुणन्ति” ।

लम्बमानस्य &c On this *Sāro* has the following interpretation —“लम्बमानस्य = विलम्ब कुर्वत” ।

को विहातु समर्थ &c. On this *Mahima* has the following remark —“तावदेव कृतिनां हृदि स्फुरत्येष निर्मलविवेकशीपक यावदेव न कुरगचक्षुषां ताडयते चटुललोचनांचले” ॥

Bharata, Sanātana. Rāmanātha Haragovinda, Kalyānamalla, Wilson and others read पुलिनजघना and interpret:—“पुलिनमेव जघन यस्या सा ता तथोक्ता” । *Sāro* also notices this reading *Sāroddhārini, Meghalata, Mahimasinhagani, Vallabha, Sumativijaya* and others read विपुलजघनां and interpret it thus,—“विस्तीर्णकटितवी or पृथुकटी or रम्यजघनप्रदेशा; *Val* notes —“पृथुलतीरां पृथुनितम्बां च” ।

Sāro says that the figure of this verse is —“अत्र रूपकोत्प्रेक्षार्थान्तरन्यासानां सकरः” । But *Su.* gives —“अत्र रूपोत्प्रेक्षालकारः” ।

(XLVI). (ते) नीचैर्वास्याति &c This admits of another interpretation, viz., ‘will blow beneath thee.’

Val, Bha, Sanâ, Hara Wilson and others read 'पुण्य' for 'रम्य' and interpret it as मनोज्ञ or मनोहर &c.

देवपूर्व गिरि &c The mountain देवगिरि alluded to here may, as Wilson says, be the same with a place called देवगड situated south of the Chambal in the centre of the province of Mâlva and precisely in the line of the cloud's progress Anandoram Barooah says — "On the east of northern Konkana lay the kingdom of नासिक्य which I identify with नाशिक ("अथ वसन्तभानुर्भानुवर्माण नानवानवास्यां व्यग्राह्यम् । अश्मकेन्द्रस्तु कुतलपतिमेकान्ते समभ्यधत्त प्रमत्त एष राजा क्रियत्यवज्ञा सोढव्या तदावां सभ्य मुरलेश वीरसेनभृचीकेशमेकवीर कौकिलपति कुमारगुप्त नासिक्यनागपालमुपजपाव &c" Wilson reads *Sasukya*, but it appears to me to be a mistake ऋचीक occurs as ऋषिक in the हरिवंश, 6724-6, "अथाश्मकानामधिपो वेणुदारिरुदारधी । आर्क्षः श्रुतर्वा चानूरः काथश्चैवाशुमानपि । जयत्सेन कलिगानामधिपश्च महाबल । पांड्यश्च नृपतिः श्रीमानृषिकाधिपतिस्तथा । एते सामन्त्यराजानो दाक्षिणात्या महीश्वराः") The word occurs in the वाराहसंहिता XIV 13, along with कर्णाट and चोल and its inhabitants are distinctly mentioned in some of the *Purâṇas* It probably included देवगिरि (देवगड or Doulatâbâd), celebrated for its great minister हेमाद्रि (हेमाडपत) in the time of king महादेव and रामचंद्र ("अस्ति शब्दगुणस्तोम सोमवशाविभूषणम् । महादेव इति ख्यातो राजराजैव भूतले । तस्यास्ति नाम हेमाद्रि सर्वस्वीकरणप्रभु &c" *Hemâdri* This was I believe just before its final subjugation by the Mahomedans in the beginning of the 14th century) ऋक्षदेश was probably another name of this country, as the mountain ऋक्ष is partially situated in it and the हरिवंश in the passage already quoted, introduces its chief as आर्क्ष or king of ऋक्ष Dr Fleet in his *Corpus Inscriptionum Indicarum* Vol III Inscriptions of the early Gupta kings, gives the following position of देवगड at page 107th He says — "The village of Dêogada, is situated about sixty miles to the south-west of Jhansi, in Scindia's Dominions in Central India" This hill is the site of a temple of कार्तिकेय (see next verse).

काननोदुम्बराणां &c *Sâro, Mahuma, Su, and Val* have the following remarks on this,—"अनेन देवगिरिपरिसरे वनगजप्राचुर्यम् । अनेन देवगिरिपरिसरे गजप्राचुर्यमुक्तम् । "उदुम्बराणि घनागमसमये पच्यन्ते इति व्यज्यते" ॥ "देवगिरिपार्श्वे प्रभूतानि उदुम्बराणि तानि हि मेघागमे एव पच्यन्ते" ॥ "तद्वशात्पाक्रोत्पत्तेस्तेषामिति भावः" ॥

Sâro and *Su*, speak of the figure of this verse as.—अत्रानुनालकारः ।

(XLVII) पुष्पनेवीकृतात्मा &c 'Thyself turned into a cloud of flowers' *Sāro*, *Su*, and *Mahima* say — 'पुष्पवर्षुको मेघ कामरूपत्वात्' 'स्वेच्छारूपत्वान्मेघस्तु कामरूपीति वचनात्' "

ज्योमगगाजलाद्रिं &c On this *Sāro* has — "अनेन पुरुषाणां पवित्रता-
धिक्यमस्य च तदुत्पन्नत्वेन प्रीत्यतिशयश्च प्रकाश्यते" ।

हुतवहमुखे सभूत &c This alludes to the birth of *Skanda* from *Ami* and hence this epithet अग्निभू (Cf पावकि in the next verse) The god *Siva*, in company with his wife *Pārvatī*, cast his seed into *Agni*, who being unable to bear it, cast it into the Ganges, she accordingly was delivered of the deity, *Skanda*, who was afterwards received and reared, among thickets of शर reeds, by the six daughters of a king, named कृत्तिका, whence he is called शरजन्मा (Cf शरवणभव in the verse 49th) He was the commander of the army of the gods with *Tāraka* whom he slew in a battle Cf *Sāro* — 'तारकासुरसहरणार्थं हरेण हैमवत्यां पुत्रमुत्पादयता अतिशयार्तमेध्याना (?) तद्भानु धर्तुमशक्नुवत्या तस्या शिखिमुखे निहितमतस्त शिखिवाहनमग्निभूरित्यामनन्ति" । On this *Su* has the following notes — "मुखग्रहणं तु शुद्धि-सूचनार्थं । तदुक्तं शम्भुरहस्ये । "गवां पश्चाद्विजस्याग्निर्योगिना दृक्वेर्वच पर शुचिनाम विद्यान्मुख स्त्रीवाङ्मवाजिनाम्" इति । Val. notes — "असुरोपद्रुतसुररक्षार्थं हि कार्तिकेयो हरेण गौर्या जनित इत्यागम । तच्च शुक्र स्वस्थानचलिनमग्निना पतनभूत्" । Dowson in his Classical Dictionary of Hindu Mythology says — कार्तिकेय is the name of the god of war and the planet Mars, also called स्कन्द He is said in the महाभारत and रामायण to be the son of शिव or रुद्र, and to have been produced without the intervention of a woman शिव cast his seed into fire, and it was afterwards received by the Ganges कार्तिकेय was the result, hence he is called अग्निभू and गगाज He was fostered by the Pleiades (कृत्तिका) and hence he has six heads and the name कार्तिकेय His paternity is sometimes assigned to Agni, गगा and पार्वती are variously represented to be his mother He was born for the purpose of destroying तारक, a दैत्य whose austerities had made him formidable to the gods He is represented as riding on a peacock called परवाणि, holding a bow in one hand and an arrow in other His wife is कामारी or सेना He has many titles as a warrior he is called महासेन, सेनापति, सिद्धसेन, 'leader of the Siddhas,' and युधरग, also कुमार 'the boy,' गुह, 'the mysterious one,' शक्तिधर 'spear-holder', and in the south he is called सुब्रह्मण्य. He is गगापुत्र, शरभू, तारकजित्, द्वादशकर, द्वादशक्ष, and ऋजुकाय And further he says that the वायुपुराण attributes the splitting of the क्रौंच mountain to कार्तिकेय Indra and कार्तिकेय

had a dispute about these respective powers, and agreed to decide it by running a race round the mountain. They disagreed as to the result, and therefore appealed to the mountain, who untruly decided in favour of Indra. “कार्तिकेय hurled his lance at the mountain and pierced at once it and the demon महिष.” A confederate of the demon तारक, against whom कार्तिकेय led the gods and triumphed.

For the legend of कुमार see कुमारसम्भव IX 1-15 verses, also *Rāmāyaṇa*, *Bālakāṇḍa*, canto, 37 “ते गत्वा पर्वतं राम कैलासं धातुमङ्गितम् । अग्निं नियोजयामासु पुत्रार्थं सर्वदेवता ॥ देवकार्यमिदं देव समाधत्स्व हुताशन । शैलपुत्र्यां महोत्तजो गगाया तेज उत्सृज ॥ देवतानां प्रतिज्ञाय गगानभ्येत्य पावक । गर्भं धारय वै देवि देवतानामिदं प्रिय ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा दिव्य रूपमधारयत् स तस्या महिमा दृष्ट्वा समन्तादवशीर्यत ॥ समन्ततस्तदा देवीमभ्यभिञ्चत पावक । सर्वलोतांसि पूर्णानि गगाया रघुनन्दन” ॥ &c Cf “सुरसरिदिव तेजो बह्निनिष्ठभूतमैशम् ।” *R* II. 75.

Sāro says that the figure of this verse is — ऊर्जस्वि and thus defines, ‘यदुत्कर्षवतार्थेन रसभावैस्तु सस्तुत ऊर्जस्वि रुढाहकारमलकार विदुर्द्धा” ॥ But *Su* calls it to be the जातिरलकार and thus defines — ‘नानावस्थ पदार्थानां रूप साक्षाद्विदुष्वती । स्वभावोन्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालकृतिर्यथा” ॥

(XLVIII) ज्योतिर्लेखावलयः &c Cf “असौ मुखालम्बितहेमसूत्र । विभ्रन्मणि मण्डलचारुशीघ्रम् । अलतचक्रप्रतिम विहग । तद्गगरेखावलय तनोति” ॥ *V* v 15 Here the circles of light are beautifully depicted.

कुवलयदलप्रापि &c *Mallinātha* notices another interpretation of this which is:—On the ear ‘which (always) bears a lotus-leaf,’ taking the expression as an adjective of कर्णे. *Sāro* and *Mahima* take the expression, like *Mallinātha*, as an adjective to कर्णे, but *Vallabha* and *Sumatirajaya* make it an adjective of बर्ह “कथं भूत बर्हं कुवलयदलप्रापि = कुवलयदलप्रापनशील” *Su*. “तच्च (बर्हं) कुवलयपद (as he appears to have read) प्रापि = उत्पलस्थानारूढ” *Val*

पावकेस्त मयूर &c For the epithet पावकि applied to *Skanda*, vide note on the above verse. He is represented as riding a peacock.

गजितैर्नर्तयेथा &c *Val* says, “जलद्वनिशमनाद्धि बर्हिणो नृत्य” *Sāro*. notes, “निसर्गादेव जलधरध्वनिभिः शिखण्डिनस्ताण्डवमारभन्ते” Cf “जलदपत्तिरनर्तयदन्मद । कलविलापि कलापिकदम्बकम्” ॥ *S* VI 30. We have also the frequency of the allusion to the delight the peacock is supposed to feel upon the appearance of cloudy and rainy weather.

Bharata, *Sanātana*, *Rāmanātha*, *Hara-Govind* and others read आप्यायये. for पावके, where *Bharata* notes — “त मयूरं प्रथममाप्यायये-

स्तर्पयिष्यसि त्वन्निष्यन्द्शीतलजलेनेत्याक्षेपात्पश्चादाप्यायनानन्तर गर्जितैर्ध्वनिभिर्नर्तयेथा नर्तयिष्यसि” ।

Sâro says that the figure of this verse is उदात्त and thus defines: —“आशयस्य विभूतेर्वा यन्महत्त्वमनूत्तमम् । उदात्त नाम त प्राहुरलकार मनीषिण ” । But *Su* says —अत्र जातिरलकारः

(XLIX) शरवणभव &c For this epithet of *Skanda*, see note on verse 47th. *Val* says —“अग्नेरासाद्य वीर्यं सोढुमक्षमया गगया शरवणे व्यक्तमित्यत शरजत्व स्कन्दस्य” । *Cf* “ततः शरवणे शापभयेन व्रीडया सह । तद्दर्भजातमुत्सृज्य ता गृहानभितो ययुः” । *Ku* X. 60. See also the same 43-61

स्रोतो मूर्त्या सुरभितनयाभजां &c This river is known as the चर्म-
प्वती, because it was formed of the blood of many kne slaughtered
by रन्तिदेव, when he performed cow-sacrifices in ancient times. It's
modern name is the Chambal *Cf Sâro*, “तेन हि राज्ञा यज्ञेषु भूरय सुर-
भितनया किलालब्धास्तचर्मचयच्युतरसनिष्यन्दोपचयाचर्मप्वती सरिदुदियाय” ।
Val —“तेन हि नृपेण क्रतुष्वतिब्रवीयो रणे सुगाव सज्ञपिता यासा रुधिरभ्यश्च-
र्मभ्यश्च चर्मप्वती सपन्नेत्यागम्” । *Su* —“यतो हि रन्तिदेवेन राज्ञा गोमेधयज्ञेषु
शतशो धेनव आहूतास्तद्रक्तनदीप्रवाहेण चर्मप्वती नदी जातेति प्रसिद्धि ” ।

जलकणभयात् &c *Sâro* says, “तेषां हि वीणास्तोयबिन्दुस्पर्शाद्विस्वरीभव-
न्ति” । *Val* says, “तत्री हि जलाद्रा विस्वरा भवति” । *Su*, says, “जलाद्राभू-
तायां वीणाया सिद्धा न गात्यन्तीति भाव ” ।

Bharata, *Sanâtana*, *Haragovinda*, *Wilson* and others read
इत्तमार्गं, *Râmanâtha* and others read इत्तवर्त्मा, *Vallabha* and others
read त्यक्तमार्गः for मुक्तमार्गः.

रन्तिदेवस्य &c. This is the name of a king of इक्ष्वाकु son of सृष्टि,
and sixth in descent from *Bharata*. *Dowson* says —“A pious
and benevolent king of the Lunar race, sixth in descent from
Bharata. He is mentioned in महाभारत and Purânas as being enor-
mously rich, very religious, and charitable and profuse in his
sacrifices The former authority says that he had 200,000 cooks,
that he had 2000 head of cattle and as many other animals
slaughtered daily for use in his kitchen, and that he fed innumera-
ble beggars daily with beef ” रौद्राश्व a king born in the line of
the Purus had a son named ऋतेयुः. His descendant was *Bharata*
whose son was मन्थु This king मन्थु had five sons. His fourth
son नरपुत्रसृष्टि married सृष्टि from whom he got two sons of
whom रन्तिदेव was the younger. He was also called सांक्रति (See
महाभारत-द्रोणपर्व Cha. 67, वनपर्व Cha. 294, शांतिपर्व chapter 29; see
also भागवत IX. 21). See विष्णुपुराण, page 450, *Wilson's* edition,

Cf 'यथा यज्ञो रतिदेवस्य राज्ञः । तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य । पारिक्षितं स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः । *Mabh.* आदिपर्व, 52-3. *Sâro*, and *Su* say that the figure of this verse is—रूपकं

(L) वर्णचौरे &c. 'The stealer of colour or hue' Being of the same dark blue colour as the wielder of 'the शार्ङ्ग bow i. e. कृष्ण, a hue the poet charges the Cloud with having stolen. *Cf.* शार्ङ्गिणो वर्णचौरे=विष्णुवर्णासुकारिणि मधुमयनसवर्णे. *Sâro*.

एक &c. 'Having one string only.'

मुक्तागुणमिव सैव स्थूलमधेन्द्रनील &c. This comparison, when understood, says Wilson, is happily imagined, but to understand it, we must suppose ourselves above the cloud, and to be looking obliquely downwards upon its dark body; as shining drops of rain form a continuous line on either side of it, and connect it with the earth. *Cf* एतेन वसुमती मुक्तामालालकृता चर्मण्वप्यपि त्विन्द्रनीलत्विषा श्लिष्ट विशिष्टभूषणांगं प्राप्स्यति । यतो भूषणस्यापि भूषणान्तरं संभवति । तथा चोक्तं । "अलकारस्य कवयो यत्रालकरणान्तर । असंत्वष्टा निबन्धनान्ति हारादिर्मणिबन्धवत्" ॥ *Sâro* 'सिन्धूनद्या हि संविस्तृतमौक्तिकमालाया उपमा मेघस्य तन्मध्ये स्थूलमधेन्द्रनीलस्योपमा यथा नार्था मौक्तिकमाला स्यात्तथा इयं भूम्याः मौक्तिकमाला, देवा वृष्टी प्रसार्य द्रक्ष्यन्तीति भाव । अत्रोपमालंकार ।" *Su*.

(LI) दशपुरवधू &c —दशपुर Lit. means 'the district of ten cities' It must originally be the name of a country and may also, as *Mallinātha* says, be the name of its capital. It lies north of उज्जयिनी along the bank of the Chambal is identified by the antiquarians with the modern मदेसुर Wilson says that if *Mallinātha* is correct it may possibly be the modern Runtimpore or Rantampore, especially as that town, lying a little to the north of the Chambal, and in the line from उज्जयिनी to टाणेश्वर, is consequently in the course of the Cloud's progress, and the probable position of दशपुर Dr. Fleet says:— Mandasôr, (The, Mandesai, Mandesor, Mandesur, Mandisore, Mandosar, Mandasaur, Mundesor, and Mundesoor, of maps &c) or more properly Dasôr, the ancient दशपुर, on the north or left bank of the river Siwanâ, is the chief town of the Mandasôr District of Scindia's Dominions in the Western Mâlwa division of Central India Dasôr is the name by which, in preference to Mandasôr, the town is habitually spoken of by the villagers and agriculturists of the locality and neighbourhood, and even as far as Indore. And in some bilingual *sanads* or warrants, of about a century and a half ago, I found this form, Dasôr used in the vernacular passages, while the Persian passages of the same documents give the form Mandasôr, So also, Pandits

still habitually use the form दशपुर in their correspondence, a practice with which we may compare the use, also by Pandits, of Ahipura and Nakhapura for respectively Samgaum and Ugargol in the Belgaum District, except that it is doubtful whether these are original Sanskrit names or only pedantic Sanskrit translations of original vernacular names. the local explanation of the name is, that the place was originally a city of the Puranika king दशरथ. But, on this view, the modern name should be Dasrathôr. The true explanation evidently is that,—just as now the town-ship includes from 12 to 15 outlying hamlets or divisions, Khilchipur, Jankûpurâ, Rampuriyâ, Chandapurâ, Bâlâjanga, &c—so, when it was originally constituted, it included exactly ten(दश)such hamlets (पुर).—As regards the fuller form of Mandasôr, by which alone the town is known officially and is entered in maps, I cannot at present explain the origin of it. But Dr. Bhagvanlal Indrâji suggested to me that it may perhaps represent मन्ददशपुर, “the distressed or afflicted दशपुर,” in commemoration of the over-throw of the town, and the destruction of the Hindu temples in it, by the Musalmâns, in memory of which, even to the present day, the Nâgar Brâhmanas of the place will not drink the water there. And, as tending to support this suggestion, I would mention that one of the Pandits whom I questioned on the spot, gave me Mannadasôr as another form of the name. Another suggestion, by Mr. F. S. Growse, is that the name combines the two names of मड and दशपुर, the former of them being the name of a village, also called Afzalpur, about 11 miles south-east of Mandasôr, from which, it is said, were brought, from ruined Hindu temples, the stones that were used in the construction of the Musalmân Fort at Mandasôr. The true explanation, whatever it may be, would probably be found in the दशपुरमाहात्म्य, which is extant, but which I did not succeed in obtaining for examination.—In addition to the present inscription, the ancient Sanskrit name, दशपुर occurs also in line 2 of an early Nâsik inscription of Ushavadâta, and in another inscription at Mandasôi itself, dated (Vikrama)—Samvat 1321 (A. D 1264—65) Guru (Vâra) or Thursday, the fifth day of the bright fortnight of the month भाद्रपद, which is on a white stone built into the wall on the left hand inside the inner gate of the eastern entrance of the Fort.—Under the same name, the place is also mentioned in connection with अवन्ती (उज्जयिनी) in the बृहत्संहिता. XIV. VV. 11—16. See Corpus Inscriptionum Indicarum. p 79.

कुन्द &c. The कुन्द, as Wilson says, bears a beautiful white flower, and the large black bee (भृगा) being seated in the centre of its cup, they afford a very delicate and truly poetical resemblance to the dark iris, and white ball of a full black eye Cf *Su* “कुन्द-कुसुमप्रेरणानुयायिभ्रमरशोभानुकारिणाम्” *Val* “कुदाना सितत्वादलीनां च कालत्वात्,” and futher on he remarks —“यद्यपि कुतूहलविशेषेणान्येतानि तथापि वस्तुबलात्तद्वत्ताना नेत्राणामेवैते गुणा ” ।

नेत्रकौतूहलानां &c On this *Sāro*. and *Mahima*. have the following notes —तेषां दशपुराभिधाननगरनारीनयनाश्चर्यालोकनानां कौतुक कारण विलोकित कार्य कारणे कार्योपचारात्कौतुक जनयन् निरीक्षितानां इति भाव । दशपुरस्थोपरिभोगेन भूत्वा भवता गन्तव्यमिति भाव ” । *Su* notes —“एतेन दशपुरनगरस्थोपरिष्टाद्भुवा गन्तव्य त्वया ” *Val* says —“पुरनिकटेन याया ”

विभ्रमाणा &c On this *Mahima* has the following note —यदुक्त । “हावोमुखविकार स्याद्भावश्चित्तसमुद्भव । विलासो नेत्रयोज्ञेयो विभ्रमो भूसमुद्भव ।” ।

उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् &c *Sāro*. dissolves the compound in the following way —“उपर्युपरिष्टात् विलसन्ती स्फुरन्ती कृष्णसारा काकधवला अथ वा कृष्णेन कृष्णवर्णेन सारा शबला प्रभा येषा तेषां तथोक्तानां” ।

Bharata, Wilson and others read श्रीजुषाम् for श्रीमुषाम्, where *Bharata* interpretes, —“अथ शोभा जुषन्ति भजन्ति यानि तानि तेषाम्” ।

Sāro and *Su* say that the figure of this verse is उपमा

(LII) ब्रह्मावर्त &c It is the name of a country north-west of हस्तिनापुर It is bounded by the rivers सरस्वती and वृषद्वती It is thus described by the sage मनु .

“सरस्वतीवृषद्वत्योर्देवनद्योर्दन्तरम् । तं देवनिमित्तं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ” II. 17. “Between the two divine rivers, सरस्वती and वृषद्वती, lies the tract of land which the sages have named ब्रह्मावर्त, because it was frequented by the gods ”

कौरवक्षेत्र &c The modern कुरुक्षेत्र (the battle-field of the Kurus), one of the sacred places of the Hindus, the scene of the celebrated battle between the Kurus and the Pandavas. It lies a little to the South-east of ठाणेश्वर. It is thus described by the sage मनु.

“कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चाला शूरसेनका । एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तदिनतर ” II. 19. and further on he says —“हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मन्थदेशं प्रकीर्तितं ॥ आ समुद्रान्तं वै पूर्वदिशं समुद्रान्तं पश्चिमात् । तयोरेवान्तरं गिर्योरयावर्तं विदुर्बुधा ॥ II. 21-22 Anandoram Boorooah says —“To the south east of Kūlūta, beyond Trigarta, lay the district of कुरुक्षेत्र, residents of which were styled Sārasvatas from the river सरस्वती and misnamed Vikarnikas or “having small ears ” (“सारस्वता विकर्णिका. Hemachandra IV. 24).

In the limited sense, it is the tract near the holy lake still known by the same name to the south of स्थानेश्वर (ठाणेश्वर). In the larger sense it extended from the south of the सरस्वती to the north of the दृषद्वती (“दक्षिणेन सरस्वत्या दृषद्वत्योत्तरेण च । ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे ” । वनपर्व 83. 4.). In some places, it is used indiscriminately with Samanta Panchaka “(कुरुक्षेत्रं पर पुण्यं पावनं स्वर्ग्यमेव च । देवतैर्ऋषिभिर्जुष्टं ब्रह्मणैश्च महात्मभिः । तत्र वै यो-
त्स्यमाना ये देहे त्यक्ष्यन्ति मानवाः । तेषां स्वर्गे ध्रुवो वासः शक्रेण सह भारिषः । तस्मात् समन्तपञ्चकमितो याम द्रुत नृप । प्रथितोत्तरवेदी सा देव-
लोके प्रजापतेः ” । शल्यपर्व 55. 7-9 “तस्मिन्कारुन्तकयोर्दन्तं रामह-
दानाच्च मंचक्रुकस्य । एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते” ।
वनपर्व 83.208), which literally means “the tract around the five tanks.” These are said to have been made by परशुराम, son of जमदग्नि, with the blood of Kshatriyas he annihilated (“ततो रामहृदान्गच्छेत्तीर्थसंवी समाहितः । तत्र रामेण राजेन्द्रं तरसा दीप्ततेजसा । क्षत्र-
मुत्साद्य वीरेण हृदाः पञ्च निवेशिताः ” । वनपर्व 83 27). The accounts given in our gazeteers are too brief to identify these tanks. But any one with local knowledge should feel no difficulty about it कुरुक्षेत्र is associated with the oldest events of Indian history and contains the largest number of holy places Here at आदित्य or सूर्यतीर्थ, the sun is said to have acquired his lordship over the luminaries and Vishnu to have killed in the earliest stage of creation the demons मनु and कैटभ (“तस्मादादित्यतीर्थं च जगाम कमलेक्षणः । यच्चैष्टा भगवान् ज्योतिर्भास्करो राजसत्तमः । ज्योतिषामा-
विष्टस्य च प्रभवश्चान्यपद्यत् ॥... .. तत्र हत्वा पुरा विष्णुरसुरौ मधुकैटभौ ” । शल्यपर्व 48. 17-22) This is probably the सूर्यकुण्ड a few miles S E of Thânesvara Here at ब्रह्मयोनि, Brahma is said to have created the worlds and विश्वामित्र and others to have acquired then Brahmanity (“मसर्ज यत्र भगवोऽलोकालोकपितामहः । यत्राष्टिषेणः कौगन्ध्या ब्राह्मण्यं स.शितव्रतः । तपसा महती राजर्षि प्राप्तावावृषिसत्तमः । सिं-
धुद्वीपश्च राजर्षिदेवापिश्च महातपाः । ब्राह्मण्यं लब्धवान् यत्र विश्वामित्रस्तथा-
मुनिः” ॥ शल्यपर्व 39 35-7). From the description of Balabhadra's journey in the शल्यपर्व, I have not doubt that it is near पृथ्वी

which has been identified with modern Pehoa, 14 miles west of Thânesvara. There is one thing to be noted, however, the तीर्थ is on the north bank of the सरस्वती ("सरस्वत्युत्तरे-तीरे यस्त्य-जेदात्मनस्तनुम् । पृथुदके जप्यपरी नैनं श्वो मरणं तपेत्" । शल्यपर्व 44.33-4), while the village stands on the south (Cunningham's Geo p. 336). Here at स्थाणुतीर्थ, स्थाणु (Siva) adored the सरस्वती and his son स्कन्द was elected General of the gods against the great demon तगरक ("आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थेऽभवन्महात् । पर्वतः पार्श्वतश्च सीद्विश्वमित्रस्य धीमतः । यज्ञेष्ट्वा भगवाच्च स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वती । स्थापयामास तत्तीर्थं स्थाणुतीर्थमिति प्रभो । तत्र तीर्थे सुराः स्कन्दमभ्यषिञ्चन्नाधिप । सैनापत्येन महता सुरारिविनिबर्हणम्" । शल्यपर्व 42.4-7) This, I believe, is the modern Thânesvara a corruption of स्थाण्वीश्वर or God Siva. The country around this is still associated with the scenes of the great war of the महाभारत. चक्रतीर्थ is still pointed out as the spot where Krishna took up his discus to kill the invincible भीष्म (भीष्मपर्व ch. 106 The story of the discus does not, however, appear in the original Sanskrit, but in the vernacular works) चक्रयूह is still pointed out as the place where द्रोण arrayed in circle the army of the Kauravas (See द्रोणपर्व ch. 34). Here fell after a glorious fight the brave अभिमन्यु (See द्रोणपर्व ch. 49), whence the place is also called Amin (See Cunningham's Geo. p. 338). The arrow-bed of भीष्म—the scene of the शान्तिपर्व and the अनुशासनपर्व is probably still known to the people.

In the कर्ग्वेद, Indra is said to have slain वृत्र with the bones of the horsehead of दधीच found in शर्यणावत् ("इच्छत्रश्चस्य यच्छिरः पर्वतेऽपश्रित । तद्विदच्छर्यणावति । 1 84 14 The story of Dadhicha's bones is mentioned in a slightly modified form in chap 51 of शल्यपर्व). The scholiast derives the word from शर्यणा, which he says is a country, and quotes an authority that शर्यणावत् is a lake situated on the out skirts of कुरुक्षेत्र ("शर्यणा नाम देशः । तेषामदूरभव सरः शर्यणावत्" । "शर्यणावद् वै नाम कुरुक्षेत्रस्य जघनार्द्धे सरः स्यन्दते" ॥ 1-84 14 and 13) I have, therefore, little doubt that it is the lake on the south of Thânesvara and that the bordering people were called Saryanas दधीचतीर्थ is mentioned in the वनपर्व ("ततो गच्छेत् धर्मज्ञ दधीचस्य महात्मनः । तीर्थं

पुण्यतम राजत्र यावन लोकविश्रुतम् । यत्र सारस्वतो जातः सोऽगिरास्तपसो
निधिः । 83 186-7), which is also called सारस्वततीर्थ as the birth-
place of the sage अगिरस् (“सारस्वतस्य धर्मात्मा मुनस्तीर्थं जगाम ह ” ।
शत्यपर्व 52 2). It was visited by बलभद्र after सोमतीर्थ sacred
to the Light of Night and reputed Scene of Taraka's fall (“ जगाम
सोमस्य महत्सुतीर्थ । यत्रायजद्राजसूयेन सोमः साक्षात् पुरा विधिवत् पार्यिवे-
न्द्र । अत्रित्रीमान् विप्रमुख्यो बभूव होता यस्मिन् ऋतुमुख्ये महात्मा । य-
स्यान्तेऽभूत्सुमहात् दानवानां दैतेयानां राक्षसानाञ्च देवैः । यस्मिन् युद्धं ता-
रकाख्यं सुतीव्रं यत्र स्कन्दस्तारकाख्यं जघान ” ॥ शत्यपर्व 43. 46-8)

In the आदिपर्व, the demon kings सुन्द and उपसुन्द are said
to have reigned at कुरुक्षेत्र (“एव सर्वादिशो दैत्यौ जित्वा क्रूरेण कर्मणा ।
नि सप्तनौ कुरुक्षेत्रे निवृंशमभिचक्रतुः” । 208-7). The demon नमुचि
whose story is alluded to in Rig Veda 1-53, is connected with
the same place. From the description in the वनपर्व, it seems
to have had four gates consecrated to four Yakshas. Mankana-
Machakru—Taruntu—and Aruntu (“ततो मकणक नाम द्वारपाल
महाबल । यज्ञं समभिवाद्यैव गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ततो गच्छेत् धर्मज्ञ
द्वारपालं तरन्तुकम् ॥ ततो गच्छेत् राजेन्द्रं द्वारपालमरन्तुकम् ॥ त-
च्च तीर्थं सरस्वत्या यक्षेन्द्रस्य महात्मनः ॥ अभिवाद्य ततो यक्षं द्वारपा-
लं मचक्रुकम् कोटितीर्थमुपस्पृश्य लभेद्बहुमुवर्णकम् ” । 83 9, 15, 52, 200).
The first I believe was also called सप्तसारस्वत or junction of
seven streams (“सप्तसारस्वतं तीर्थं ततो गच्छेन्नराधिप । यत्र मकणकः सिद्धो
महर्षिलोकविश्रुतः” ॥ 83 116), whose names are given in the ग-
दापर्व but are evidently partially fancied like the त्रिवेणी of Alla-
habad. Two other junctions (“कौशिक्याः संगमे यस्तु दृषद्वत्याश्च
भारत । स्नाति वै नियताहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते । ततो व्यासस्थली नाम
यत्र व्यासेन धीमता । पुत्रशोकाभितप्तेन देहत्यागे कृता मतिः” । 83. 95-
7 “सरस्वत्यारुणायाश्च संगमं लोकविश्रुतं ” ॥ 151) are mentioned
which are borne out by the map viz. of the कौशिकी and the
दृषद्वती on the west and of the अरुणा with the सरस्वती below Than-
esvara. Near the first is व्यासस्थली—the modern Basthali. Not
far from the junction of the two combined streams (सरस्वती
and दृषद्वती) is the modern Kaithal, which is probably कपिष्ठल
of the वनपर्व (“कपिष्ठलस्य केदार समासाद्य सुदुर्लभ । अन्तर्धानमवाप्नोति

तपसा दग्धकिल्मषः” । 83 74). See also the paras 69 th, 70th, 71st and 72nd pages 61—64.

गाण्डीवधन्वा &c Wilson says that as the horses and swords of chivalry received particular names, so the weapons of the Aryan knights have been similarly honoured गाण्डिव is the bow of अर्जुन, शार्ङ्ग that of विष्णु, and पिनाक is *Siva's* favourite bow

क्षत्रप्रधनपिशुन &c On this *Saro* says —“यदद्यापि तत्र चिरतननाराचादिशस्त्रशकलानि विलोक्यन्ते” *Val.* says.—“अद्यापि शरशकलाद्यालोकनात् ”

Bharata, Sand'tana, Ramand'tha, Hanagovinda, Kallya'namalla, Sa'roddharini, Meghalata', Vallabha, Sumativijaya, Mahimasahagan, Wilson and others read अध for अथ and interpret thus —“अध अधप्रदेशे वर्तमान ब्रह्मावर्त सरस्वतीदृषद्वत्योरान्तरालवर्तिन ब्रह्मावर्ताख्य जनपद छायाया गाहमान सन् प्रतिबिम्बेन न्यान्तुवन् सन् ” *Saro*

“ततो ब्रह्मावर्ताख्य जनपदविशेषमधश्छायाया प्रतिबिम्बेन सस्पृशस्त्व कुरुक्षेत्रं याया ।” *Val* “अध कुरुक्षेत्रस्याध पश्चाद्भागे वर्तमान ब्रह्मावर्त जनपद गाहमान कथा छायायात्मप्रतिबिम्बेन ” *Su* “ब्रह्मावर्त जनपद देश छायायात्मप्रतिबिम्बेन ब्रह्मावर्ताख्य देश अवगाहमान कुत्र अध कुरुक्षेत्रस्याधोभागे वर्तमानमित्यर्थ ” । *Mahima* “ब्रह्मावर्त ब्रह्मावर्तनामान जनपद देशमधश्छायाया अधस्तात्प्रतिबिम्बेन गाहमान आलम्बमान ” *Bha* “ब्रह्मावर्त जनपद देश छायाया अधस्ताद्गाहमान समाक्रामन् ” *Ra'ma*

“छायाया स्वकीयप्रतिबिम्बेन ब्रह्मावर्त जनपद ब्रह्मानर्ताख्यदेश गाहमान न्यान्तुवन् क्व अध कुरुक्षेत्रस्याधोभागे वर्तमानमित्यर्थ ” *Kalya'*

Saro' and *Su* say that the figure of this verse is उपमा

(LIII). रेवतीलोचनाका &c *Revati*, wife of बलराम always joined him in his drinking revels and hence the wine is said to be marked by the reflections of her eyes Cf “यूर्णयन्मदिराम्वादमदपादलितद्युति । रेवतीवदनोच्छिडटपरिपूनपुटे दृशौ ” ॥ *Si* II 16 On this *Saro* has the following note —“सहपानाद्वेवतीलोचनप्रतिबिम्बसम्भव । अनेन बन्धुयुद्धविषादेन च रेवतीमपि परित्यक्तवानिति युज्यते ” । *Mahima* notes —“बन्धुयुद्धविषादेन रेवती वल्लभामपि त्यक्तवानिति ध्यज्यते ” । *Su* observes —“मदिरापाने रेवत्या मुखावलोकनान्तां राज्ञी मदिरां च त्यक्त्वा युद्धे बन्धुवधपापभीरु सन् बलभद्रस्सरस्वतीतीर्थं सेवितवानिति भाव ” । *Val* observes the following —“हालात्यागेन तीर्थसेवने नियमग्रहण प्रतिपाद्यते ” ।

बन्धुप्रीत्या &c. When the great war arose between the *Kurus* and the *Pa'ndus*, बलराम refused to take part therein through his friendship for both the parties Cf. *Saro*. “द्वयेपिऽमम बान्धवास्तेषां कतमेऽपि मम योधनीया न भवन्तीति विचार्य सजातविषाद सरस्वतीतीर्थमाश्रित ” । also *Val* “द्वयेऽपि मे बान्धवास्तत्कुत्र व्रजामीति वेदम त्यक्त्वा सरस्व-

तीतीर्ययात्रामकरोत्" । *Su.* says—"सग्नानि बन्धुवधपापभयेन." *Mahima.* observes—कौरवा पाण्डवाश्च मम बान्धवा कथं मया योधनीया इति विमृश्य सञ्जातविषादः सरस्वतीतीर्थमाश्रितः ।

लंगली &c. Lit 'The plough-bearer,' name of बलराम, the eldest brother of कृष्ण. He was very fond of wine and is represented as armed with a plough-share which he used to employ for dragging his enemies. He was married to रेवती, to whom he was firmly attached. बलराम is the name of the elder brother of कृष्ण. When कृष्ण is regarded as a full manifestation of विष्णु, बलराम is recognised as the seventh अवतार or incarnation in his place. According to this view, which is the favourite one of the Vaishnavas, कृष्ण is a full divinity and बलराम an incarnation, but the story of their birth as told in the महाभारत, places them more upon an equality. It says that विष्णु took two hairs, a white and a black one, and that these became बलराम and कृष्ण, the children of देवकी. बलराम was of fair complexion, कृष्ण was very dark. As soon as बलराम was born, he was carried to गोकुल to preserve his life from the tyrant कंस, and he was there nurtured by नन्द as a child of रोहिणी. He and कृष्ण grew up together, and he took part in many of Krishna's boyish freaks and adventures. His earliest exploit was the killing of the great Asura घेनुक, who had the form of an ass. This demon attacked him, but बलराम seized his assailant, whirled him round by his legs till he was dead, and cast his carcass into a tree. Another असुर attempted to carry off बलराम on his shoulders but the boy beat out the demon's brains with his fists. When कृष्ण went to मथुरा, बलराम accompanied him, and manfully supported him till कंस was killed. Once, when बलराम was intoxicated, he called upon the यमुना river to come to him, that he might bathe, but his command not being heeded, he plunged his ploughshare into the river, and dragged the waters whithersoever he went, until they were obliged to assume a human form and beseech his forgiveness. This action gained for him the title यमुनाभिद् and कालिदीर्घर्षण, breaker or dragger of the यमुना. He killed रुक्मिन् in a gambling brawl. When साम्ब, son of कृष्ण, was detained as a prisoner at हस्तिनापुर by दुर्योधन, बलराम demanded his release, and, being refused, he thrust his ploughshare under the ramparts of the city, and drew them towards him, thus compelling the Kauravas to give up their prisoner. Lastly he killed the great ape द्विविद्, who had stolen his weapons and derided him.

Such are some of the chief incidents of the life of बलराम, as related in the Purānas, and as popular among the votaries of कृष्ण. In the महाभारत he has more of a human character. He taught both दुर्योधन and भीम the use of the mace. Though inclining to the side of the Pāndavas, he refused to take an active part either with them or the Kauravas. He witnessed the combat between दुर्योधन and भीम and beheld the foul blow struck by the latter, which made him so indignant that he seized his weapons, and was with difficulty restrained by कृष्ण from falling upon the Pāndavas. He died just before कृष्ण, as he sat under a banyan tree in the outskirts of द्वारका.

Another view is held as to the origin of बलराम. According to this he was an incarnation of the great serpent शेष, and when he died the serpent is said to have issued from his mouth.

The "wine loving" बलराम (मधुप्रिय or प्रियमधु) was as much addicted to wine as his brother कृष्ण was devoted to the fair sex. He was also irascible in temper, and sometimes quarrelled even with कृष्ण, the Purānas represent them as having a serious difference about the स्यमन्तक jewel. He had but one wife, रेवती, daughter of king रैवत, and was faithful to her. By her he had two sons, निशठ and उत्सुक. He is represented as of fair complexion, and, as नीलवस्त्र, 'clad in a dark-blue vest.' His especial weapons are a club (खेदक or सौमन्द), the ploughshare (हल), and the pestle (मुसल), from which he is called फाल and हाल, also हलायुध, 'plough-armed', हलभृत्, 'plough-bearer'; लगलि and सकर्षण, 'ploughman', and मुसली, 'pestle-holder'. As he has a palm for a banner, he is called तालध्वज. Other of his appellations are गुप्तचर, 'who goes secretly', कामपाल and सर्वर्तक. See Dowson's Mythology p 40. See *Vishnu Purāna*. p 510, 604, Wilson's edition.

अभिगम &c. *Pa'rsva'bhyudaya*, *Vallabha*, *Bharata*, *Rāmandha*, and three other MSS. read अधिगमं which directly gives the sense of सेवन, (*Cf Val अधिगमं=सेवन विधाय*) while अभिगम primarily means संगम which is not the sense required by the context. Therefore the reading अधिगम is preferable. *Mallina'tha* too appears to have read अधिगम, for he interpretes अभिगम=सेवां. How could a commentator like *Mallina'tha* have interpreted अभिगम by सेवां? It seems, however, that the mistake must have risen from the ignorance of scribes who copied the commentaries. But none of

the MSS of *Mallinātha's* commentary in our possession gives the reading अधिगम

सौम्य &c On this the *Sāro* and *Mahima* have the following remark. —“अत्र सौम्य पदेन तीर्थसेवाफल लभते इति सौम्येन त्वया भवितव्यमिति भावः” । *Val* says —“सौम इव सौम्यः” ।

अभिमतरसा &c On this *Su* has the following note.—“एतेन जलद्वयं प्रसिद्धतीर्थमुक्तः” ।

सारस्वतीना &c The *Sarasvatī*, says Wilson, falls from the southern portion of the Himalayas and runs into the great desert where it is lost in the sands Hence it is always invisible. It flows a little to the north-west of *कुरुक्षेत्र* and ranks in sacredness with the Ganges and the Jamna' See note on the 52nd verse page 55

अन्त शुद्ध &c The sin, from which बलराम is said to have been purified by his ablutions in the waters of the *Sarasvatī*, was the murder of a chaitoteer caused by कृष्ण to be perpetrated by the hand of बलराम Cf *Val* अन्त स्वच्छ (he seems to have read स्वच्छ for शुद्ध) अभ्यन्तरनिर्मले भविता भविष्यति । केवल वर्णमात्रेण कृष्ण काल इति महापुण्याक्तिः” ।

असि भविता &c. This may be taken as भवितासि (2nd per sing. of the periphrastic Future of भू), the two parts of the form being separated and transposed Cf *R* IX 68 and *Mallinātha* thereon.

Sāro and *Su*. say that the figure of speech of this verse is अनुनास

(LIV) अनुकनखल &c The name कनखल is thus explained in the गंगाद्वारमाहात्म्य a section of the *Skanda Purana* —“खल को नात्र मुक्ति वै भजते तत्र मज्जनात् । अतः कनखल तीर्थं नाम्ना चक्रमुनीश्वरः” ॥ “What man (क) so wicked (खल) as not to obtain (न) future happiness from bathing there? Thence the holy sages have called this तीर्थ, by the name of कनखल” It is a village near हरिद्वार on the west bank of the Ganges and is one of the sacred spots of the Hindus It also occurs in this passage of the हरिवंश, portion of the महाभारत —“गंगाद्वारं कनखल सोमो वै यत्र सस्थितः । and also “स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते” । The name is still retained Cf. “तच्छुत्वा सोऽब्रवीदस्माच्छुण्णैतत्कथामिमाम् । तीर्थं कनखलं नाम गंगाद्वारेऽस्ति पावनम्” *Katha. Śā. III* 4. हरिद्वार is situated on the right bank of the Ganges at the southern base of the शिवालिक mountains This is the गंगाद्वार of Sanskrit writers. The Ganges here rushes into the plains through a gorge of the Sivalika range and this agrees with the description of गंगाद्वार in the

कथासरित्सागर. Cf. “ तीर्थं कनखलं नाम गंगाद्वारेऽस्ति पावनं । यत्र काचनपातेन जाह्नवी देवदतिना । उशीनरगिरिप्रस्थाद्विन्वा तमवतारिता ” ॥ 3 4—5. गंगाद्वार is always associated with कनखल a village near हरिद्वार. It (कनखल) was probably also the name of the surrounding mountains. In one verse of the वनपर्व, it is used in the plural (“ एते कनखला राजन् ऋषीणां दयिता नगाः ” ॥ 135 5) but generally found in the singular. Cf. “ ततः कनखले स्नात्वा त्रिरात्रोपीषितो नरः ” ॥ वनपर्व 84 30. (See also the commentary). Near कनखल was कपिलतीर्थ (“ नगराजस्य राजेन्द्र कपिलस्य महात्मनः । तीर्थं कुरुवरश्रेष्ठ सर्वलोकेषु विश्रुत ” । वनपर्व 84. 32.), which is still pointed out as कपिलस्थान, and मायापुर (“ दश-श्वमेधिकं पुण्यं गंगाद्वारं तथैव च । नन्दाय ललिता तद्वत्तीर्थं मायापुरी शुभा ” । मत्स्यपु. 22 10.) which is said to have been visited by Hiouen Thsang (See Cunningham's Geo. p 352-53).

जह्नु कन्यां &c. The Ganges is here called the daughter of the sage *Jahnu*, who being disturbed in the practice of his religious austerity by the passage of the river, drank up its waters. Upon relenting, however, he allowed the stream to re-issue from his ear. Hence the epithet जाह्नवी Wilson has the following—“Jahnu's daughter is गंगा, or the Ganges, which river, “after forcing its way through an extensive tract of mountainous country, here first enters on the plains.” It is rather extraordinary that *Ka'nda'sa* should have omitted the name of हरिद्वार, and preferred कनखल, especially as the former occurs in the Puranas, in the स्कन्दपुराण, as mentioned in the note, page 450, vol. XI. of the Asiatic Researches, and in this passage from मत्स्यपुराण, cited in the पुराणसर्वस्व “सर्वत्र सुलभा गंगा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा । हरिद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे” । “The Ganges is everywhere easy of access, except in these places, हरिद्वार, प्रयाग, and her junction with the sea ” *Sa'o* says—तथा चोक्तं । “गंगा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रे सरस्वती । ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा” । The geography of the country to the N. E. of कुरुक्षेत्र is described in the travels of the Pândavas in the later chapters of the वनपर्व. The account in the printed edition is, however by no means, accurate and as the names have remained almost unchanged up to the present day, I cannot do better than supplement it by the accounts in modern works. The गंगा, which is explained in the निरुक्त to mean “flowing” is so called after the confluence of the भागीरथी with the eastern feeder

अलकानन्दा at देवप्रयाग (Deoprag). The last is formed by the junction at विष्णुप्रयाग (Bishenprag) of the Dhavali (Dowlee) flowing from the north-east and the विष्णुगंगा (Bishengangā) flowing from the north-west. On the right bank of the last, a few miles below its source, is situated the celebrated बदरीनाथ (lord of the jujube)—the reputed abode of नर and नारायण. The place takes its name from an old jujube tree (“तस्याभ्यासे च ददृशुर्नरनारायणाश्रमम् । उपेत पादपौर्द्वयैः सदा पुष्पफलोपगैः ॥ ददृशुस्ताञ्च बदरी वृत्तस्कन्धां मनोरमाम्” | वनपर्व 145. 18—9) and is now famous for its temple. Near it is a thermal spring called तप्तकुण्ड probably बिन्दुसरः of the वनपर्व (“तदुपेत्य महात्मानस्तेऽवसन् ब्राह्मणैः सह । मुदा युक्ता महात्मानस्तत्र ते रेमिरे तदा । आलोकयन्तो मैनाकं नानाद्विजगणायुत । हिरण्याशिखरं चैव तच्च बिन्दुसरः शिव ” ॥ वनपर्व । 145 43—4 There is, however, so much confusion in the accounts that I am not all sure of the soundness of this guess. In the समापर्व ch. III. मैनाक is placed on the north of कैलास). The verses I have quoted here contain also the names of two mountains—मैनाक and हिरण्याशिखर or gold-crested which are probably the lofty ranges which guard बदरीनाथ on the east and west. In the रामायण, the ऋषभ (“ततः काञ्चनमन्युग्रमृषभं नाम पर्वतम् ” ॥ VI. 56. 53 34.) is called “golden mountain ” and हिरण्याशिखर of this passage is probably its descriptive name. अलकानन्दा literally means “the joy of अलका. ” According to the कयासरित्सागर, अलका was the capital of निषध (“अस्त्यलंकृतकौबेरीदिङ्मुखा निषधभिधः । देशस्तत्रालका नाम बभूव नगरी पुरा ” ॥ 101. 41). According to the महाभारत, the good king नल was ruler of निषध (“निषधेषु महिपालो वीरसेन इति श्रुतः । तस्य पुत्रो नली नाम्नामूढमार्थकोविदः ” ॥ III. 52. 55) and from his directions to his wife दमयन्ती after he lost his kingdom (See वनपर्व, ch. 61. The following verses 87. 25.—6. favour my contention. “केदारश्च मत्तंगस्य महानाश्रम उत्तमः । कुन्तोदः पर्वतो रम्यो बहुमूलफलोदकः ॥ नैषधस्तृषितो यत्र जलं शर्म च लब्धवान् । यत्र देववनं रम्य तापसैरुपशोभितं ” ॥) there can be no doubt that it was in northern India. I am, therefore, inclined to think that निषध formed a part of modern Kumaon, that अलका was its capital, and that it was situated on the अलकानन्दा.

The अलकानन्दा is joined at रुद्रप्रयाग (Roodurprag) on the

right side by the मन्दाकिनी which rises in the S. W. face of केदारनाथ mountain मन्दाकिनी is called by अमर "celestial river" (" मन्दाकिनी वियद्गता स्वर्णदी सुन्दीर्घिका " ॥ 1. 52.). In the वनपर्व 142. 1. 11, one of the feeders—probably the विष्णुगंगा—is called by that name " आकाशगंगा", but in the प्रस्थानपर्व, it seems to be rightly applied to the मन्दाकिनी The temple of केदारनाथ is still frequented by thousands of Hindu pilgrims and near it is a deep precipice called भैरवझोप, from which people are still said to precipitate themselves to eternity as a preparation for heaven.

The भागीरथी rises in the mountains of Ghurwal and after a course of about 8 miles, emerges at गंगाद्वि (Gangotree) from under a great thick snow-bed lying between lofty mountains. "From the brow of this curious wall of snow," observes an able writer, and immediately above the outlet of the stream, large and hoary icicles depend " These are considered by superstitious Hindus the matted hair of Siva, through which, according to the रामायण, it flows into earth (निपतेत्यब्रवीद्गंगामाभाष्याकाशगा नदीम् जटाकलाप विपुल विनिकीर्य समन्ततः। तस्याथ वचनाद्गंगामुत्सर्जत दा हरः । जटामेका समाक्षिप्य स्रोतः सजनयत् स्वयम् " ॥ I. 45 ch. According to वनपर्व II 8 ch., this distinction is shared by the अलकानन्दा). Seven miles below, it is joined at भैरवसगम by the जाह्नवी, which rises in the southern base of the culminating range of the Himālayas. This is considered one of the grandest awe-inspiring places in the world. "The appearance that ruins of a Gothic Cathedral," says the explorer Hodgson, "might have to a spectator within them supposing that thunderbolts and earthquakes had rifted its lofty and massive towers, spires, and buttresses ; the parts, left standing then might, in miniature give an idea of the rocks of Bhairogathi."

About 50 miles below देवप्रयाग, at हरिद्वार, the गंगा finally enters the plains of Hindusthana by three channels, which is probably the original source of the name त्रिपथगा or "going by three ways." In the अमरकोश, गंगा is called "विष्णुपदी" (=flowing from the foot of Vishnu), जह्नुतनया (=born of जह्नु), सुरनिम्नगा (divine stream), भागीरथी (=brought by भार्गव), त्रिपथगा and त्रिस्रोतस् which mean the same thing, and भीष्मसू (=mother of भीष्म) ("गंगा विष्णुपदी जह्नुतनया सुरनिम्नगा । भागीरथी त्रिपथगा त्रिस्रोता

her son was Asamanjas, through whom the royal line was continued सुमति had sixty thousand sons. Asamanjas was a wild immoral youth, and his father abandoned him. The other sixty thousand sons followed the courses of their brother, and their impiety was such that the gods complained of them to the sage कपिल and the god Vishnu. Sagar engaged in the performance of an अश्वमेध or sacrifice of a horse, but although the animal was guarded by his sixty thousand sons, it was carried off to पाताल. सगर directed his sons to recover it. They dug their way to the infernal regions, and they found the horse grazing and the sage कपिल seated close by engaged in meditations. Conceiving him to be the thief, they menaced him with their weapons. Disturbed from his devotions, "he looked upon them for an instant, and they were reduced to ashes by the sacred flame that darted from his person. Their remains were discovered by Anumat, the son of Asamanjas, who prayed कपिल that the victims of his wrath might be raised through his favour to heaven. Anumat then returned to सगर, who completed his sacrifice, and he gave the name of सागर to the chasm which his sons had dug, and सागर means 'ocean'. The son of अंशुमान् was दिलीप, and his son was भगीरथ. The devotion of भगीरथ brought down from heaven the holy Ganges, which flows from the toe of Vishnu, and its waters having laved the ashes of the sons of सगर, cleansed them from all impurity. Their Manes were thus made fit for the exequial ceremonies and for admission into स्वर्ग. The Ganges received the name of सागर in honour of सगर, and भागीरथी from the name of the devout king whose prayers brought her down to the earth. The हारविश adds another marvel to the story. Sagara's wife सुमति was delivered of a gourd containing sixty thousand seeds, which became embryos and grew. सगर at first placed them in vessels of milk, but afterwards each one had a separate nurse, and at ten months they all ran out. The name of सगर is frequently cited in deeds conveyants of land in honour of his generosity in respect of such the whole legend is told in the रामायण—बालकाण्ड, cantos

चनं &c Gouri or Pārvātī, wife of Siva, became the गंगा, when she made her abode in the her displeasure by knitting her eyebrows.

Cf. Sa'ro. "पतिसनिहितपत्नासमालोकनकुद्धायाः तस्या धराधराजदुहितुः भ्रुकुटिबन्धोपपत्ति । स्त्रीस्वभावस्तु सुलभेर्प्यानिर्भर." । *Val.* "मत्सनिधावेवानया केद्या गृह्यन्ते इति गौर्या भ्रुकुटिबन्ध " ।

या विहस्येव केनै &c. *Cf Rāmāyana*, अयोध्याकाण्ड 1 "जलाघाताद्-हासोष्मां फेननिर्मलहासिनी । क्वचिद्वेणीकृतजलां क्वचिदावर्तशोभितां " ॥ Canto L. 16.

केशमहणमकरोत् &c. The earth being unable to bear the burden of the Gange's fall, *Siva* was induced by *भगीरथ* to take her upon his head. This provoked the jealousy of his wife *Pārvatī*, as described above. *Cf Sa'ro.* "गंगा त्रिविष्टपाद्रष्टा धूर्जटिना जटाजूटे धृता इत्यागम." । "also *Val* "सा हि स्वर्गात्पतन्ती हरेण जटाग्रे धृतेत्याम्नाय " । also *Su.* "इय हि स्वर्गाभ्युता महादेवेन स्वजटाजूटे धृतेति प्रसिद्धि " । Also, *Cf* "धन्या केय स्थिता ते शिरसि शशिकला किं नु नामैतदस्या । नामैवास्यास्त-हेतत्परिचितमपि ते विस्मृत कस्य हेतो । नारी पृच्छामि नेन्दु कथयतु विजया न प्रमाण यदीन्दु । देव्या निन्हेनमिच्छोरिति सुरसरित शाठ्यमन्याद्विभोर्व " ॥ *Mu.* I I also, *Cf* "सप्राप्त मकरध्वजेन मथन त्वत्तो मर्त्ये पुरा । तद्युक्त बहुमार्गाणां मम पुरो निर्लज्ज बोदुस्तव । तामेवातुनयस्व भावकुटिलां हे कृष्णकण्ठग्रह । मुञ्ज-त्याह रूपा यमद्वितनया लक्ष्मीश्च पायात्स व " ॥ *Rat.* I. 3

इन्दुलग्नोर्मिहस्ता &c On this *Sāro.* has the following remark: —"भनेन मुकुटीकृतत्वाच्चन्द्रस्य तल्लग्रहस्तेन महेश्वरमग्नकेशेषु जग्राहेति प्रण-विनीत्व व्यज्यते " ।

Sāro and *Su.* say that the the figure of this verse is उत्प्रेक्षा.

(LV). *सुरगज इव* &c. 'Elephant of the gods.' Every direction or quarter (they are in fact eight in number.—पूर्व—the East, पश्चिम—the West, उत्तर—the North, दक्षिण—the South, नैर्ऋत—the South-East, आग्नेयी—the South-West, वायव्य—the North-West, and ईशानी—the North-East) has a guardian or presiding deity and each of these deities called the दिक्पाल is furnished with a male and female elephant. *Amarasinha* gives the names as follows —"इन्द्रो बन्धिः पितृपतिनैर्ऋतो वरुणो मरुत् । कुबेर ईश पतय पूर्वासीनां दिशां क्रमात् ॥ ऐरावतः पुण्डरीको वायव्यं कुमुदोऽजान. । पुष्पदन्त सार्वभौमः सुप्रताकश्च दिग्गजा ॥ करिण्योऽभ्रमुकपिलपिगलानुपमा क्रमात् ताम्रकर्णी शुभ्रदन्ती चांगना चांजनावती" ॥

पश्चार्धलम्बी &c The other reading पूर्वार्धलम्बी which is adopted by *Sāro. Meghalatā, Val, Su, Mahima, Bha, Sand., Rām., Hara, Kalyā., Lakshmi.*, Wilson and other Jain *Avacharies* here is also possible and means, 'with the forepart of his body hanging down.' On this *Sāro* has the following note —"अत्रावदातस्यापि पश्चार्धस्थ प्रतिच्छाद्यामले च । अयं स्वेच्छया पयसि प्रतिबिम्बित वपुरन्यवर्णमेव प्र-तिभासते । तथा पवनवाहिताञ्जनाभिधानदिग्गज इव । स हि कालकान्तिरेव पुन-रैवावपवत्, तस्य कुन्दलावदातद्युतित्वेन प्रसिद्धत्वात् " ।

अस्यानोपगत &c. The proper place of the confluence of the Ganges and the Yamuna' is Praya'ga. (तिसृणां नदीनां सगम प्रयाग). The water of the former is whitish and that of the latter blackish. Hence the resemblance of the cloud with the Yamuna' Cf. Val. "त्वत्प्रतिबिम्बस्य यमुनाकारत्वात्" । Cf also R. XIII. 54-57 verses. Sa'ro., Meghalata., Lakshmi.,; Val, Mahima, Bha, Ram, Hara., Wilson and eight other MSS. read सगमेनाभिरामा, Nemidu'ta reads सगमेवाभिरम्या and Sa'ro. and three other MSS. notice सगमे चाभिरामे. One of the four MSS. of Uria characters omits this stanza

Sa'ro. says that the figure of this verse is उपमा, but Su. calls it गूढोपमा.

(LVI). नाभिगन्धैर्मृगानां, &c Wilson observes that this animal is what is called the Thibet Musk-deer, "but its favourite residence is among the lofty Himâlaya mountains, which divide Tartary from Hindusthân." Cf "प्रत्य हिमद्रिर्मृगनाभिगन्धि" ॥ Ku. I. 54 also "वृषवे वासितोत्संगा निषण्णमृगनाभिभि." R IV. 74 also "अध्यास्य चाम्भ पृषतोक्षितानि शैलेयगन्धीनि शिलातलानि" ॥ R. VI. 51.

शुभ्रचित्रनयनवशो &c. Cf "कैलासगौर वृषमारुरुक्षो" R II. 85 Also see 2nd verse. Cf. also उत्तरमेघ. II. 52. also Cf. "नि शेषविक्षालित-धातुनापि वप्रक्रियामृक्षवतस्तदेषु" । R V. 44 On this Sa'ro. has the following — "अत्र हिमगिरेर्नीहारधवलत्वाद्दूरगत्व मेघस्य साम्यास्पकत्वमिति भाव" ।

अध्वश्रमविनयने &c. Sa'ro explains this in the following way — "अथ वा किमर्थमध्वश्रमविनयने मार्गखेदोपनोदय, अध्वन. श्रम अध्वश्रम. अध्वश्रम विनयतीति एव शील तदध्वश्रमविनयि तस्मै ।

Sa'ro. and Su. say that the figure of this verse is उपमा.

(LVII). सरलस्कन्धसघट्टजन्मा &c. The conflagration of the woods, says Wilson, in India is of frequent occurrence; and the causes of it are here described by the poet The intertwining branches of the सरल, of the Bambu, and other trees, being set in motion by the wind, their mutual friction engenders flame. Cf. Su. "परस्पर वृक्षेण सह वृक्षसंघर्षणादुत्थितोग्निः" । Val. "तदसघट्टवशाद्धि सवानलो जायते." चमरी, A kind of deer, or rather the Yak of Tibet and Tartary, highly valued for its bushy tail. Cf. Sa'ro चमरीणां=अरण्यगवीनां" ।

अल &c. Su. "अलमतिशयेन=‘Completely.’ Mallinatha omits to explain this word in his commentary, and this is the only place where he inadvertently omits to notice it in his careful and learned commentary. Cf. "पटुतरवनराहात्पुष्टशष्पप्ररोहा । पृष्ठपवनवेगात्क्षिप्तसशु-क्कपर्णाः । दिनकरपरितापात्क्षिणतोया. समन्तात् । विदधति भयमुच्चैरक्षिमाण

वनान्ता ॥ विकचनवकुसुम्भस्वच्छसिंदूरभासा । परुषपवनवेगोद्धतवेगेन दू-
र्जं । तरुवटपलताग्रालिगनव्याकुलेन । विशिं विशिं परिदग्धा भूमय पावकेन ॥
ध्वनति पवनविद्ध पर्वतानां दरीषु । स्फुरति पट्टानिनाद शुष्कवशस्थलीषु । प्रसरति
तृणमध्ये लब्धवृद्धि क्षणेन । क्षपयति मृगवर्गं प्रान्तलग्नो द्वाग्नि ॥ बहुतर इव जात-
शाल्मलीना वनेषु । स्फुरति न कगौर कोदरेषु द्रुमाणा । परिणतदलशाखादुत्पत-
त्याशु वृक्षात् । भ्रमति पवनधूत सर्वतोऽग्निर्वनान्ते ॥ *Ri* 1. 22-25. The
above is the graphic description of the burning of a forest given to
us by *Kalidāsa* in his *Ritusanhara*.

आपन्नार्तिप्रशमनफला &c On this *Sāro*. and *Mahima*. have the
following note —“पिबन्ति नद्य स्वयमेव नाम्भः । खादन्ति न स्वादफलानि
वृक्षा । पयोमुचो नैव मृण चरन्ति । परोपकाराय सता समुद्ध्यः ॥ परोपकाराय
वहन्ति नद्यः । परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः । परोपकाराय दुहन्ति गावः । परोपका-
राय सता विभूतयः ॥ यद्यपि चन्दनविटपी विधिना फलकुसुमवर्जितो विहित ।
निजवपुषैव परेषा तथापि सतापमपनयति ॥ सचित्तं कतुषु नोपयुज्यते । आचित्तं
गुणवते न दीयते । तत्कदर्यपरिरक्षितं धनं । चौरपार्थवगृहेषु भुज्यते” ॥

(LVIII) शरभा &c These are fabulous animals supposed
to have eight legs and to inhabit snowy mountains like the Hima-
layas. They are represented as stronger than the lion

मुक्ताध्वानम् &c ‘Removed from their path, out of their way.’

लघयेद्यु &c ‘Would assail’

Sāro, *Meghalata*, *Val.*, *Su*, *Bha.*, *Sand*, *Rām Hara*, *Kalyāṇi*,
Wilson, and 12 other MSS read —“ये त्वां मुक्ताध्वनिमसहना स्वाङ्गभगा-
य तस्मिन् । हर्षोत्सेकादुपरि शरभा लघयिष्यत्यलघ्यम् । * * * वृष्टिहासावकी-
र्णान्, &c. For the reading given in our text. *Mahimāsānhaḡam*
reads according to our text and also notices and comments
upon the above text. Pro Isvarachandra Vidyāsāgara prefers
the above text and says —“पूर्वार्धे भरतादिसमतः पाठः समीचीन
तथा प्रतिभाति” ।

But the learned Professor omits this stanza in his text, be-
cause he considers it to be a spurious one without of course giving
any reasons for his omissions of the stanza

For करकावृष्टिपातावकीर्णान् *O* “सत्सर्जय त्वमथवा करकाभिघातैः” । पूर्व-
चातकाष्टकम् ।

(LIX). चरणन्यास &c The place here mentioned may have
some connection with a neighbouring hill at Haradvāra named
हरकपायरी. ‘The foot of Hara.’ It is called as श्रीचरणन्यास in the
शंभुरहस्य ।

सिद्धे &c This word is used here in its primary sense of ‘One
who by austere practices has attained to a state of beatitude, and
hence a devotee.’

परीया. &c. Circumambulating a venerable, person, observes Wilson, is a usual mark of profound respect. Thus, in अभिज्ञानशाकुन्तलम्, *Kanva* thus addresses his foster-daughter, on the eve of her departure —“ वत्से इत सद्यो हुताग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व”। “My best beloved, come and walk with me round the sacrificial fire” And again, in the *Ramayana*, we have the same ceremony described thus “जनकस्य वच. श्रुत्वा पाणीन् पाणिभिरस्पृशन् । चत्वारस्ते, चतसृणां वसिष्ठस्य मते स्थिता ॥ आग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा वेदिं राजानमेव च ऋषीश्चापि महात्मा सहभार्या रघूद्वहा ॥” “Hearing the words of Janaka, the four supporters of Raghu’s race, previously placed according to the direction of वसिष्ठ, took the hands of the four damsels within theirs, and, with their spouses, circumambulated the fire, the altar, the king, and the sages”

Su. interpretes ऊर्ध्व in a different way and construes it with सकल्पान्ते (this is the reading he appears to have taken) For his comments run thus —“ ऊर्ध्व ऊर्ध्वगति स्थिरगणपदप्राप्तये मोक्षाय सकल्पान्ते समर्था भवन्ति । कस्मात् करणविगमात् मलमूत्रान्वितदेहनाशात् ” &c. *Siro*, *Meghalatā*, *Mahima*, *Bha.*, *Sand*, *Rām*, *Hara*, *Wilson* and other MSS. read दूरम् for ऊर्ध्वम्; *Saro*’s comments run thus “दूरं यथा भवति तथा उद्धूतपापा. गतकल्मषा निर्लेष प्रनष्टपाप्मान. यदीयदर्शनेन प्रध्वस्तपातका क्षणविनाशि शरीर परित्यज्य भक्तिभाज. शाश्वती चिरपदवी लभन्ते इति तात्पर्यार्थः । उक्तं च । “न काष्ठे विद्यते देवो न पापाणे न कर्दमे । भावेषु वर्तते देवस्तस्माद्भाव न सत्यजेत्” ।

Val., *Bha.*, *Sand*, *Rām*, *Hara* and *Wilson* read कल्पन्तेऽस्य for कल्पिव्यन्ते *Pandit Prānanātha* of *Kashmira* prefers this reading to that of ours, but does not give any reasons in support of his preference He says —“करणविगमादूरमुद्धूतपापा कल्पन्तेऽस्याः । इति वा समीचीनं पाठः” । *Pio*. *Iśvarachandra Vidyāsāgara* prefers this reading and gives the following difference —अस्य अर्धेन्दुमौले । अयमेव पाठः साधीयान् निरुपसर्गस्यैव क्लृप्ते पर्याप्तिवाचकत्वात् समित्युपसर्गयोगे तु धातुरयमर्थान्तर बोधयति ।

Saro says that the figure of this verse is अवसरो नामालकारः । And further on defines it thus—तथा च । “अर्थान्तरमुत्कृष्टं सरसं यदि चोपलक्षणं क्रियते । अर्थस्य तदभिधानं सगतो यत्र सोऽवसरः” । But *Su.* says that the अलकारः is हेतुः .

(LX). कीचका पूर्यमाणा &c. *Of*. “य पूरयन् कीचकरं भगान् इरीमुखोत्थेन समीरणेन । उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगतुम्” *Ku*. I. 8. also “कीचकध्वनिहेतवः” । *R*. IV. 73. also “स कीचकैर्मारुत-पूर्णरन्ध्रेः । कूजजिरापादितवशकृत्वा । शुभ्राव कुजेषु यशः स्वमुच्चैः । उद्गीयमानं

वनदेवताभि ” । Here we find a beautiful description of the dry bamboo filled with the wind, sound like flutes and the sylvan deities sing to their music their songs of victory in honour of some hero.

त्रिपुरविजय &c. *Tripura lit.* ‘a collection of three cities,’ was the domain of a demon and was reduced to ashes by *Siva*. Others derive the word as follows —त्रिपुर three strong cities collectively, a triple fortification, (in epic poetry) three strong cities of gold, silver and iron, in the sky, air, and earth, built by मय for a celebrated Asura or demon, and burnt by *Siva*.

निर्ह्रादस्ते &c. *Sar'o*, *Meghalatā*, *Mahma*, *Su*, *Val*, *Lakshmi*, *Bha*, *Sana'*, *Ra'm*, *Hana*, *Kalya'*, Wilson and twelve other MSS. read here निर्ह्रादी ते &c Then the whole means —ते तव ध्वनि चेत् यदि मुरज इव मृदगध्वनिरिव कन्दरेषु दरीषु निर्ह्रादी प्रतिध्वनिमत्त्वात् गभीरशब्दवान् स्यात् । “निद्राव शब्दगाभीर्यम्” इति बल । *Bha* “चेत् यदि ते तव ध्वनि कन्दरेषु गुहागर्भेषु प्रतिफलनवशात् मुरज इव उपचारान्मुरजशब्द इव निर्ह्रादी स्यात् मृदगध्वनिमनुकुर्यादित्यर्थ । *Kalya*.

(LXI) कौञ्जरन्ध्रम् &c This pass is situated, observes Dowson, somewhere in the Himālayas, and is said to have been opened by परशुराम with his arrows to make a passage from कैलास to the southwards The वायुपुराण attributes the splitting of the mountain to कार्तिकेय Indra and कार्तिकेय had a dispute about their respective powers, and agreed to decide it by running a race round the mountain They disagreed as to the result, and therefore appealed to the mountain, who untruly decided in favour of Indra “कार्तिकेय hurled his lance at the mountain and pierced at once it and the demon महिष.” Cf “तत्रैवामावन नाम सर्वलोकेषु विश्रुत । अर्धनारीनर रूप धृतवान् यत्र शकरः ॥ तथा शरवण नाम यत्र जातः षडाननः । यत्र चैव कृतोत्साहः क्रौञ्चशैलवन प्रति ॥ ध्वजापताकिनं चैव किकिणीजालमालिन । यत्र सिंहस्थ युक्त कार्तिकेयस्य धीमतः ॥ चित्रपुष्पनिकुजस्य क्रौञ्चस्य च गिरिस्तटे । देवारिस्कन्दनः स्कन्दो यत्र शक्ति विमुक्तवान् ॥ यत्राभिषिक्तश्च गुहः सेन्द्रोपेन्द्रैः सुरोत्तमैः । सेनापत्ये च दैत्याग्निर्द्वादशार्कप्रतापवान् ॥ भूतसंघावकीर्णानि एतान्यन्यानि च द्विजाः । तत्र तत्र कुमारस्य स्थानान्यायतनानि च ॥” वायुपुराण Cha 41 36-41 I have not been able, observes Wilson, to make anything of this pass or hole The original text states it to be on the very skirt (उपतट) of the snowy mountain; and calls it also हंसद्वार, ‘The gate of the geese,’ who fly

annually this way to the lake मानस क्रौञ्च is described as a mountain, in the महाभारत, and, being personified, is there called the son of मैनाक. A mountain also called क्रौञ्चमेरु occurs in Mr Wilford's lists, amongst those mountains situated in the north. It must lie at some distance from the plains; and perhaps the Poet, by using the term उपतट, implies its relative situation with the loftiest part of the range or proper snow-clad mountain. Others say that the क्रौञ्च mountain is a part of the Himālaya range, situated in the eastern part of the chain on the north of Asam. The क्रौञ्च pass in the क्रौञ्च mountain is said to have been made by the arrows of भृगुपति or परशुराम who was educated by शिव on mount कैलास and who thus opened him-self a passage from the mountain upon the occasion of his travelling southward to destroy the Kshatriyas. Śāro calls it क्रौञ्चगिरि so do Mahima, Su and Val.

हसद्वार &c The flamingoes pass through the क्रौञ्च defile while journeying to the मानस lake every year. Hence it is called the 'gate of the flamingoes'. This mountain range is situated in the north of मेरु.

अनुसरे &c पार्श्वभ्युदय reads here अनुपते. This may have been the correct text as the word अनुपद् is frequently found used in this sense in Kālidāsa's works. Cf. "मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्त-वृष्टिः" । Sa I Vallabha and others read अभिसरे, which too
ly happy.

&c Vishnu in his fifth incarnation restrained the बलि and placing his foot upon his head thrust him tāla. The particulars of this story are well known.

I). दशमुखभुजो &c This alludes to the story of Ravana's tempted to remove the mountain Kailāsa from its situation. Though he did not succeed in the attempt he considerably
foundation. Cf. "समुत्क्षिपन्न यः पृथिवीर्वाभृता वर वरप्रदान-
नः । त्रसत्तुषाराद्रिसुतासप्तभ्रमस्वयप्रहाक्षेपमुखन निष्क्रयम् ॥

Virasvâmin derives this as "कैलासः स्वर्गस्यैव
ountain is a part of the Himālaya range. In
costly gems or crystals, the site of
he favourite haunt of Siva.

Ita, Val., Mahima., Su., Lakshmi.,

Bha., *Sanâ*, *Hara*, *Kalyâ*, Wilson and eleven other MSS read प्रतिदिशम् for प्रतिदिनम् Prof. Isvarachandria Vidyâsâgara prefers this reading but does not give any reasons for his preference For he simply says —“अयमेव पाठ साधीयान्” । It may be that the lofty peaks of the Himâlaya range of mountains are visible to surrounding regions (प्रतिदिशम्). Wilson observes that they are seen in the south, from situations more remote than those in which any other peaks have been discerned.

अट्टहास. &c. ‘The loud laughter, cachination’ This is, according to the belief or practice of the Sanskrit poets, white. Cf. शरदिन्दुकुन्दघनसारनीहारहारमृणालमरालसुरगजनरक्षीरगिरीगाट्टहासकैलासकाशनीकाशमूर्त्या रचितदिगन्तरालपूर्व्या कीर्त्याभितः मुगभितः । *Dasa P* 1 “हासस्य श्वेतत्वात्कैलासस्य तुल्यत्व” । *Mahima*

(LXIII) स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे &c. Cf. “क्वचित्प्रभिन्नाञ्जनराशिसनिभैः । *Ri Rainy Season* 2

हन्भूत &c ‘Lit. ‘the plough-bearer, & e बलराम He is represented of a white colour clothed in a dark blue vest Cf. “तमतनुवनराजिज्याभितोपत्यकान्त । नगमुपरि हिमानीगौरमासाद्य जिष्णुः । व्यपगतमदरागस्यानुसस्मार लक्ष्मीमसितमधरवासो विभ्रतः सीरपाणेः” । *Kna.* IV 68. “हलधरपरिधानश्यामलैरम्बुवाहै.” । *S.* IV. 68 also “वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभ हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् । केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे” । *Gita G.* ‘Thou bearest on thy bright body a mantle shining like a blue cloud, or like the water of the यमुना tripping towards thee through fear of thy furrowing plough-share, O केशव’ assuming the form of बलराम, be victorious O हरि’ Lord of the universe’ Cf. also *Sâro* “रेवतीरमणवसनोपमानेन पयोद प्रमोदयन् निजप्रयोजननिष्पत्तये त्रिपुरहरशिखरारोहणे नियुक्ते” ।

(LXIV) विचरेत् &c *Pârsvâ.*, *Val*, Wilson and Krishna Sastri Bhâtavadekar here read विहरेत् This reading appears to be happier as it is more poetic than विचरेत् Prof. Isvarachandria Vidyâsâgara also prefers this reading and says —“अयमेव पाठ साधीयान्”

कुरु मणितटारोहणायप्रयायी &c. *Bha.*, *Sanâ.*, *Râm*, *Hara* Wilson and two other Mss. read here व्रज पदसुखस्पर्शमारोहणेषु On this *Bharata*’s comments run thus —“पदसुखश्चरणसुखकारी स्पर्शी यत्र तादृश यथा स्यात्तेव.” Pro Isvarachandria Vidyâsâgara prefers this without giving any reasons, because he says. —“अयमेव पाठः समीचीनतया प्रस्तिषाति”.

दत्तहस्ता &c. *Cf.* “नगेन्द्रतनयानागेन्द्रकेयूरयोः” *Vivāha Mangala.*

(LXV) वलयकुलिश° &c. *Sāro. Meghalatā, Lakshmi, Mahim, Su' Val,* and eleven other MSS read here कुलिशवलय° &c, and translate कुलिश by ‘diamond’, for the explanation they give runs thus — “कुलिशसयुक्तानि हीरकाविद्धानि वलयानि कुलिशवलयानि”। *Sāro* “वज्रपर्याय-त्वात्कुलिशशब्देन हीरका उच्यन्ते.” *Mahima* “कुलिशशब्देन हीरकाः” *Su.* “कुलिशवलयस्य वज्रवलयस्य.” *Meghalatā*. But the *Panjika* of *Lakshminvāsa* translates कुलिश by ‘lightning’, for it says — कुलिशवलयस्य विद्युद्वलयस्य Wilson too understands it in the same way, for he observes that the diamond and thunderbolt, according to Hindu notions, are of one substance, and are called by the same appellation (वज्र) As the fall of the thunderbolt is usually followed by rain, and may thus be considered as its cause, the propinquity and the mutual friction of the same substance upon the wrist of our young ladies is, in like manner, supposed to occasion the dispersion of the fluid treasures of the cloud. But *Mallinātha* takes it as ‘the sharp points of their armlets,’ and not according to the above commentators. Because he renders वलयकुलिशानि as कक्कणकोटयः and further on he supports it by saying — “शतकोटिवाचिना कुलिश-शब्देन कोटिमात्रं लक्ष्यते,” *Vide* commentary on the same.

यंत्रधारागृहत्वम् &c *Sāro* explains this word as. — “यंत्राण्यनेकसंचार-चतुरान्तविवरावभासितशालभजिकाप्रभृतीनि तत्करतलाद्यवयवप्रवृत्तवारिधारा-भिरुपलक्षितं ग्रीष्मोष्मनिषेधकं धनिनां धाम यंत्रधारागृहत्वं.” *Mahima.* says :— “अनेकसंचारचतुरान्तविवरावभासितपुत्तलिकादीनि तत्करतलाद्यव-यवे प्रवृत्तवारिधाराभिरुपलक्षितं ग्रीष्मतापशमनं धनिनां धाम धारागृहं कथ्यते । एकान्तस्थाने ग्रीष्मतापनिवारणाय काष्ठपाषाणेन पुत्तलिकादिसम्बन्धेन जलनिर्झरणं मेघजलकणपातनार्थं स्थानं सुखिना गृहे यंत्रधारागृहाणि कथ्यते.” *Val* has the following :— “यदि किलानिलवशाद्देशममध्ये निक्षिप्ता विरलं वर्षसि तदा त्वमेव यंत्रधारामय गृहं सपद्यसे । ग्रीष्मे हि संतापवारणयादृशा धारागृहान्कुर्वन्ति. ”

धर्मलब्धस्य &c. ‘Acquired (by them) in the hot season’, qualifies तव. “निदाघकाले प्राप्तस्य तव ” *Sāro.* “ग्रीष्मर्तौ प्राप्तस्य तव. ” *Su.* “ उष्णकाले प्राप्तस्य तव. ” *Mahima.*

क्रीडालोलाः &c. ‘Given to play, engaged in sporting;’ qualifies

ताः। “क्रीडालोलाः केलिलपटाः”. *Sâro.*, *Val.* “कुलक्रीडाया अत्यन्तनिरताः”
Mahma “क्रीडासु जलकेलिषु लोला आसक्ताः”. *Su*

भाययेस्ताः &c *Cf.* ताः. “वातैर्विधूनय विभायय भीमनादैः । संचूर्णय
 त्वमथवा करकाभिघातैः । त्वद्वारिबिन्दुपरिपालितजीवितस्य । नान्यागतिर्भवति
 वारिद चातकस्य” ॥ *Purvachâtakâshtaka* Here *Parsvâ*, *Val.*,
Bhâtavadekar and three other MSS read भीषयेः and *Sâro.*, *Megha-*
latâ, *Panjikâ*, *Mahma*, *Su* and nine other Mss read भापये, but,
 both these readings appear incorrect; because the causal bases
 भापि=भापयते and भीषि=भीषयते are invariably used in the *Atm.*
 in the sense of ‘He inspires fear &c,’ while the base भायि=भाययति
 is always used in the *Par.* in the sense of ‘He frightens one with
 &c’. “(a) बिभेतेर्हेतुभये” । “(b) नित्य स्मयतेः” । The root भी
 substitutes आ optionally and स्मि necessarily for their vowel in the
 causative base if the effect is produced by the agent. “(c) भियो हेतुभये
 षक्” । The root भी takes the augment ष् in the same circumstan-
 ces “(d) अतिहीनीरीक्यूयिश्माय्यातांपुणैः” । The roots कृ, ह्री, क्ली,
 री, क्यूय्, क्षमाय् and the roots ending in आ take the augment ष्.
 And the vowel of these roots undergoing गुण change. “(e)
 भिस्म्योर्हेतुभये” । The roots भी and स्मि take *Atm.* in the causative
 base if the effect is produced by the agent. as भापयते, भीषयते,
 ‘inspires fear’, विस्मापयते ‘astonishes.’ मुण्डो भापयते, जटिलो विस्मापयतेः
 otherwise भाययति, विस्माययति ‘frightens or astonishes any one with
 anything’ as -कृचिकया एन भाययति, विस्माययति &c *Mallmâtha*
 also argues the same and says —“अत्र हेतुभयाभावादात्मनेपद पुगागमः
 पुगागमश्च न” । And for these reasons we prefer भायये to either
 भीषये or भापये.

(LXVI). मानसस्य &c. The lake मानस is in the Himâlayas In
 the वायुपुराण it is stated that when the ocean fell from heaven
 upon Mount Meru, it ran four times round the mountain, then it
 divided into four rivers which ran down the mountain and formed
 four great lakes, अरुणोद on the east, शीतोद on the west, महाभद्र on
 the north, and मानस on the south. According to the mythological
 account, the river Ganges flows out of it, but in reality no river
 issues from this lake, though the river Satlej flows from another and
 larger lake called रावणह्राद, which lies close to the west of मानस.

क्षणमुखपट° &c. *Mallmâtha* here takes क्षण to mean ‘the time of
 drinking water,’ but it may also mean ‘for a moment.’ It is

customary, as *Sa'ro*. says, to veil the trunks of elephants when they drink water “कुजरा किल मुखपदेन प्रावार्यन्ते । सुरगजोऽपि तत्र वने क्रीडाया विचरति”। *Mahima* says —“स्वर्गजोऽपि तत्र वने क्रीडाया विचरति ।” *Val* says —“गजा हि मुखपदेन प्रीयन्ते” ।

हेमांभोजप्रसावि &c In connection with this the *Sa'ro*. has the following remark —“एतेन तदुदकस्य भक्तिप्रतिपादन” ।

कामम् &c *Mallinatha* connects this word with निर्विशे, but it is more natural to connect it with कुर्वन् in the sense of ‘gladly,’ ‘willingly’ &c

धुन्वन्वात्ते. &c. Cf. “वातैर्विधूनय विभायय भीमनादै” । *Purvacharita'shtaka*

Bharata. *Ra'mana'tha* and *Kalya'namalla* omit this verse

(LXVII) स्रस्तगगादुकूलां &c In connection with this *Sa'ro* says —“तत्र किल मन्दाकिनी वहति तथा च अविज्ञानभूतया अवश्यमसौ ज्ञातु शक्नव्य इति भाव” । *Val* says —“जाह्नवी हि तत्र वहति” ।

उच्चैर्विमाना &c Here the word विमान is used in the sense of ‘a sevenstoried house’ In the metaphor, however, it means ‘free from anger and in connection with उच्चैः, it means completely free from anger.



उत्तर मेघम्.

(1) The first 13 verses of उत्तरमेघ are descriptive of अलका; the order, however, in which they are given by *Mall* here differs greatly from that of *Pârsvâ*. We give below the orders of both.—

| Serial No. | Beginning of verse. | Pârsvâ's order. |
|------------------------------|----------------------------|-----------------|
| 1 | विद्युत्त्वत् &c. | 1. |
| 2 | हस्ते लीला &c. | 6. |
| 3. | यत्रोन्मत्त &c. | 5. |
| 4 | आनन्दोत्थ &c. | 4. |
| 5 | यस्या यक्षा &c. | 7. |
| 6 | मन्दाकिन्या &c. | 10. |
| 7 | नीविबन्धो &c. | 8. |
| 8 | नेत्रानीता &c. | 9. |
| 9. | यत्र स्त्रीणां &c. | 2. |
| 10 | अक्षय्यान्तर &c. | 11. |
| 11 | गत्युत्कपाद् &c. | 3. |
| 12 | मत्वा देव &c. | 14. |
| 13 | वासाश्चित्र &c. | 12. |
| 35 th of पू० मे० पत्रद्वयाना | &c. | 13. |

It will be seen here that *Pârsvâ* reads the 35th verse of the पूर्वमेघ between the 13th and the 12th (i. e. between ' वासाश्चित्र ' &c. and ' मत्वा देव ' &c); but *Val.*, *Su*, *Lakshmi.*, and five other MSS. (originally designated as O, Q, R, S, and T) read the same between ' विद्युत्त्वत् ' &c and ' हस्ते लीला &c'. only the MS G2. reads this verse between ' हस्ते लीला &c'. and ' आनन्दोत्थ &c.' (this appears to be its order); and thus gives 14 verses instead of 13 in the description of *Alakâ* Cf verses descriptive of औषधिप्रस्थ in *Kîmârasambhava* VI. 37—46.

प्रहतमुरजाः &c. Cf. “ शिखरासक्तमेघाना । व्यज्यन्ते यत्र वेश्मना । अनुगर्जितसदिग्धाः करणेः मुरजस्वनाः ” ॥ *Ku.* VI. 40.

अभ्रलिहाग्राः &c. Cf. “ प्रासादमभ्रकषमाससाद ” । *Nal* VI. 57.

यत्र तैस्तैर्विशेषैः &c. Cf “ दधदम्बुदनीलकण्ठतां । वहदत्यच्छमुधोज्ज्वलं

वपुःस्थितम् यत्र नाम न । क्षितिभृन्मन्दिरमिन्दुमौलिताम् ” ॥ *Nai.*
II. 82.

(II). This verse makes mention of different flowers peculiar to different seasons, as—the lotus blooms in शरद्, the *Kunda* in हेमन्त, the *lodhra* in शिशिर, *Kurabaka* in वसन्त, the *Surisha* in ग्रीष्म, and the *Kadamba* in वर्षा Cf. the comments of *Sa'ro*—“अत्र दीव्यानुभावाच्चतुर्णां ऋतूनां एककालसंभवोक्तिः,” and also “अत्र कनकाद्याभरणभारपरिहारेण कुसुमालंकारधारणं नारीणां नागरिकत्वं प्रतिपादयति । निसर्गसुकुमारशरीराणां चतुरसुंदरीणां कनकरत्नमयाद्याभरणपरिहारेण पुष्पालंकारधारणमेव प्रायः प्रीतिनिबन्धनमिति” । Also *Val.*—“तदेतेन कनकालंकारनिरासिन योषितां नागरत्वमुक्तं सर्वर्तुसमृद्धिश्च” ।

We cannot help, however, being pleased with the simplicity and propriety of taste, observes Wilson, which gives to the graceful ornaments of nature so prominent a part in the decoration of feminine beauty.

हस्ते लीलाकमलम् &c. Cf. “लीलाकमलपञ्चाणि गणयामास पार्वती” *Ku.*
VI. 84.

(III) This and the following are considered by *Mall.* as interpolations and are omitted by *B.*, *W.*, *Bha.*, *Sanā.*, *Rām.*, *Hara*, *Kalyā.*, and three other MSS.

यत्रोन्नतभ्रमरमुखरा &c For the trees buzzing with humming bees, Cf. “विरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव पत्रविशेषकाः । मधुलिहां मधुदानविशारदाः कुरबका स्वकारणतां ययुः” ॥ *R* LX 29.

नित्यपुष्पाः &c. Here *Mahim.* and *Su.* have the following notes—“दिव्यप्रभावात्.” “देवानुभावादिति भावः” ।

प्रतिहतमोहवृत्तिरम्या &c *Val.* has the following remark on this—“इतेनास्य (probably *Vallabha* may have intended this for the description of the garden called वैभ्राज) सर्वरम्यत्वमुक्तं ”

केकोत्कण्ठा &c *Mahim.* has the following annotation on this, he says.—“अन्यत्रत्यानां मधुराणां घनागमे एव केकोत्कण्ठाः । अलकायां तु सदैव केकोत्कण्ठाः”

Mahmasamhagan reads this after “गत्युत्कम्पा &c.”, but *Vallabha* and *Sumatirajaya* read this after “नीवीबन्धो &c.” so do the six Jaina *Avachuries*.

(IV) आनन्दोत्थ &c. For the description of the blessed condition of अलका on the *Himālaya*, Cf.—“यौवनान्ते वयो यस्मिन् (i. e.

औषधिप्रस्थे) नान्तकः कुसुमायुवाक् । रतिखेदसमुत्पन्ना निद्रा संज्ञाविपर्ययः”।
Ku VI. 44

नायस्तपः &c. Here *Sa'ro* has the following annotation:—
“न पुनर्व्याधिदग्निद्रादिजनितः” and *Su.* has:—“दुःखाज्जनितो न.” *Mahma.*
has:—“चुलकयसि चन्द्रदीपितिमाविरलमभ्रासि नूनमगाराव । अधिकतरमुष्णम-
नयोः किमिह चकोरावधारयसि”॥

प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्तिर्न &c. On this *Sa'ro* has:— “न पुनर्दु-
श्चरणदेशान्तरजनितः”।

यौवनादन्यदस्ति &c Here *Sa'ro* has the following remark -
“न पुनर्बुद्धिलक्षणं वयोऽस्ति”।

इष्टसयोगसाध्यात् &c. On this *Mahma.* has the following
annotation He says - “इति वल्लभसयोगाभावे तापः । सयोगे कामतापाभावे ।
यथा । “उपरि निपतितानां स्वस्तधम्मिल्लक्षणां । मुकुलितनयनानां किंचिदुन्मीलि-
तानां । सुरतजनित [समर]खेदस्विन्नगण्डस्थलीना (स्थलाना) । अधरमधु
वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति” । तथा । “त्वत्केशाञ्जलवत्प्रदीपितमद त्वन्मध्यवन्मु-
ष्टिना प्राप्त्यं त्वत्कुचकुम्भवन्नखमुखव्यापारलीलास्पद । त्वच्चेतोवदमदरागजननं-
त्वन्मूर्तिवत्कामद स्वादिष्ट च तवोष्ठवत्तृणानि मे ताम्बुलमानीयताम्.”

(V) सितमणिमयानि &c. On this *Mahma* and *Su.* have the
following annotations.— “इन्द्रीलमणिसमूहनिर्मितानि” । “इन्द्रीलमणिर
चितानि” And further on *Mahma.* says:— “अत्र केचित् सितमणि-
मयानि पठन्ति तन्न युक्त । यतो मरकतेष्वेव प्रतिबिम्बितानि नक्षत्राणि
कुसुमप्रकरायन्ते । तत्र स्फटिककुट्टिमेषु सदृशवर्णत्वान्नक्षत्राणां कुसुमप्रकरोपमा
न समघटि” । Probably he takes सितमणि in the sense of
मरकतमणि. Or whether he reads मरकतमणि for सितमणि is
certainly difficult for us to make out The MS. at our disposal
is mostly incorrect and we cannot make out any sense of what
he says in his comments of the above discussion.

हर्म्यस्थलानि &c. ‘The rooms of palaces.’ *Sa'ro.*, however, explains
it as.— “हर्म्याणि धवलशृङ्गाणि तेषां स्थलानि उपरितनभूमीः प्राप्य” ।
‘The terraces of palaces.’ *Mahma.* explains it as follows:— “हर्म्याणां
स्थलानि स्थलाकारत्वाद् गृहकुट्टिमस्थानानि ।” ‘The pavement of palaces.’
Su. has the same, for he says - ‘हर्म्यस्थलानि गृहकुट्टिमस्थानानि.’ *Val.*
has.— “हर्म्यस्थलानि सौधस्थलानि” ‘The terraces of palaces.’ But

Mall is silent here. Cf “स्फटिकोपलविग्रहा ग्रहाः” | *Nai* II 74. “यत्र स्फटिकहर्म्येषु नक्तमापानभूमिषु ज्योतिषा प्रतिबिम्बानि प्राप्नुवन्त्युपहारताम्.” *Ku* VI 42

उत्तमस्त्रीसहायाः &c *Mahma* explains it as — “अत्र उत्तमपद-
स्यायमाभिप्रायः उत्तमा उत्तमकुलप्रसूता परिणीता या स्त्री सैव सहाया सभोगा-
वस्थाया द्वितीया एषां ते तथा ” ।

रतिफलम् &c Name of a certain intoxicating drink as described by *Mallina'tha Sa'o* and *Val* explain this as — “रतिकान्तक्रीडैव फलं यस्य तत्र । सुरतकोलिकार्ये । न तु कलहादिजनक, कल्पवृक्षज मधु सव-
न्ते ” । The other reading रतिरस (which is adopted by *Bha Sand' . Ra'm, Hara*, and *Wilson*) is thus explained by *Bharata* . “रतो सु-
रते रसोऽनुरागां यस्मात्तत्तथा ” ।

शनकैः &c *Sa'o* explains it as — “कथ शनकैः मन्द मन्दं । शृगागा-
हत्वात् पानगोष्ठ्या कठोरवादित्र नोपभुज्यते इति भावः ।”

पुष्करेष्वाहतेषु &c With reference to this *Val* has the following remark. He says — “तदेतेन दपत्योः सदा सुखितत्वमुक्तम् ” ।

Mahm. and *Su* read this verse after “यत्र स्त्रीणा &c.” But *Val* reads it after “हस्ते लीला &c.” Between “विद्युत्स्वत ” &c and “हस्ते लीला &c” *Vallabha* reads first “शष्यदयामां ” &c and then “आन-
न्दोत्थ &c.” ।

(VI) मन्दाकिन्याः &c Cf “तर्हि ख मन्दाङ्गीए पुलिणेषु गदा सि-
कदापव्वदकेलीहिं कीलमाणा विज्जाधरदारिआ उड्गवदी णाम देण राए-
सिणा णिइझाइदेत्ति कुविदा उव्वसी । तत्र खलु मन्दाकिन्याः पुलिणेषु गता
सिकतापर्वतकेलीभिः क्रीडन्ती विद्याधरदारिका उदयवती नाम तेन राज्ञ-
र्षिणा निदिध्यासितेति कुपितार्वशी ” । *Vi* IV. Appendix A p. 104.

सेव्यमाना मरुद्भिः &c Cf “सोऽय रभानटनचटुलैः सेव्यमानो मरुद्भिः” ।
Uddhavasamdesa. 31.

मन्दाराणां &c *Mandāra* is one of the five heavenly trees which flourish in Indra's Svarga They are thus enumerated in the अमरकोशः—“पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः । सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ” । Cf. “आप्लुतास्तीरमन्दारकुसुमोत्कीर्वाचिषु ” ॥ *Ku* VI. 5.

कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढेः &c *Sa'o* explains it as.—“कस्या मुष्टौ म-
णयः सन्तीति ज्ञातव्यैः” ।

सञ्जीवन्ते मणिभि &c. Allusion is here made to a provincial sport called गूढमणि *Vide Malli's* comments.

अमरप्रार्थिता &c In connection with this *Sāro* has the following note - “देवानामपि दुर्लभा ” । But *Mahima* says —“रूपतिशयाद्वैरभिलषिताः.”

कन्या &c *Saro* explains it as —“यद्यपि कन्याशब्दो नार्या कुमर्या च वर्तते तथाप्यत्र बालिका एव गृह्यन्ते प्रायस्ता एवेत्थ क्रीडन्तीति ” । Such is also the explanation of *Mahima*.

Val, *Bha*, *Sanâ*, *Râm*, *Hara*, *Kalyâ*. and *Wilson* omit this verse Prof. Isvarachandra Vidyâsâgar considers it to be a spurious stanza.

Su reads this after “यत्रोन्मत्त &c.” This is the 11th verse according to his order. *Mahima* reads this after “नीवीवन्धो &c ” This is the 4th verse according to his order

(VII) अर्चिस्तुगात्र &c *Vallabha* explains this as महाज्वालात्र ‘having high flames,’ and *Sāro* explains it as महाद्युतीन् ‘having great lustre or light’ *Mahima* says, तेजसा प्रवृद्धात्र But *Su* says —“उच्चैः स्तरात्र ” Cf “रतौ द्विया यत्र निशाम्य दीपान् जालागताभ्योऽविगृह्य हिण्यः । विभ्रुर्विडालेक्षणभीषणाभ्यो वैदर्भकुड्येषु शशिद्युतिभ्यः” । *Si* III. 45 *Val*, *Sāro*, *Mahima*, *Meghalâta*, *Su*, G2, *Bha*, *Sanâ*, *Râm*, *Hara*, *Kalyâ*, *Wilson* and eleven other MSS read यक्षागनानां for विम्बाधराणां Prof. Isvarachandra prefers this reading, saying-“अयमेव पाठः साधीयान्.”

अनिभृत &c Here the word अनिभृत means ‘trembling or bold’ through passion

The Yaksha women, overcome by shame when their garments were thrown away, tried to put out the lamps by throwing powder over them, but the lamps being made of jewel their light could not be extinguished. Cf *Su* “अत्रागनानां रत्नप्रदीपनिर्वापणप्रवृत्त्या मौग्ध्यं व्यज्यते । ” *Mahima*. “चूर्णमुष्टिवैफल्यम्” ।

चूर्णमुष्टि &c. Here चूर्ण means not only any powdered or pounded substance, but especially aromatic powders of saffron, which generally constitute part of an Indian lady's toilet

(VIII) दोष &c The harm caused here by water, as *Malli* says, is in the form of cracks

Prof Isvarachandra Vidyâsâgara repudiates both the readings, *i e*. स्वजलकणिकादोषम् and नवजलकणैर्दोषम् and proposes a new read-

ing for these He says— “उभावेव पाठौ न समीचीनौ स्वजलकणिका-
दोषमित्यत्र आलेख्यदूषणे स्वजलकणिकानां कारणत्वात् स्वजलकणिकाभिर्दो-
षमित्येवंरूपस्यासमस्तस्यैव प्रयोगस्यौचित्यात् नवजलकणैरित्यत्र च नवेति
विशेषणस्यानुपयोगात् तस्मात् । “निजजलकणैर्दोषम्” । इत्येवरूप एव पाठः
समीचीनतया प्रतिभाति ।”

Val reads this verse after “यत्रोन्मत्त &c ” It is the 9th verse according to his order *Mahima*. reads it after “वासश्चित्र &c. ” It is the 10th verse according to his order *Su* reads it after “मन्दाकिन्या &c ” It is the 12th verse according to his order. Vide note on the 6th verse

निष्पतन्ति &c *Cf* “कुतूहलेनेव जवादुपेत्य प्राकारभित्त्या सहसा निषिद्धः।
रसन्नरोदीद् भृशमम्बुवर्षव्याजेन यस्या बहिरम्बुवाहः” । *Sl.* III 41

(IX) चन्द्रकान्ताः &c The moon-gem are supposed to absorb the rays of the moon and to emit them again in the form of pure and cool moisture *Cf* “कान्तेन्दुकान्तो-
पलकुट्टिमेषु प्रतिक्षपं हर्म्यतलेषु यत्र । उच्चैरधःपातिपयोमुचोऽपि
समूहमद्भुः पयसां प्रणाल्यः” । *Sl.* III. 44 also—“चन्द्रपा-
दजनितप्रवृत्तिभिः । चन्द्रकान्तजलबिन्दुभिर्गिरिः ॥ मेखलातरुषु निद्रि-
तानिमात्र । बोधयत्यसमये शिखण्डिनः” । *Ku* VIII. 67.

Saro explains the reading प्रियतमभुजालिगनोच्छ्वासितानां as—
“प्रियतमस्य बल्लभस्य भुजालिगन बाहुपरिरंभण तेनोच्छ्वासितानां प्रबलश्वा-
सभाजिनीनां पीडितानां” । *Val* the same as—“भर्तृभुजाबन्धनपीडिता
नाम्” । *Kalyâ* explains the same as—“प्रियतमभुजालिगनं उ-
च्छ्वासितानां क्लान्तानामित्यर्थः” । *Mahima* explains it as—“प्रियतमानां
भुजालिगनानि तैरुच्छ्वासितानां *** स्नेहातुरात्यन्तालिगनैः प्रबलश्वासभ-ज-
नाकृतानां आलिगनस्यातीवत्वरोत्पादकत्वादित्यर्थः” । *Su.* explains it as—
“प्रियतमभुजाभ्यामालिगनेनोच्छ्वासिताः” । Prof. Isvarachandra Vidyāsāg-
ara prefers our reading and remarks —“अयमेव पाठः समीची-
नः प्रियतमैर्गण्डमालिगितानामेव कामिनीनां सुरतजनिताया अगम्लानेः संभवा-
त्” । Prof. Isvarachandra prefers also the reading “प्रेरिताश्चन्द्रपा-
दैः” with this remark:—“एतेषां संमतः पाठः समीचीनतया प्रतिभाति.”

Saro. notices and explains the reading “यत्रजालावलम्बाः इति पाठे
यंत्राणि पुत्रिकाप्रभृतीनि तदुक्तेषु जालेषु अवलम्बन्ते ये ते तथोक्ताः” ।

३. गङ्गलानि सुरतजनितानि &c In connection with this *Sa'ro* has the following annotation—"यत्र प्रतिरजानि रजनीकरकरनिकरसंपर्कतुहिनतर पयांसुबुविन्दुस्पन्दिसद्धानि दन्तिरतिकेलिक्रमहारित्वमनोहराणि सा पुण्यजननगरीति पयोद वेदितव्या " ।

(X). *Bha.*, *Sanâ.*, *Râm*, *Hara*, *Kalyâ* Wilson and four other MSS. omit this verse. Prof. Isvarachandra also thinks it to be a spurious stanza.

वैभ्राजाख्य &c. The ordinary name of this garden attached to Alakâ is चैत्ररथ Cf. "एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान्" । R. V. 60. Compare also *Val*, "वैभ्राजाख्य चैत्ररथ "

Sâro, *Mahima*, *Su.*, *Meghalatâ*, *G1*, *Sisuhataishini*, and seven other MSS read "बद्धापान," and explain it as—"रचितपानगोष्ठिक" । *Sâro*, "बद्धे रचितं आपान बाह्यपानगोष्ठी यत्र तत्" । *Mahima* : "बद्ध रचित आपान पानगोष्ठी यत्र तत्" । *Su*, *Vallabha* reads "मध्वापान " and explains it as,—“मधुनो मद्यस्यापानं पानगोष्ठिका यस्मिन् तत् ” ।

विबुधवनितावारमुखासहायाः &c. In connection with this *Sa'ro*. has the following note—"कलाकुशलागनावैश्यासहिता वा " ।

(XI) गत्युत्क्रमाव &c. *Sâro* explains this as—"गतिः गमनतया उक्ता प्रबल्येन कपः चलन तस्मात् । अलघुजवनभराक्रान्ततया वनतरतिमिरतिरस्कृतमार्गान्तरालसरभसचरणसंजातत्वात् शरीरप्रकपः इत्यर्थः" ।

अलकपतितैः &c. *Sa'ro* explains it as—"कुटिलकेशविच्युतैः " ।

Eleven MSS. read पत्रच्छेदैः—"पत्राणां दलानां छेदनं खण्डनमर्हन्ति इति पत्रच्छेदाणि तैः । " "पत्रच्छेदैः " "इति पाठान्तरे नागवल्लीदलशकलं ।" *Sâro*, *Vallabha*, and two other MSS. read "कृतच्छेदैः—रचित-विशेषै ।"

मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः &c. Here *Vallabha*, *Sâro*, and three other MSS read—"मुक्तालमस्तनपरिमलैश्छिन्नसूत्रैः" &c. and explain it as,—“मुक्तामणिषु लग्नः स्तनपरिमलः कुचामोदो येषां तैः ” *Val*, "मुक्तासु मौक्तिकेषु लग्नः सबद्धः स्तनयोः परिमलः मलयजादीनामामोदो येषु तैः । पुनः कथंभूतैः हारैः छिन्नसूत्रैः छिन्नानि द्विधाभूतानि सूत्राणि गुणाः एषां तैः । अथ वा समस्तमुक्तसु लभो योऽसौ स्तनपरिमलः कुचसमर्दनः तेन छिन्नानि सूत्राणि येषां तैः । कठिनस्तनतटसवट्टवृटिततन्तुभिर्मित्यर्थः । अथ वा मुक्ताजालैरिति पाठान्तरे मुक्तानां जालानि बृदानि येषु तैः । अनंकनिपतितमुक्ताहारायलकादर्शनेन कामुकनिकेतनगमनाभियुक्तका-

मिनीजनसचरणसरणिः प्रातर्लोकैरनुमीयते इति भावः ” । And further on it says—“ मुक्तालग्रस्तनपरिमलच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः ” इति मुख्यः पाठः । and also—“ मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः ” इति पाठान्तरं तत्र । पर्वस्तनेषु परिसरन्ति स्तनपरिसराः पश्चात् छिन्नसूत्राः ये तैः । ” *Sâro*, *Mahima*. reads—“ मुक्ताजालस्तनपरिचयच्छिन्नसूत्रैः and explains it as—मुक्तानां जालानि मुक्ताफलसमूहास्तेषु स्तनपरिचयः कठिनकुचसमर्दस्तेन छिन्नानि त्रुटितानि सूत्राणि ततवो येषां ते तैः ” । He also notices and explains the reading adopted by *Val* and *Sâro*., and also the reading of our text.

कामिनीना &c This refers to *Abhasârikas*—women who go to a place of appointment to meet their lovers *Mahima* explains it as—“ अतिशयेन कामो विद्यन्ते यासामिति कामिन्यः ” । Here Wilson says — ‘I have already mentioned that the Hindus always send the lady to seek her lover, and they usually add a very reasonable degree of ardour and impatience. Our poet, in another place, compares the female so engaged to a rapid current Thus, in the *ऋतुसंहार*—“निपातयन्त्यः परितस्तटद्गमान् । प्रवृद्धवेगैः सलिलैर्गनिर्मलैः । स्त्रियः प्रकामा इव जातविभ्रमाः । प्रयान्ति नद्यस्त्वरितं पयोनिधिम् ” ।

Prof Isvarachandra thinks this to be an interpolation

(XII) भयात् &c This alludes to the fate which befel मन्मथ (Cupid) upon his assailing Siva whom he inflamed with the love of Pârvatî Siva in his wrath reduced him to ashes by a flame from the eye in his forehead. Although he was subsequently restored to animation, he is here supposed to remain in constant dread of his former enemy Cf “ तपःपरा मर्शविबुद्धमन्योर्भूभंगदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य । स्फुरन्नुदार्चिः सहसा तृतीयादक्षः कृशानु किल निष्पपात ॥ क्रोध प्रभो सहरसहोति यावाद्भिरः खे मरुता चरन्ति । तावत्स वद्विर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषमदन चकार ” ॥ *Ku* III 71—72.

षट्पदज्यम् &c Cf “अलिपक्तिरनेकशस्त्वया गुणकृत्ये धनुषो नियोजिता । विरसैः करुणस्वनैरिय गुरुशोकामनुरोदितीव मा ” । *Ku* IV 15.

चतुर° &c. *Bha*, *Ra'm.*, *Hara.*, Wilson and two other MSS. read चटुल ‘tremulous’ and connect it with विभ्रम and not वनिता Prof Isvarachandra Vidyâsagar prefers this reading and says:—“अयमेव पाठः साधीयात्. ” He gives no reasons for his preference.

(XIII) विभ्रमदेशदक्ष &c. *Mahima* explains this as—“विलासोपदेशकुशल । यतो मधु विना मदिरा विना नेत्रविभ्रमो न भवति । यदुक्त । नयनान्यरुणानि घूर्णयन्वचनानि स्खलयन्पदे पदे । असति त्वयि वारुणीमदः प्रमदानामधुना विडम्बना ” । *Kū* IV 12 (*Cf* also —“चारुता वपुरभूषयदामा तामनूनवयौवनयोगः । त पुनर्मकरकेतनलक्ष्मीस्ता मदो दयितसगमभूषः” *Sā*. X 33

यस्याम् &c. *Pārsvā*. here reads यस्मिन्. From this it appears that this verse together with the verse “मत्वा देव &c ” are, according to *Pārsvābhyudaya*, descriptive of the garden वैभ्राज mentioned in verse “अक्षयान्तर &c. ”

Bha, *Sonā*, *Rām.*, *Hara.*, *Kilyā*, Wilson and two other MSS. omit this verse *Mahima* has—“प्रक्षेपकोऽय तथापि व्याख्यायते. ”

(XIV) दूरालक्ष्यम् &c. In connection with this *Mahima*. has the following note—“अनेन तोरणस्य उच्चैस्त्व व्यज्यते.”

कृतकृतनयः &c. *Cf*. “सोऽय न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते” *Sā* IV 94. “अमु पुर पश्यसि देवदारु पुत्रीकृतोऽमौ वृषमध्वजेन । ” *R* II. 36

हस्तप्राप्यस्तवकनमितः &c. In connection with this *Sāro*. has the following note.—“एतेनापरगृहव्यावर्तक असाधारण कर्म स्वधाम्नोऽभिवत्ते” ।

कान्तया वर्द्धितो मे &c. *Cf* “स्मरतेव सशब्दन्पुर चरणानुग्रहमन्यदुर्लभ । अमुना कुमुमाश्रुवार्षणा त्वमशोकेन सुगात्रि शोच्यसे”. *R* VIII 63.

(XV) मरकतशिलाबद्धसांपानमार्गा &c. *Sāro* explains this as—“मरकतशिलाभिः गारुत्मतदशद्विराबद्धः खचितः सोपानमार्गः पदस्थानिपयो यत्र सा । ” But *Su* explains it thus —“मरकतशिलाभिनीलमणिभिर्बद्धो रचितः सोपानमार्गो यस्याः सा ” ।

छन्ना &c. Here *Pārsvā* reads स्फीता and *Vallabha* and two other MSS read स्थूता, where *Vallabha*'s explanation is,—“स्थूता प्रोता सम्बद्धा । वाप्या हि पद्मैर्भाव्यम् ” ।

विकचकमलैः &c. *Mahima* explains this as —“विकचकमलैर्विकसितसरोजैः । विकाशवद्भिः पकजैरित्यर्थः । अत्र कमलानां कृतकत्व दिव्यानुभावाच्चूर्णानुरूपत्व वा ” ।

व्यपगतशुचः &c. ‘Freed from sorrow’ because they are assured that even at the approach of the cloud the water will not be muddy, as the well was well-built &c. *Sāro* explains this as,—“ननु किमिति व्यपगतशुचः यतो विद्युदलकृतस्य मेघस्य नानावर्णकान्तिः समुत्पद्यते ते च तत्रस्थाः सदैव स्थिताः अनुभवन्ति । अतो घनानुकारि किं-

चिद्रूपान्तरं भविष्यतीति मन्यमानानां तेषां मेघागमनशका नास्ति ” । *Mahima* has —“तेषां धारासेककलुषितसलिलाशयविलोकनजः शोको न समुत्पद्यते । अत्र हि मेघधारावहनेनाकलुषितनीरत्वात् । तस्या पुनर्दिव्यभूमिस्वभावेन ससारजनितकालुष्याभावात् व्यपगतः छिन्नः शुक् शोको येभ्यस्ते व्यपगतशुच सतोऽपि अपास्तशोकाः मानस सनिकृष्ट समीपवर्तिनमपि न अध्यास्यन्ति न स्मरिष्यन्ति । एतावता वापीनीरस्य मानसपानीयादपि शान्तसौभाग्यमुक्तामीति काव्यार्थः ” । *Su.* explains this as:—“ राजहसानां हि वर्षाऋतौ मलिनजलदर्शनात् शोकः स्यात्तद्वाप्याः जलं हि दैवानुभावात्सदैव निर्मलपानीयत्वं विकचकमलत्वं चेति भावः ” । *Vallabha* has the following —“ तत्रैवोपद्रवाभावान्निर्दुःखाः ” ।

(XVI) स्मरामि &c स्मरण is that figure where there is the recollection of a thing upon the appearance of a thing similar to it.

निरुक्तकार takes त्वा with स्मरामि तमेव and proposes to impute the form of the hill to that of the cloud. Now when we impute the hill to the cloud we suppose for the time being, that the cloud is identical with the hill, that we may call the one by the other. Thus the idea of imputation involves necessarily the presence of the hill in the cloud. But if there be this sort of imputation here, the word स्मरामि in the text is wholly out of place, since recollection requires that the cloud should be although similar to, still quite distinct from the hill, and thus does not require the presence of the hill in the cloud. Recollection in fact is antecedent to and a pre-requisite of imputation and not identical with it.

If in order to escape this difficulty you assert that the conception of the hill (arising from the cloud) is the same as the recollection of it mentioned in the text, we reply that the assumption of conception being recollection is purely arbitrary. Since first recollection is based upon previous impression (observation) which is not the case with conception, and secondly it renders the mention of resemblance futile. And if you suppose that conception requires resemblance the supposition is false as being opposed to general experience which warrants the conception of *Hara* from the शालग्राम stone even though the latter does not bear the slightest resemblance to the former. Here *Val.* says.—“ सादृश्यात्प्रियत्वाच्च स्मरणं । कातरत्वं तु विरहवशात् ” ।

°वेष्टनप्रेक्षणीयः &c. Here *Mahima.*, *Hara.*, *Wilson* and two other MSS. read °वेष्टनः प्रेक्षणीयः and in favour of it they urge that the beauty of the क्रीडाक्षौल is the combined product of

इन्द्रनलिरचिताशिखरत्वं and of कनककदलीवेष्टनत्वं, and not of the latter alone as the original reading implies

इन्द्रनीलैः & Cf. “वैदर्भीकेलिशैले मरकतशिखरादुन्धितैरशुद्धैः” । *Nā* II. 105.

क्रीडाशैलः &c. *Sū.* explains it as:—“क्रीडाशैलो नाम पर्वतोऽस्ति” ।

In connection with स्मरानि &c. *Sāro* and *Mahima* have the following annotations — “सदृशध्वनयनविस्तार्याः स्मृतिबीजस्य बोधकार इति सादृश्यं चात्र तमालश्यामलत्विषस्तडिलतापिशगवपुषः पयोदस्य दृश्यमानमरकतमणिना सह श्यामलिम्ना संघट्टमानकनककदलीकपिलकान्तिरेखेण शिखरिणा साकं प्रतीयते एव” । “तथाहि तमालश्यामलत्विषस्तडिलताकबुिरितोपा-न्तस्य मेघस्य कनककदलीपरिवेषपीतकान्तिमन्मरकतमणिश्यामलेन शिखरेण शिखरिणा क्रीडाशैलसादृश्यं प्रतीयमानमवेति इति काव्यार्थः” । *Mahima*.

(XVII) वामपादाभिलाषी &c. ‘Longing for a kick from the left foot of a beautiful woman’ Cf. “अकुसुमितमशोक दोहलापक्षया वा प्रणिहितशिरस वा कान्तमाद्रापरचं” । *Mālavī* III. 12 also, “भवति न युक्तं नामात्रभवतः प्रियवयस्योऽशोको वामपादेन ताडयितु” । also, “असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः । स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि । पादेन नापक्षत सुन्दरीणा । सपर्कमाशिक्षितनूपुरेण” ॥ *Ku.* III 26

दोहदच्छन्ना &c. ‘Under the plea of longing’ It was supposed by our poets that trees had different longings and they had to be satisfied before they put forth their blossoms. Wilson observes that these allusions refer to some particular notions of the Hindus respecting the केशर and अशोक, which plants are said to blossom upon being touched respectively by the face or foot of a female; the story is, probably, originally poetical Cf. “कुसुम कृतदोहदस्तया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति” ॥ *R* VIII 68 also, Cf., *Mahima*, — “पादाहतः प्रमदया विक्रसत्यशोकः । शोकं जहाति बकुलो मुख [मधु] सीगुसिक्तः । आलोकनात्कुम्बकः कुरुते विकाशम् । आलिङ्गितस्तिलक उत्कलिको विभाति” ॥ *Sāro* also says the same. *Pārsvā.* and two other MSS. read दौहद° the original word of which दोहद° is the *Prākṛita* form.

कांक्षति &c. The kick by the foot of a female and the sprinkling by monthfuls of wine are poetically imagined to be the cause of blossoming of the अशोक and the बकुल Vide *Mallī’s* commentary hereon. Cf. “मूले गण्डूपसेकासव इव बकुलैर्वास्यते पुष्पवृष्ट्या” ॥ *Rātna* I. 8.

पार्श्वीभ्युदय reads this verse after 23rd (“नूनं तस्या. &c.”).

(XVIII) वासयष्टिः &c Cf “अलिन्दं यस्यास्ते मरकतमयी यष्टिरमला । शयालुयां रात्रौ मदकलकलापी कलयति” । *Hamsadūta* 47.

तालैः &c Cf “भ्रमिषु कृतपुटातर्मण्डलावृत्ति चक्षुः । प्रचलितचतुर-
भूताण्डवैर्मण्डयन्त्या । करकिसलयतालैर्मुग्धया नर्त्यमान । सुतमिव मनसा त्वां
वत्सलेन स्मरामि” । *Uttara* III 18

शिञ्जावलयं &c Here *Pa'sva'*, *Val*, *Mahama Sāro*, *Megha-
latā*, *Su*, *Bha*, *Sanā*, *Hara*, *Kalyā*, Wilson and nine other MSS.
read शिञ्जद्वलयं or शिञ्जद्वलयं and explain it as —“कणत्ककणमनोह-
रैः” । *Bha*, “सिञ्जन्ति शब्दायमानानि यानि वलयानि तैः सुभगैः” ।
Su, “शिञ्जत्कनककटकमनोरमैः” *** शिञ्जेरात्मनेपदित्वात् शिञ्जदिति
प्रयोगः प्रमादजः । अनित्यो वानुदात्तङित्वात् आत्मनेपदविधिः” *Val*; “सिञ्जत्
शब्दायमानवलयैः सुभगास्तैः कणशब्दसहितैस्तालैः” *Mahama*, “शि-
जद्वलयसुभगैः शब्दायमानकणरमण्यैः शिञ्जन्ति शब्दायमानानि मणिम-
यानि कटकानि तैः सुभगैर्मनोहरैः । शिक्त इत्यच् । शिज इवाचरतीत्यादिकि-
ब्लोपे परस्मैपदं ॥ ननु शिजतेरात्मनेपदित्वात् शानचा भवितव्य । अतः शि-
जदित्यसाधुपदं । अत्र समाधीयत । शिजि अव्यक्ते शब्दे । अत एव शिक्तं ।
पचादित्वाद् । स इवाचरतीत्यादिकिब्लोपे सति परस्मैपदं । शिजदिति व-
र्तमाने शत” । *Sāro*; And further on it notices:—“सभ्रभगे करत-
ललयैर्नर्तित” इति पाठान्तरे । अत्र करतला ये लयास्तैः हस्तद्वयावातताल-
स्तदन्तरे विश्रामकालः तालकालयोरन्तरे लयः ममुत्पद्यते । स च द्रुतविलंबि
तमध्यभेदात्रिधा तैर्निमित्तः” । *Mahama*, also notices the reading “सभ्रभ
ग करतललयैर्नर्तितः इति पाठान्तरं तत्र चायमर्थः । करतलयोर्लयास्तैर्हस्त
द्वयावातस्तालः । तदन्तरे विश्रामकालस्तालः कालतालयोरन्तरे लयशब्दः
मुत्पद्यते स लयस्त्रिविधः द्रुतविलंबितमध्यभेदात्” ।

Prof Isvarachandra prefers the reading शिञ्जद्वलयं sayin
“अयमेव पाठः साधीयात्.”

(XIX) शखपद्मौ &c Two of the nine treasures of Kubera
which are thus enumerated by *Kṣhuasvāmin* in his commentary
on *Amara*. They are.—“महापद्मश्च पद्मश्च शखो मकरकच्छपौ । मुकुन्द-
कुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव” । But *Rāyamukuta* in his com-
mentary on *Amara*, quotes the following from शब्दार्णवः—“पद्मोऽन्निया
महापद्मः शखो मकरकच्छपौ । मुकुन्दकुन्दली[नी]लाश्च खर्वश्च निधयो नव इति”
The शब्दरत्नावली also has the same reading. In *Hemachandra*,

हारावली, and the शब्दमाला, कुन्द is substituted for नन्द. But हारावली reads वर्च for खर्व. Cf. *Sâro.* “तौ ही अधोभागे पुरुषरूपौ गृहद्वार-शाखासु मंगलार्थं आलिख्येते ॥ *Mahima.* has:— “तौ हि अधोभागे कल-शमुद्रावालिख्य अग्रे पुरुषरूपावेव गृहद्वारशाखासु अद्यापि मनुष्यलोके मंगलार्थमालिख्येते ॥ Agreeably to the system of the *Tāntrikas*, the *Nidhis* or treasures are personified, and upon certain occasions, as the worship of लक्ष्मी, the goddess of prosperity &c, come in for a share of religious veneration. They have also their peculiar *Mantras*, or mystical verses.

क्षामच्छाय &c In connection with this *Sâro.* has [the following note — “सूर्यापाये सूर्याभावे इति । तत्र । अत्र सर्वथाच्छायाविनाशस्याभिप्रेत-वात् । यदत्र क्षामच्छायत्वमेवोक्तं । अत एव अभिक्षा न पुष्यतीत्यवादि । यक्षे च कुशलिनि सर्वथा याध्वंसस्यासंभवात् (?) ”] *Mahima* has:— एतावता हे मेघ वल्लभा मय्यत्यन्तरागिणी । अहमपि तस्यां तथैव । यतः । वल्लभा एव जीवानां प्राणिनां चाधाराः । यदुक्तं । जये धरित्र्याः पुरमेकसारं पुरं गृहं सद्गतिं चैकदेशः । तत्रापि शय्या शयने वरस्त्री रत्नोज्ज्वला राज्यसुखस्य सारः ” ।

पुष्यति Cf. ‘वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभाम्’ *Sa’*. I. 19.

(XX). शीघ्रसपातहेतोः &c. Here *Bha*, *Râm.*, *Hara*, *Wilson* and two other MSS read तत्परित्राणहेतोः and explain it as — “तस्यास्तव सख्याः परित्राणहेतोः रक्षाकारणात् ” । *Bha*.

तन्वी &c *Val* and *Mahima*, have this verse and the further one as शुग्म, for they say — “तन्वी इयामेति तां जानीया इति युगलकम्” ।

इयामा &c In connection with this *Mahima*, has the following note — “अप्रसूता भवेच्छायामा तन्वी च नवयौवना ” ।

शिखरिदशना &c. *Sâro.* reads “अशिखरिदशना and शिखरदशना, and explains these as follows — “अशिखरा तीक्ष्णा दन्ता यस्याः सा अविषमदशना इत्यर्थः । अथ च शिखर पक्वदाडिम्बीजाकारं माणिक्यं तद्वत् उज्ज्वलतया दशना दन्ता यस्याः सा इत्यधरौष्ठरागित्वम् ” ।

पक्विम्बाधरोष्ठी &c. Cf. “बिम्बाधर दशासि चेद् भ्रमर प्रियायाः ” *Sa’* II.

मध्ये क्षमा &c Cf “मग्ना सुधायां किमु तन्मुखेन्दोलिग्ना स्थिता तत्कुचयोः किमन्तः । चिरेण तन्मध्यममुच्चतास्य दृष्टिः ऋशीयः स्खलनाद्रिया नु” । *Nai.* VII. 5.

स्तोकत्रया स्तनाभ्यां &c. Cf. “ आवर्णिता किंचिदिव स्तनाभ्याम् ” ।
Ku. VII. 53.

अ &c. Antecedent in the next verse. The difference in the syntax of the English and the Indian languages does not allow us to call the noun antecedent, as the relative always goes before the noun in Sanskrit and the Vernacular languages of India viz. Marathi, Gujarathi and others

युवतिविषये &c. Here *Pārsarābhya* reads युवतिविषया &c. This must be connected with सृष्टि and admits of another interpretation viz: “ The first creation of which the object was a woman ” i. e. she was created before every other thing in the world.

सष्टिराद्या &c. Here *Val.* has the following note:—“ आदौ ह्यनुद्वेगाद्रम्यं निर्माणं भवति ” ।

धातुः &c. Cf. “ पुराकृतिं त्रैलोक्यमिमां विधातुमभूद्विधातुं खलु हस्तोलख ” । *Nal.* VII. 15.

(XXII). परिमितकथां &c. *Su* explains this as,—“ सतीत्वात्स्वल्पमाविर्णी ” ।

जीवितं मे द्वितीयं &c. Cf. “ सार्थवाहस्यार्थपतेर्विमर्दको बहिश्चराः प्राणाः ” *D K.* II. 2

मयि सहचरे &c. *Mahima*, explains this as:—“ यतोऽहं सहचरतुल्यः । ततोऽहं तस्या विरहाद्विकलस्वरूपोऽस्मीति । उक्तं च । यत्रोदारा दारास्तत्र च कान्तः सुतो भवेत्कान्तः । यत्र च कान्तः कान्तस्तत्र न दारा गुणोदाराः । द्विजराजमुखी मृगराजकटी कलशो यमराजदुरोजतटी । यदि सा सुभगा हृदये वसति कुजपः कुतपः कुसमाधिविधिः । इति हेतुर्मम द्वितीय जीवितं पुनर्भावयति । यथा । आवर्त्तसशयानामविनयभवनं पत्तन साहसानां । दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानां स्वर्गद्वारस्य विघ्न नरकपुरमुखं सर्वमायाकरंडं । त्रयीत्र केन सृष्टं विषममृतनिभं प्राणिनां मोहपाशः ॥ अपसर सखे दूरादस्मात्कटाक्षविषाचलाय । प्रकृतिविषमाद्योषित्सर्पाद्विलासफणीभृतः । इतराणिना दष्टः शक्यश्चिकित्सितुमौषधैः । चटुलवनिताभोगिप्रस्त त्यजन्ति हि मन्त्रिणः ” ॥

चक्रवाकी &c. The pair of चक्रवाक is supposed to be the type of constancy and connubial affection by poets. They are doomed for ever to nocturnal separation for having offended a saint. For their separation and affection compare—“ सरसि

नलिनीपत्रेणापि त्वमावृतविग्रहा ननु सहचरीं दूरे मत्वा विरौषि समुत्सुकः । इति च भवती जायाज्ञेहात्पृथक्स्थितिभीरुता । मयि च विधुरे भावः कान्ताप्रवृत्तिपराङ्मुखः ” ॥ also —“ रथाङ्गनामत्र वियुतो रथाङ्गभ्रोणिबिम्बया । अयं त्वा पृच्छति रथी मनोरथशतैर्वृतः ” । *Vi.* IV. 20, 18. Also —“ रथाङ्गनाम्नोरिव भावबन्धनम् ” । *R* III 24.

शिशिरमयिता &c The word शिशिर here may also mean ‘frost,’ which is identical with the sense of तुहिन in the reading तुहिनमयिता *Cf* :—“ अयं वा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः । हिमसेकविपात्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता ” । *R* VIII 45

Sâro, *Mejhalatâ*, *Val*, *Mahima*, and seven others MSS. read तुहिनमयिता and explain it as —“ हिमकदर्थिता । अयं तुहिनमयितपद्मिनी अन्यरूपा भवति । ज्ञानक्रियया व्याप्तत्वात्सर्वत्र कर्मकारक ” । *Sâro*, “ हिममार्दिता कमलिनीमिव ” । *Mahima*.

(XXIII). Four *Uria* MSS. omit this verse. *इस्तन्यस्त* &c. In connection with this *Mahima*. has —“ स्वभावश्चायं शोकाकुलितचतसा सीमतिनीना ” । *Sâro*. also has the same.

लम्बालकत्वात् &c, In connection with this *Sâro*. has a curious note —“ लम्बाः कर्तनादिसंस्काराभावात् प्रवृद्धा अलका भालावलबिनः कुटिलाः केशास्तेषां भावः लम्बालकत्वं तस्मात् कपोलवेलंबिकेशत्वात् ” ।

इन्द्रादैन्यम् &c. For the face of a woman with the dishevelled hair hanging over it compared to the rising moon as yet hidden in the darkness of the night, *Cf* “ उदयगूढशशकमरीचिभिः । तमसि दूरमितः प्रतिसारिते । अलकसयमनादिव लोचने । हरति मे हरिवाहनदिङ्मुखम् ” । *Vi.* III 6.

(XXIV). मधुरवचनां &c. Here *Pârsu*. and two other MSS. read मधुरवचन Then it must be taken as an adverb modifying पृच्छन्ती. The whole means—‘addressing the सारिका in sweet words &c.’

रसिके &c. *Mall* does not explain this word; but it must be taken to mean, ‘one who appreciates excellence.’ *Sâro*. explains it as, रसोत्पादकवाक्ये O sweet speaking one. But this would render मधुरवचनां superfluous and मधुरवचनं would then suit better,

Val, *Sanâ*, *Râm*, *Hara*, *Wilson*, and two other MSS. read निभृते for रसिके and explain it as —“ हे निभृते विनति.” *Val*, “ निभृते निःशब्दे, ” *Sanâ*, “ निभृते निर्जनदेशे. ” *Râm*, and, *Hara*.

Sâro takes the figure of this verse to be दीपक and defines it thus—“जातिक्रियागुणद्रव्यवाचिनैकत्र वर्तिना । सर्ववाक्योपकारश्चेत् त-
माहुर्दीपक बुधाः ” See *Dandin's* काव्यादर्श page 152

(XXV). *मलिनवस्त्रे* &c ‘Having over it as a covering a duty garment’. When the husband is abroad a woman should not decorate her person, nor should she wear rich and clean garments &c.’ Cf *Sâro*—
“विरहत्वादधोतवस्त्रे इति अलङ्कृतित्यागात्तस्याः पतिव्रतत्वं प्रतिपादितम् ” ।

विरचितपद &c *Mahima*. explains it as “विरचितानि स्वयं स्वरानामा-
रोहावरोहे क्रमेण सूत्रितानि पदानि यत्र तत्तथा । अत एव पदस्थः स्वरम-
घातो गेयं ” । *Val.* also explains this similarly, for he says —
“पदस्थो हि स्वरसघातां गेयम् ” ।

सारयित्वा &c *Mall.* takes this word to mean, ‘having rubbed (the string in order to remove the moisture on it)’, *Val*, *Su*, and *Sâro*. take it to mean, ‘having adjusted (the string properly)’ Their explanations are.—“सारयित्वा योजयित्वा ॥ ” *Val*; “सारयित्वा स्नायुरज्जुं सज्जीकृत्य ” *Sâro*.; “सारयित्वा रचयित्वा ” *Su*.

कथञ्चित् &c In connection with this *Sâro*. has the following note —“दुःखनिर्भरहृदयत्वात्” ।

मूर्च्छनां &c ‘A duly regulated rise and fall of sounds conducting the air and harmony through the keys in a pleasing manner’ They are thus given by *Sâro* from the नारदीयशिक्षा. “सप्त स्वरान्नयौ ग्रामा मूर्च्छनास्त्वैकविंशतिः । ताना एकोनपञ्चाशदित्येतच्छ्रुतिमङ्गलं । षड्जश्च ऋषभश्चैव गांधारो मध्यमस्तथा । पंचमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः । षड्जमध्यमगांधारास्त्रयो ग्रामाः प्रकीर्तिताः । भूर्लोकाज्जायते षट्जो भुवर्लोकाच्च मध्यमः । स्वर्गान्त्रान्यत्र गांधारो नारदस्य वचो यथा ” । And further on it says —“षड्जं वदति मयूरो गावो रंभति चर्षभ । अजा वदति गांधारं क्रौंचो वदति मध्यमं । पुष्पसाधारण काले पिकः कूजति पंचम । अश्वस्तु धेवर्तं वक्ति निषादं वक्ति कुजः” ।

तन्निमाद्रां &c. Here *Pârsvâ.*, *Bha*, *Sand.*, *Râm.*, *Hara*, *Wilson* and three other MSS. read, “तन्नीराद्रां.” where *Bharata's* comments are.— “तन्नीरिति बहुवचननिर्देशेन परिवादिर्नापरिवादनकै-
शलस्य सूचितत्वाद्वैदग्ध्यं ध्वनितम् ” । and Prof. *Isvarachandra Vidyâsâgara* says, “अयमेव पाठः साधीयात्”.

(XXVI) विरहदिवसस्थापितस्य &c Here *Sāro*, *Meghalata*, *Val*, *Mahima*, *Su*, *Bha*, *Rām* *Hara*, *Kalya*, *Wilson*, and five other MSS and the printed edition of Bhatavadekar read “गमन-दिवसस्थापितस्य” and explain it as, “वियोगदिनकृतस्य सवत्सरपरिमाणतया कल्पितस्य” । *Sāro* ; “गमनदिवसे स्थापित सवत्सरपरिमाणतया कल्पितोऽवधिर्यस्य तस्य” । *Mahima*, “गमनादिवसात्प्रारब्धस्य” । *Su*, “गमनदिवसात्प्रवृत्तो योऽवधिर्वर्षाख्यस्तस्य” । *Val*, “प्रस्थानदिनात्प्रभृति व्यवस्थापितस्य” । *Bha* &c

देहलीदत्तपुष्पैः &c. Here *Pa'rsva*, *Sāro*, *Meghalata*, *Val*, *Mahima*, *Su*, *Bha*, *Rām*, *Hara*, *Kalya*, *Lakshmi*, *Wilson* and nine other MSS read, “देहलीमुक्तपुष्पैः” and explain it as, “देहली उदुम्बरदारु तस्याः सकाशान्मुक्तानि भूमौ निहितानि यानि पुष्पाणि तैः । अथ वा । गृहद्वारदारु तदधिष्ठात्री देवता तस्याः पूजार्थं प्रत्यहं पुष्पाणि मुचते इति” । *Sāro* ; “देहली उदुम्बरदारु तस्याः सकाशात् मुक्तानि भूमौ निहितानि यानि पुष्पाणि । अथ वा । गृहद्वारदारुणि अधिष्ठात्रदेवपूजार्थं पुष्पाणि मुचते इति ।” *Mahima* ; “देहल्या दारुविशेषे मुक्तानि देवपूजार्थं पुष्पाणि कुसुमानि यानि तानि तैः” । *Su*, “देहल्या द्वारविशेषे द्वारपूजार्थं मुक्तैर्देवैः पुष्पैः” । *Val* ; “देहल्या गृहद्वारि मुक्तैः क्षितैः पुष्पैः” । *Bha*. &c. Prof. Isvarachandra says, अयमेव पाठः साधीयान्. From this it appears that the threshold of the front door of a house was, generally, made of उदुम्बर wood.

आस्वादयन्ति &c Here *Sāro*, *Mahima*, *Bha*, *Rām*, *Hara*, *Kalya*, *Wilson* and eight other MSS. read आसादयन्ती and explain it as “प्राप्नुवती.” *Mahima* ; “प्राप्नुवती. *Bha* ; “आसादयन्ती अनुभवन्ती.” *Sāro* (*Sāro*'s reading does not appear to be आसादयन्ती for अनुभवन्ती is the exact equivalent for आस्वादयन्ती and not for आसादयन्ती, but the MS in our possession clearly reads आसादयन्ती, which probably may be a mistake of scribe who wrote the manuscript)

Bharata, *Haragovinda*, *Wilson* and one of the *Uria* MSS read “विरहे ह्यगनानासु.” Prof. Isvarachandra and Pandit Pra'nana'tha of Kashmir prefer this reading. They say.—“अयमेव पाठः साधीयान्.” “इति वा समीचीनः पाठः ।”

(XXVII) अलम् &c. Here *Pa'rsva* and two other MSS read अतः, This reading is preferable because it serves the antecedent clauses with the subsequent one.

अवनिशयनां सौधवातायनस्थः &c. Here *Sāro*, *Meghalatā*, *Su*, *Bha*, *Rām*, *Lakshmi*, and nine other MSS read “अवनिशयनासन्नवातायनस्थः”, and explain it as, “अवनौ भूमौ शयन शय्या विरहमतापाद् व्रताद्वा भूशयन तस्यासन्नः सन्निकृष्टो वातायनो गवाक्षसूत्र तस्मिन् तिष्ठतीति स्थः सः । अनेन पयोदस्य योग्यदेशावस्थानकथन” । *Sāro* ; “भूमिशयनात् समीपगवाक्षे तिष्ठतीति” । *Su* ; “अवनिरेव भूमिरेव शयनं शय्या तस्यासन्नं सन्नहित यद्वातायन गवाक्षस्तत्र स्थितः सन्” । *Bha* &c And *Hara*, *Kalyāṇ*, Wilson and two other MSS read, “अवनिशयना सन्नवातायनस्थः”, and explain it as, “सन्नवातायनस्थो निकटगवाक्षस्थः सन्” । *Hara* ; “सन्नवातायनस्थ. भग्नगवाक्षस्थितः सन् । अनन भवनस्य दुरवस्था प्रोक्तेति भाव” ॥ *Kalyāṇ*, and *Val*, *Mahim*, *Bhataravalekar*, *Pārsvā*, and three other MSS read, “सन्नवातायनस्थः” । and explain it as —“सन्नः गृहस्य वातायनं गवाक्षं तिष्ठतीति” । *Mahima*, “मद्वेहगवाक्षनिकटस्थः” । *Val*. &c.

रात्रौ &c Again, my wife will easily spend the day, observes Yaksha, in the ordinary household duties that are now incumbent on her, but the night may particularly become restless with her since having nothing to do at this time she will be more deeply afflicted Cf “कार्यान्तरितोत्कण्ठं । दिन मया नीतमनतिकृच्छ्रं । अविनोददीर्घयामा । कथं नु रात्रिर्गमयितव्या ॥ Vi. III 4.

अवनिशयना &c *Sāro* explains this as, “अवनौ भूमौ शयन शय्या विरहसतापाद्वाद्वा भूशयन ।”

(XXVIII). *Sāro*, *Mahima*, *Lakshmi*, and eight other MSS. connect this and the following three stanzas with the 24th (“आलोके ते &c”) like the 25th and the 26th leaping over the 27th. And hence the epithets of the *Yaksha*'s wife are read as being in the nom. case, in order that they might agree with सा in that stanza. But it would be more appropriate to connect these epithets with “साध्वी पश्य” in the 27th, which requires that they should be read as being in the accusative case, because the context of the 27th is more immediate to the 28th than that of the 24th. These stanzas may be consistently connected with the 32nd (सा सन्यस्ता &c.) where we also get सा in the nom. case. *Sumativijaya* first comments upon the following three stanzas. viz., “आलोके ते,” उत्सवे वा,” and “शेषान्मासान्” taking these together as विशेषक, and then begins to write his commentary on “सव्यापारान्,” “आधिशर्मा,” “निःश्वासेन,” “आद्येवज्जा” and

“पादान्ते” &c ” also taking these together as कुलक From this it appears that *Sumatiriyaya* too connects these verses in the same manner as we have shown in the above note with a slight modification.

सन्निषण्णैकपार्श्वी &c Here *Bha*, *Ra'm*, *Hara*. and *Wilson* read “सन्निषण्णैकपार्श्वी” and explain it as, सन्निषण्णं सम्यक् निक्षिप्तम् एक पार्श्वं यया तादृशी विस्मृतपार्श्वान्तरपरिवर्तनामित्यर्थः । *Bha*. &c.

प्राचीमूले &c. The मूल means the root, the lowest edge or extremity of the eastern direction, hence the eastern horizon.

In connection with सन्निषण्णैकपार्श्वीम् *Sa'ro*. and *Mahima*. have the following note —“ क्षामत्वात्परिवर्तितुमसमर्थेति भावः. ”

क्षण इव &c. Here *Pa'rsvā*., *Sa'ro*, *Meghalata'*, *Mahima*, *Su*., *Val*, *Lakshmi*, *Bha*, *Ra'm*, *Hara*, *Wilson* and eight other MSS. read, “क्षणमिव” and explain it as, “क्षणमिव मुहूर्तमिव” । *Sa'ro*; “क्षणमिव क्षणमात्रमिव” । *Su*; “क्षणमिव क्षणवादीति ।” *Val*; क्षणमिति लोकात्तया अल्पकालोपलक्षणम् । यद्यप्यमरकोषादौ तास्तु त्रिंशत् क्षण इति क्षणशब्दस्य पुस्तक दृष्टं तथापि । “क्षणमिव गमितो वासरो वासवेन” इति । “नीता रात्रिः क्षणमिव मया” इत्यादिप्रयोगदर्शनात् नपुसकत्वमव्याहृतम्” । *Bha*; “क्षण इवेति युक्तं पाठः कालिदासप्रयोगान्नपुसकलिङ्गोऽयमिति वा ” । *Ra'm*. &c. Cf. “अथाख्ये कृते वृत्ते गाधर्वोद्वाहकर्मणि । अवर्धत तयोः प्रीतिर्दिपत्योर्न तु यामिनी” *Katha'sa*. III 67 also ‘ किमपि किमपि मन्द मन्दमासत्तियोगाद् । अविरलितकपोल जल्पतोरक्रमेण । अशिथिलपरिरभव्यापृतैकैकदोष्णोः । अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरसीत् ” । *Uttara* I 26.

विरहमहतीम् &c Here *Sa'ro*, *Meghalata'*, *Mahima*., *Lakshmi*., *Bha*, *Ra'm*., *Hara*., *Kalya'*, *Wilson* and eight other MSS. read विरहजनिता. and explain it as, “वियोगोत्पन्ना” *Sa'ro*.; “विप्रयोगसूतै.” *Mahima*. &c. But *Val*, *Su*. and two other MSS. read विरहपतितै. and explain it as, “भर्तृविरहात्पतितैः” । *Su*. &c.

Vallabha reads this verse in the following manner:—“आधिक्षाणां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वी । प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषा हिमाशी । मत्सयोगं सुखमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति निद्राम् । आकाक्षन्ती नयनसलिलोत्तीव्ररुद्धावकाशाम् ” । and after this he reads:— “निश्वासानाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्ती । शुद्धस्नानात्परुषमलक नूनमागण्डलम्बि । नीता

रात्रौ क्षणमिव मया सार्द्धमिच्छारतैर्या । तामेवोष्णैर्विग्रहपतितैरश्रुभिर्यापय-
न्तीम्” । and then, “पादानिन्दोः &c”

(XXLY). *Pa'rsi'd'bhyudaya*, Wilson and a few others read this after the 3rd verse i. e. “आद्ये वद्धा” &c.

स्थलकमलिनी &c A lotus growing on land. Yaksha's wife lying as she does on the ground is appropriately compared to स्थलक-
मलिनी. Cf. *Sa'ro* — “भूमिशयनात्तस्याः स्थलकमलिन्यामुपमानमुपपन्न-
म्” । also *Vallabha*, “अतश्च साम्रेऽहानि स्थलकमलिनीमिवेत्युपमा सा
हि साम्रत्वान्न मदेव्वा दिनवशाच्च न सुता” ।

One of the four *Uria* MSS. omits this stanza.

(XXX) मत्स्ययोग &c *Pa'rs'va*, *Sa'ro*, *Meghalatā*, *Val*, *Mahima*, *Lakshmi*, *Su*, *Bha*, *Rām*, *Hara*, *Kalyā*, Wilson and ten other MSS. read मत्स्ययोग here This reading is better. Cf. “हृदयमिशुभिः कामस्यान्तः सशल्यमिदं सदा । कथमुत्पलमे निद्रा स्वप्ने समागमकारिणी । न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियामसमाप्य तां । मम नयनयो-
रुद्वाप्यत्वं सखे न भविष्यति” । II 10. Prof. Isvarachandra also prefers this reading and says —“अयमेव पाठः साधीयान्.”

कथम् &c. This word is explained as, ‘केन प्रकारेण—how’ in the text of *Mallinātha*'s commentary as given by the manuscripts in our possession which we have adopted, but taking this interpretation we cannot satisfactorily make out the meaning of the line. The text of the commentary as found in the printed copies explains it as, “केनापि प्रकारेण—” somehow, which makes the line intelligible, but this sense is unwarranted.

इति &c *Mallinātha* explains it as, ‘आशयेन—intending’, and refutes a supposed objection why आशयेन is not added by saying that the addition is redundant because इति serves the purpose. Again there is here a difference between the texts of the commentary as given by manuscripts and by *Bhataṣṭhaka*. The latter runs thus —“इति मत्वेति शेषः । इतिनैवोक्तार्थत्वादप्रयोगः । प्रयोगा वा पौनस्त्यमित्यलकारिकाः” But both the meanings conveyed by both are identical.

निद्राम् &c Cf. “प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्याः स्वप्नसमागमः” *Sa*. II also, “अत्र प्रस्थापनमपि मया लब्धमुन्निद्राकेण । यस्मिन्नेतन्निहितमयं ते स्वप्नसन्दर्शनाय । जाग्रद्भावे भवति भवती भावनायैव धिक्मे तेनाशेषस्फुर-
णशमनो हन्त जाता सुषुप्तिः” । *Uddharadūta*. 129.

“नाय स्वप्ना निशि निशि भवेद्यत्तयासगतिर्मे । पश्यामीद विधुमात्रे निराबा-
धमास्वादयामि । किं तु ज्ञात त्वयि विजयते काचिदाकृष्टिविद्या । या
संसन्ती हगसि तरसा मामद्राद्यदूनाम्” । *Uddhavasandisa*. 124.

(XXXI) हित्वा &c. *Cf* “तत्र नित्यविहितोऽह्निषु । प्रोषितेषु
पतिषु द्युयोषिताम् । गुंफिताः शिरसि वणयोऽभवन् । न प्रकुल्लुरपादपस्रजः” ।
S. XIV. 30.

मयीद्वेष्टनीयाम् &c. In connection with this *Sāro* has the
following remark —“इति अस्याः महासतीत्व प्रतिपादितः”

(XXXII). आर्द्रान्तरात्मा &c. In connection with this *Sāro*.
and *Mahima* have the following explanation —“अथवा आर्द्रः
अकर्कश अन्तरात्मा ययोः इति” । *Mahima*. &c.

नवजलमयम् &c. Here *Sana'*, *Hara*, *Kālyā'*, and Wilson read
“जललमयम्” । Prof. Isvarachandra Vidyāsāgara prefers this
reading and says:—“अयमेव पाठः साधीयान् । नवजलमयमिति पाठ
नवेति विशेषणस्यानुपयोगात् ”

(XXXIII) सुभगमन्यभाव &c. “The state of supposing ourselves
to be handsome (according to *Mallinatha*) or beloved”

(XXXIV). मीनक्षोभाचलकुवलयश्रीतुलाम् &c. Here *Bha.*, *Ra'm.*,
Hara, Wilson and three other MSS read मीनक्षोभाकुलकुवलयश्री-
तुलाम् and explain it as —“मीनस्य मत्स्यस्य क्षोभेण सघट्टनेन आ-
कुल चचलं यत्कुवलय नीलोत्पलं तस्य या श्रीः शोभा तस्यास्तुला सादृ-
श्यम्” । *Bha.* &c. Prof. Isvarachandra prefers this reading, say-
ing,—“अयमेव पाठः साधीयान्.”

(XXXV) वामो वास्या &c. Here *Val.* and two other MSS read
वामो वास्याः and explain it as, “वा शब्दो नयनस्पन्दोपेक्षया वैकल्पः” ।
Val. &c.

त्याजितो दैवगत्या &c. *Mahima* explains it as, दैवगत्या दैवबलेन
त्याजितो मोचितो यतो दैवगतिर्बलीयसी । उक्तञ्च । “विषमप्यमृतं क्वचिद्भ-
वेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया” । “भ्रमन्वनान्ते नवमजरीणा [नरीपु] न षट्पदो
मन्वफलीमजिघ्रत् । सा किं न रम्या स च किं न रन्ता गरीयसी [बलीयसी]
केवलमीश्वरेच्छा” ।

यास्यत्यूरः &c. *Cf*. “नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात्कद-
ल्लविशेषाः । लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपजातास्तदूर्वोरुपमानवात्त्या.” ।
Ku. I. 36.

सरसकदलीस्तभगौर &c Here *Pârsvâ.* and two other MSS. read सरसकदलीगर्भगौर. which appears better, as in point of whiteness the interior of a plantain-tree surpasses its exterior *Vallabha, Sand'tana, Haragovinda,* Wilson and two other MSS. read कनककदलीस्तभगौर. Prof. Isvarachandra prefers this reading and gives reasons for his preference. He says,—“अयमेव पाठः साधीयात् “कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः” इत्यत्र अलकायां कनककदलीना वाहुन्यदर्शनादुपमिति काले तासामेव बुद्धिस्थत्वात्” ।

(XXXVI). याममात्र &c. In connection with this *Mahuma.* has the following note He says, — “उत्तमस्त्रियो हि प्रहरमात्र प्रहरमेव निद्रा कुर्वन्तीति पद्मिनीत्व प्रकाशित भवति । यतः । “पद्मिनी यामनिद्रा च । द्विप्रहरा च चित्रिणी । हस्तिनी यामत्रितया । घोरनिद्रा च शंखिनी” । इति वचनात् । याम is a प्रहर or three hours.

The termination मात्र is added in the sense of एव ‘Just, only, nearly about.’ Cf. “महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नम्” । *R.* II. 50.

अन्वास्त्र्यैनां &c. In connection with this *Val.* has the following annotation — “अन्वासनं सेवनं यथा । अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजं” । *R.* I. 56. “गुरोर्नियोगाच्च नगेद्रकन्या स्थाणु तपस्यन्तमधित्यकायाम् । अन्वास्त इत्यप्सरसां मुखेभ्यः श्रुतं मया मत्प्रणिधिः स वर्गः” । *Ku.* III. 17.

एनाम् &c. As to the use of *Acc.* Cf. “तामान्तिकन्यस्तबलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः” । *R.* II. 24.

सहस्व &c Here *Bha., Hara., Kalyâ.,* Wilson and one *Uria* MS. read सहेथाः. Prof. Isvarachandra prefers this reading and says,— “अयमेव पाठः साधीयात्”.

(XXXVII). विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनाम् &c. Here *Bha., Ra'm, Hara.,* and Wilson read विद्युत्कम्पस्तिमितनयनां and explain it as, “विद्युतः कपेन चलनेन स्तिमिते निश्चले नयने लोचने यस्यास्तादृशीम्” । *Bha.* “विद्युता सह कपते इति विद्युत्कंपो मेघः तस्य सर्वाधनं हे विद्युत्कप इति” । *Ra'm.* “विद्युत्कंपेन तडित्प्रकाशेन स्तिमितनयना आकस्मिकप्रकाशात् स्थिरीकृतलोचनाम्.” *Hara* And *Mahuma., Val., Kalyâ., Sâro., Su.,* and seven other MSS. read विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां and explain it as,— “कथं भूतस्त्वं विद्युद्गर्भः विद्युत् गर्भे मध्ये यस्य सः स्त्रीद्वितीयः । परनारीमभाषणमेकाकिनो नाधितं । अथ हे विद्युद्गर्भ । अन्तर्गूढविद्युता भवता भाव्यं अन्यथा भीरुत्वात्सा भेष्यतीति । किं भूतां ता स्तिमितनयना निर्मेषनेत्रा इति” । *Sâro.* “हे वि-

व्युद्गर्भं विद्युद्गर्भं यस्य सः । तथा संबोधनद्वारेणोपदेश ददाति । भवता अन्तर्ग-
तविद्युता तत्र भवितव्यमिति भावः । अन्यथा भीरुस्वभावत्वाद्भविताना । सा भे-
ष्यतीति ”। *Kalyā*’, “विद्युद्गर्भं विद्युत्सौदामिनी गर्भे मध्ये यस्यासौ विद्यु-
द्गर्भः । तस्य संबोधन हे विद्युद्गर्भ । इति संबोधनद्वारेणोपदेश ददाति । हे मेघ सौ-
दामिनी गर्भे एव स्थाप्य बहिर्न प्रकाश्य कथं विद्युद्गर्भमचमत्कारचोष्टितैः सा भे-
ष्यति अत एव भीरुतया अबलात्वेन तस्या धैर्यं कुतः(?)”। *Mahima*., “भी-
विद्युद्गर्भं विद्युन् तद्धितं गर्भे मध्ये यस्य सः भो मेघ. &c ” *Su* &c *Sa’ro* inter-
pretes विद्युद्गर्भः as स्त्रीद्वितीयः because as it says, conversation by a
man when alone with the wife of another is regarded as indeco-
rous.

अभिनवैः &c In connection with this *Sa’ro*. has the
following note —“सुमनसोऽपि प्रभाते शीतवातस्पर्शेन बाध्यन्ते” ।

धीरः स्तनितवचनैः &c. *Pārsvā*. reads ‘धीरस्तनितवचनः’ ‘having
deep words of thunder.’ So does *Rāmanātha*, who says,
“मन्दगर्जितवाक्यः सत् । धीरध्वनितवचनमिति पाठे क्रियाविशेषणम् । भो धी-
र सावधान इति वा संबोधनम्” । *Su* also says, “धीर इति संबोधनमपि
मेघस्यापि भवति.” But he does not read धीरस्तनितवचन *Bhasata*.
and one *Uria* MS. read धीरध्वनितवचनै and explain it as,—
“मन्दगर्जितरूपवाक्यैः । हे धीर सावधानेति संबोधनं वा । धीरस्तनितवचनैरिति
त्क्वचित्पाठः । धीरध्वनितवचनः इति पाठे मन्दगर्जितवाक्यः सत् । धीर-
ध्वनितवचनमिति पाठे क्रियाविशेषणम्” । But *Val.*, *Su*, *Mahima*,
Lakshmi., *Meghalata*’, *Wilson* and nine other MSS. read “धीरस्त-
नितवचनैः .”

प्रक्रमेथाः &c *Cf.* “दृत्य स्वस्य प्रणयहृदयस्त्वं निवेद्यानवद्य । धीमन्
सद्यो मम कथयितुं वाचिकं प्रक्रमेथाः” । *Uddhavasandesa*. 120.

(XXXVIII). अविधवे &c. The word विधवा is an example of what
is in grammar termed ‘the deterioration’ of words. The condition
of widowhood being considered inauspicious, it has now got a
tinge of contempt about it which, from the use of the word
made by such a poet as *Ka’lida’sa*, it is inferred it did not poss-
ess the sense of contempt in former times. *Cf.* “नार्यश्चाविधवा नि-
त्यं पतिशुश्रूषणे रताः” । *Ra’ma’y.* I. 92.

मित्रं प्रियम् &c *Mahima*. explains it as, “प्रियं मित्रं इति याज्ञा-
वचनमात्रेण मेघः सुहृद्भातः अहो मेघस्योत्तमत्वम् । यदुक्तं । मनासि वचसि

काये पुण्यपीयूषपूर्णाः । त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः । परागुणपरमा-
णन्पर्वतीकृत्य नित्य । निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ” ।

हृदयनिहितैः &c *Sa'ro*. explains this as “मनसि निहितैः (this appears to be its reading) चित्ते स्थापितैः स्तोकमपि अविस्मृतैः यत्नेन मदिष्टं तन्मनो मनागपि न विस्मृत । न पुनरहं केवलं वार्तामात्रकथकः किं तु पतिवियुक्तकामिनीकामुकसचटननिपुणः इति स्वशक्तिमावेदयन्नाह ।”

यस्त्वस्यति &c In connection with this *Val*. has the following remarks.— “यस्त्वरयत्यबुवादापेक्षया पुंस्त्व प्रथमपुरुषनिर्देशश्च मित्रपदापेक्षया हि दुर्वटमेतत् ”

मन्द्रस्निग्धैः &c With reference to this *Sa'ro* has the following note—“धोरमगुरैः । यतः “उदारमरुक्षे च दूतवचने प्रशस्यते.”

अबलावेणिमोक्षीत्सुकानि &c *Sa'ro* interpretes it as, “एतेन ता-
स- पतिव्रतात्वकथने । यतस्ताः स्वभर्तृषु आगतेषु तद्वन्धमोक्षं कुर्वन्ति
नान्यथेति. ”

(XXXIX) मैथिलीवोन्मुखी सा &c. *Maithili* is the name of *Sita*, daughter of *Janaka*, the king of *Mithilā*, a city, the capital of *Videha* or North *Behār* which corresponds to the modern *Tirhut* and *Purniya* between the *Gandaki* and *Kosi* or *Kausiki* rivers. It has given its name to one of the five northern nations of *Brahmanas*, and to a school of law. It was the country of king *Janaka*, and the name of his capital, *Janakapura*, still survives in “*Janakapoor*,” on the northern frontier. *Anandoram Boorcoah* says that on the north-east of *वैशाली*, lay the kingdom of *विदेह* with its capital *मिथिला* (“*सुमराविदग्धि मिहिलं महा नभस्मि । दर्शय सीताय जनकस्य राजधानी*”) II *Bal Rām*. X. In some lexicons, *विदेह* is given as a synonym of *मिथिला*. But I do not remember meeting it in this sense. The following passage from *दशकुमार III.* distinguishes the country from the town:—“अहमस्मि पर्यटनेकदा गतो विदेहेषु । मिथिलामप्रविश्यं व” *Janakapura* in *Nepal* north of *Madhubani* is still identified as *मिथिला*, the capital of *जनक*, with all its ancient associations. *Sitamān* (probably *Sitāmān* “where *Sitā* was furrowed out”) claims the honour of giving birth to *Sita*, daughter of *Janaka* (*Rāmāy III.* 4 ch) *सीताकण्ड*, 12 miles east of *Matihari* is still revered as the tank where *Sita* bathed on her way to marriage. *विदेह*, therefore, must have comprised, besides a portion of *Nepal*, all these places or in other words the northern part of the old district of *Tirhut* and the

north-western portion of the district of Champaran. The country is still known as मिथिला in learned quarters. Its Brahmanas are broadly distinguished from the Brahmanas of Bengal and it is still governed by the Mithilā school of law, most ably represented in the वीरमित्रोदय of Mitra Misra. The people of विदेह must have formerly traded a good deal, as वैदेहक or resident of विदेह is given by Amara as a synonym of merchant ("वैदेहक सार्यवाहो नैगमो वणिजो वणिक्" II 9 7 8). Tirabhukti from which Tirhut is derived literally means "possessions on or along banks" and probably included the country along the Gandaka river. At one time, its kings were supreme in this part of India and I understand an era is still extant commemorative of the rise. According to the त्रिकाण्डशेष ("तीरभुक्तिस्तु निच्छवि । विदेहा . . ." भूमिवर्ग 8) Tirabhukti is a synonym of Videha. I do not think this is correct as I have not found in any old work तीरभुक्ति used as a synonym of Videha and am told by Maithilā Brahmanas that the southern portion of Tirhut does not come within Videha. Videha was, however, very probably within the dominions of the Rājās of तीरभुक्ति, which might have led पुरुषोत्तम to group them together. निच्छवि is rarer than तीरभुक्ति, but General Cunningham says the kings of Thibet and Ladak trace their descent from the Nichchhavis (P 451). The Newar kings of Nepal also belonged to this tribe. The Nichchhavis, therefore, appear to be the Newars, who are still found in Nepal. They must have dwelt further north probably about Lauria, near which there are extensive ruins. The above allusion relates to the discovery of her in Lanka by Rama's envoy Hanūmān, the chief of the monkey legions. Cf. "दृष्ट्वा विचिन्वन्ना तेन लकाया राक्षसी-वृता । जानकीं विषवल्लीभिः परीतेव महौषधिः । तस्यै भर्तुरभिज्ञानमगु-लीय ददौ कापिः । प्रत्युद्रतमिवानुष्णैस्तदानन्दाश्रुविन्दुभिः" । R. XII. 61-62. Here Mahima, has the following note, he says — "हनुमान-पि स्वामिभक्तः स्वामिकार्यकरणे बद्धकक्षः । एकेनापि चरणोलालेन लका प्राप्तो वनं स्थित्वा सीताया मुद्रिकां ददौ । सीताऽधोमुखी स्थितासीद्भीमु-द्रिका दृष्ट्वा वदति । पूर्वं भगवती सीता रामविरहातुगा मुद्रिकामुपहास कृतवती । यथा । श्रिया गेहे मयारण्ये त्वया चापदिसंस्थितः । रामस्त्यक्तो ह्यतः स्त्रीणां विश्वासकः करिष्यति" । And further on he says, — "हनुमदृष्टान्तं तस्याः पतिव्रतात्वं प्रकाशितं भवति । स्त्रीणां हि पतिव्रताधर्म एव प्रशस्यते कठिनश्च तद्यतः । सुत पतत प्रसमीक्ष्य पावके । न बाधयामास पाति पतिव्रता । तदा ह्यसौ तद्व्रतशक्तिपीडिता । हुताशनश्चन्दनपकशीतलः" ।

सभाष्य &c. Here *Sa'ro. Meghalata', Mahma, Val, Lakshmi., Bha, Sana'. Ra'm., Hara, Wilson* and eight other MSS. read संभाष्य and explain it as, “संभाष्य स्वागतं इत्यालप्य” *Sa'ro*, “स्वागतं भवत इत्यादिना आलप्य.” *Bha* &c.

The reading सुहृदुपनतः and सुहृदुपहतः are interpreted as ‘स्वमित्रेणानीतः, मित्रानीतः सन्, मित्रेणानीतः’ &c ।

Su omits this verse

(XL) पूर्वाभाष्य सुलभविषदां प्राणिनामेतदेव &c, Here *Pârsvat, Val, Sana', Kalya'* and two other MSS read पूर्वाशास्य &c. and explain it as,—“पूर्वाशास्य प्रथमाकांक्षणीय यत्स्वास्थ्य नाम” । *Val*, “पूर्वाशास्यं पूर्वं प्रथम आशास्य आशसनीयमिति यावत्.” *Sana'* and *Kalya'*, which means,—‘The first thing to be wished for’ *Sâro* calls it,—‘पूर्वाशास्यमिति मूलपाठः’ । *Bha, Ra'm, Hara.,* and *Wilson* read, “भूतानां हि क्षयिषु करणेष्वद्यमाश्वास्यमेतत्” and explain it as,—“हि यतः भूतानां प्राणिना क्षयिषु नश्वरेषु करणेषु शरीरेषु एतत्कुशलमाद्य प्रथममाश्वास्यमाश्वसनीयमवधानीय । जीवने सति मंगलादिकं सर्वं भविष्यतीति भावः” । *Bha. &c.*

आत्मनश्चोपकर्तुम् &c. *Mahma.* explains it as, “यतः परोपकारासिक्त्वेन हे मेघ त्वं ख्यातः । यदुक्त । विश्वं प्रार्थ्यो जगद्द्वयो जगन्माता जगत्पिता । सर्वेषु प्राणिनां मेघो जगदानन्ददायकः” ।

वियुक्तः &c. *Mahma* interpretes it as, “एतादृशे वियोगे अहं एव प्राणान्धारयितुं समर्थो नान्यः कश्चित्पुरुषः । यदुक्त । क्वचिद्विज्ञानादः क्वचिदपि च हाहेति रुदित । क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्यादनरुचिः । क्वचित्कथाधारी क्वचिदपि च दिव्यावरधरो । मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखं” ॥

अव्यापन्नः &c. *Mahm.* explains it as,—“विपदि धैर्यमेव प्राणधारणमेव पुरुषाणां धर्मो न कापुरुषाणा । यतः । विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा । सदासे वाक्पटुता युधि विक्रमः । यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुती । प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् । संपदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणेष्वधीरत्वम् । तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरल” ॥

कुशलम् &c. *Mahma* interpretes it as,—“सति कुशले सर्वे द्रष्टव्यं क्षणक्षयित्वाच्छरीरपजरस्य । यतः । इदं शरीरं पणिनामदुर्बलं पतत्यवश्यं श्लथसंघिज्जरं । किमौषधैः क्लिश्यसि मूढ दुर्मते निरामय ब्रह्मरसायनं पिब” । And further on he says,—“अत एव शरीरकुशलमेव पूर्वं प्रश्नकरणं श्रेयस्करमि-

ति भावः । सर्वेषां प्राणिनां प्राणवल्लभामिलने समाचारलिखने च पर्व कुशल परमेश्वरभजन च द्वितीय । ससारिणा मार्गद्वयदर्शनात् । यदुक्त । धन्यास्ते वीतरागा गुरुवचनरतास्त्यक्तसंसारसगाः । ब्रह्मध्याने विलीना गिरिवरगहन यौवन ये नयन्ति । ये च प्रोत्तुगपीनस्तनकमलभराक्रान्तदेहां दिनान्ते । कान्तामालिग्य गूढ मृदुशयनतले शेरते तेऽपि धन्याः ॥ अग्रे गीत सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः । पृष्ठे कान्तावलयकाणित चामरप्राहिणीनाम् । यद्यस्त्येव कुरु भवरसास्वादाने लपटत्वं । नो चेत्तेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ” ॥

One of the four Uria MSS. omits this stanza

(XLI) समधिकतरोच्छ्वासिना &c *Sa'ro* explains it as, “—अत्र मियः समावस्थाकथनेन तयोः समदुःखितां प्रतिपादयति.”

उष्णोच्छ्वास &c Here *Lakshmi*, *Ra'm*, *Hara*., *Kalya'*, *Wilson* and two other MSS read, “दीर्घोच्छ्वासम्” *Sa'ro* also notices and explains this reading It says,—“दीर्घोच्छ्वासमिति पाठे बहुनिश्चासम्.” Prof. *Isvara chandra* prefers this reading and says,—“अयमेव पाठः समीचीनः । प्रतनु तनुना इत्यादावुभयोरेव पदयोः समानार्थप्रतिपादकतया उष्णोच्छ्वास समधिकतरोच्छ्वासिनित्यत्रापि तथात्व युक्त समधिकतरोच्छ्वासिनित्यस्य दीर्घनिश्चासिनित्यर्थः उष्णोच्छ्वासमित्यत्र दीर्घोच्छ्वासमिति पाठे उभयोः समानार्थप्रतिपादकता संभवति न त्वितरथा” ।

तैः &c. *Mallinatha* explains this as,—“स्वसंवेद्यैः” ‘known to himself’, because as *Sa'ro*. remarks “पूर्वानभूतैः experienced by himself.” *Sa'ro*. also interpretes it as,—“लोकप्रसिद्धैः those desires well known in the world” *Bha*., *Ra'm*, *Hara*., *Kalya'*, and *Wilson* read तैः for तैः and Prof. *Isvarachandra* *Vidya'sa'gar* says,—“अयमेवपाठः साधीयाच्च तैरिति तच्छब्दस्यानुपयोगात् । युष्मच्छब्दप्रयोगाभावे त्वदीयमगमित्यस्य बोधयितुमशक्यत्वाच्च.”

संकल्पैः &c. *Sa'ro* and *Su*. explain this as, — “चुंबनदर्शनस्पर्शनादिव्यापारैः” &c.

वैरिणा &c In connection with this *Mahima* has the following note. He says,—“यः स्वप्रविज्ञानगतोऽप्यगोचर चरति नो यत्र गिरः कवेरपि । यत्रानुबध्नन्ति मनःप्रवृत्तयः सहेल्यार्थः विधिनैव साध्यते । इति हेतु कथं मम पुष्पानयनाधिकारं प्रमादः (See note on the first verse) कथं मम एतां वाच विरहदुःखसंभवः । अत एवोक्तं हनुमन्नाटके । कुत्रायोध्या क्व रामो दशदशवचनाहण्डकारण्यमागाव । कासौ मारीचनामा कनकमयमृगः कुत्र सी-

तापहारः । सग्रीवे राममैत्री क जनकतनयान्वेषणे प्रेषितोऽहं । योऽर्थोऽ-
संभावनीयस्तमपि घटयते क्रूरकर्मा विधाता ।”

One of the four Una MSS omits this verse.

(XLII) यदपि &c तत् (वचन) As *Mallinatha* says is here understood. The sentence containing two relatives the correlative of one is expressed, that of the other is implied.

शब्दाख्येय &c *Sa'ro* and *Mahima*. explain it as, —“प्रपदशब्द-
प्रतिपाद्य न तु गाप्य हस्तभूमज्ञादिवाच्यम्” *Mahim*, शब्देन श्रोतृग्राह्यण
आख्यायत कथ्यते यत्तत् प्रकटाख्य न तु गाप्य हस्तभूमज्ञादिवाच्यम्.
Sa'ro.

मन्मुखेनेदमाह &c. *Mahim*. explains it as,—“आलिंगन चुवन
च महामुखरूपं भाग्यगुक्तम् । उक्त च । न ध्यात पदमीश्वरस्य विवि-
वत्संसारविच्छिन्नये । स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुधर्मोऽपि नोपाजितः । नारीपीन-
पयोधराहयुगलं स्वप्रेऽपि नालिंगितम् । मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदं
कुठारा वयम् । तथा चुवन । नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या
विनीतोचिता । खड्गाग्रैः करिकुभशत्रुदलनैर्नाक न नीत यशः । कान्ता-
कोमलपल्लवाधररसः पीतो न चद्रोदये । तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो
शून्यालये दीपवत्” ॥

किल ते यः &c Prof. Isvarachandria Vidyāsāgara does not
prefer the reading ते and gives the following reasons in
support of his arguments. He says,—“अत्र ते इति पदस्य न
कश्चिदुपयोगो लक्ष्यते । तदिति पदश्चाध्याहार्यम् । ईदृशश्चाध्याहारः कवे-
रशक्तिं द्योतयति । एकश्चापयोगविरहितः प्रयोगः अपरश्चाशक्त्येतत्तोऽध्या-
हार इति दोषद्वयमापतति” । And suggests another reading for
the same. He says,—“ते इत्यत्र तदिति पाठे तु दोषद्वयस्यैव परि-
हारः स्यात् तस्मात् । शब्दाख्येय यदपि किल तद्यः सखीनां
पुरस्तात् । इत्येवंरूप एव पाठः समीचीनतया प्रतिभाति”

Three MSS. in our possession actually read तत् for ते.

(XLIII) वक्त्रच्छयां शशिनि &c In connection with this
Sa'ro has the following remarks,—“कान्तिमत्त्वादानन्दकत्वाच्च.”

शिखिना बर्हभारिषु केशाव &c *Cf.* “अस्याः कचाना शिखिनश्च किं नु
विधिं कलापौ विमतेरगाताम् । तेनायमेभिः किमपूजि पुष्पैरभर्तिस दत्वा स
किमर्थचन्द्रम्” *Nab* VII 22.

“कलमन्ध्रतुतासु भाषित कलहसिन्धु मदालस गतं । पृषतीषु विलोलीक्षितं

पवनाधूतलतासु विभ्रमाः ॥ त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य मां निहिताः सत्यममी गुणा-
स्त्वया । विरहे तव मे गुरुव्यथ हृदय न त्ववलंबितु क्षमाः । R. VIII. 59—
60

चण्डि &c. Here *Sa'io.*, *Val.*, *Mahima*, *Lakshmi*, *Su.*, *Bha . Sa-
na'*, *Kalya'*, Wilson and six other MSS. read भीरु. *Val.*, has the
following note on this

He says,—“भीरु इत्यन्वर्थं नाम नागीणा सशस्त्रपूर्वको विविरानित्य
इति ह्रस्वगुणाभावः” ।

(XLIV). प्रणयकुपिता &c Cf “अपत्यं यत्तादृग्दुरितमभवत्तेन
महता । विषक्तस्तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयत । पटुधारावाही नव इव चिरेणापि
हि न मे । निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युविरमति” । *Uttara*—
IV. 3. also Cf. “हृदयमिषुभिः कामस्यान्तः सशल्यमिदं सदा ।
कथमुपलभे निद्रा स्वप्नं समागमकारिणीम् । न च सुवदनामालेख्यऽपि
प्रियामममाप्य तां । मम नयनयोरुद्धास्पत्वं सखे न भाविष्यति” । *V.*
II. 10.

न सहते &c *Mahima* explains it as,—“अहो आत्रयोदोर्भोग्यम् ।
शशिनि खलु कलकः कटकाः पद्मनाले । उदधिजलमपेय पडिते निर्धनत्वं ,
दयितजनवियोगो दुर्भगत्वं सुरुपे । धनवति कृपणत्वं रत्नदोषीकृतागः” ।

कृतान्तः &c. In connection with this *Mahima*. has the following
note He says,—“अकरुणत्वमकारणविग्रहः । परधने परयोषिति च स्पृहा ।
सुजनवन्धुर्जनैष्वसहिष्णुता । प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्” ।

(XLV) तरुक्सिलयेषु &c The tears shed by the local deities
to express sympathy for Yaksha's helpless condition must really
be the rain-drops falling on the shoots of trees The reason
why the tears are said to fall upon trees is, as *Mallinatha*
says, that their fall upon the ground is regarded a bad
omen The यक्ष awakens the sympathy of the sylvan
deities or of the trees he haunts and makes them shed
tears of compassion in the shape of gum or dew-drops, Cf
“विलपन्निति कोसलाधिपः । करुणार्थग्रथित प्रियां प्रति । अकरोत्स्पृधिं
वीरुहानपि । श्रुतशाखारत्नबाष्पदुर्दिनाम्” । R VIII. 69

Mahima also notices the reading अश्रुलेशा ।

(XLVI). यदि किल &c The word किल implies probability यदि
here denotes the same. By taking these words together

probability is intensified. *Cf.* “यदि किलेति पदद्वयमपि संभावनार्थं एकार्थपदद्वययोरुपादानं संभावनातिशयं ख्यापयति.” *Sa'ro.*

गुणवति &c *Mahima.* explains this as,—“नारीणां शीलानां गुणाः प्रशंस्याः । यदुक्तं वर । शृंगोत्तुगाद्गुरुशिखरिणः कापि विषमे । पतित्वायं कायः कठिनदृशद्वन्तर्विदलितः । वर न्यस्तो हस्तः फणिपतिमुखे तीक्ष्णदशने । वर वदौ पातस्तदपि न कृताः शीलविषमाः । वह्निस्तस्य जलायते जलनिविः कुल्यायते तत्क्षणांश्चेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतेः सघः कुरङ्गायते । व्यालौ माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते यस्यागेऽखिललोकावलम्बतरं शीलं समुन्मीलति ।”

किसलयपुटान् &c. *Cf.*, “भिन्नपल्लवपुटो वनानिलः” । *R IX 68.*

तुषाराद्रिवाताः &c *Mahima* explains this as,—“हिमाचलस्य सुगन्ध-वातस्पर्शलोभात् । अहो दुःखभाडाससारविकारवारद्वारचंष्टाचरित्र । यदुक्तं आदित्यस्य गतागतैरहरहः मक्षीयते जीवित । व्यापारैर्बहुकार्यभारशुचिभिः कालो न विज्ञायते । दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरण त्रासश्च नोत्पद्यते । पीत्वा मोहमयीं प्रमाद-मदिरामुन्मत्तभूतं जगद” ।

एभिस्तवेति &c. *Cf.* “बोढा कुरवकरजसां किसलयपुटभेदसीकरानुगतः । अनिमित्तामुत्कंठामपि जनयति मलयवातोऽयम्” । *Ma'davi. III 9*

(XLVII). दुर्लभप्रार्थन मे &c *Cf.* “इदमसुलभवस्तुप्रार्थनादुन्निवार । प्रथममपि मनो मे पंचबाणः क्षिणोति । किमुत मलयवातोन्मूलितापाडुपत्रैः । उपवनसहकारैर्दक्षितेष्वकुरेषु” । *Vi II. 6.*

त्वद्विद्योगव्यथाभिः &c *Mahima.* has the following note on this. He says, — सयोगविरहरहितानां च रात्रिः न सुखावहा नापि दुःखावहा भाति । यदुक्तं । येषां वल्लभया सह क्षणमिव क्षिप्रं क्षया क्षीयते । तेषां शीतकरः शशी विरहिणामुल्लेखेव सतापकृत् । अस्माकं तु न वल्लभा न विरहस्तेनोभयाभावतो । राजा राजतु दर्पणाकृतिरसौ नोऽप्यो न वा शीतलः” ।

त्रियामा &c The night, having three watches, *Praharas*, quarters. The last quarter of the night being reckoned as part of the next day or as क्षीरस्वामी states it in his commentary on Amara, which runs thus.—“आद्यन्तयोरर्धयोर्दिनव्यवहारात्”—त्रियामा. The first half of first quarter being reckoned a part of the last day, and the second half of the last quarter being reckoned as part of the next day. *Su.* also quotes the same with slight difference. He says,—“त्रियामा रात्रिः । आद्यन्तयोरर्धयामयोर्दिनव्यवहारान्त्रियामेति क्षीरस्वामी”.

(XLVIII) नन्वात्मान &c. *Mallinatha* notices the reading नन्वात्मान and takes it as a vocative particle. (O! auspicious one). *Sa'ro.* and *Mahima.* also notice this reading and say,—
 “नन्वात्मानमिति पाठे ननु अभिमुखीकरणे कोमलामञ्जणे वा.;” *Sa'ro.*
 “नन्वात्मानमित्यपि पाठः । ननु इति कोमलामञ्जणे.” *Mahima.*

दुःखमेकान्ततो वा &c. *Cf.* “सयोषा विप्रयोगाश्च भवन्ति बहवो नृणाम्.” *Katha' X. 5.*

चक्रनेमिक्रमेण &c. *Wilson* cites a quotation from *Plutarch* containing a similar idea.—

“The wheel of Life is ever on the ground, While one side's up, the other's on the ground.” *Cf.* “चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च.” *Manu.* *Vallabha* cites the following here,—“सुखं च दुःखं च भयाभयं च लाभालाभौ मरणं जीवितं च । पर्यायशः सर्वमिदं स्पृशन्ति तस्माद्धीरो न प्रहृष्यन्न शोचेत्.” *Mahima.* cites here the following —“सुखस्यानंतरं दुःखं दुःखस्यानंतरं सुखं सुखदुःखं मनुष्याणां चक्रवत्परिवर्तयेत्.” And further on he says,—“इति द्वेतीस्त्व कल्याणि कातरत्वं मा गच्छेः । वस्तुगत्या नीतिमार्गे सत्पुरुषाणां स्त्रीषु कापट्यमेव श्रेयस्करं पुरुषः स्त्रीवशो भवति इत्ययं कौतस्तुतौ (?) न्यायः । यदुक्तं । दाक्षिण्यं स्वजने दद्या परिजने शाठ्यं तथा दुर्जने । प्रीतिः साधुजने स्मयः खलजने विद्वज्जनेष्वार्जवं । शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धर्तता । ये चैवं पुरुषाः क्रियासु कुशलास्तैष्वेव लोकस्तिष्ठिः”

आत्मनैवावलम्बे &c. Here *Hara.*, *Wilson* and two other MSS. read आत्मना नावलम्बे and explain it as,—“आत्मना स्वयमेव आत्मानं मनो नावलम्बे । अपि तु धैर्यं प्रापयामि.” *Hara.*

(XLIX) भुजगशयनः दुत्थिते शार्ङ्गपाणौ &c. The day on which the period of curse is to terminate, is the eleventh of the first half of कार्तिक called प्रबोधिनी and periphrastically referred to here. *Wilson* says that the serpent couch is the great snake Ananta, upon which Vishnu (शेषे ज्ञेते शेषशायी), or, as he is here called, the Holder of the bow शार्ङ्ग, reclines, during four months, from the 11th of भाद्रपद to the 11th of कार्तिक, on the 23rd of June to the 26th of October. The sleep of during the four months of the periodical rains in Hinduism seems to bear an emblematical relation to that season.

“अवश्यमाविनो भावा भवन्ति महतामपि । नम्रत्वं नीलकण्ठस्य महाद्भिः

शयनं हरेः” । “जयाति स भगवान् कृष्णः शेते यः शेषभोगशय्यायाम् । मध्येपयः पयाधरेपर इवाभोनिधिः कृष्णः” । *Ven* I. 5.

लौचने मीलयित्वा &c Lit. by shutting up the eyes; & without succumbing to grief, hence with fortitude *Mahima*. explains this as,—“कोऽर्थः यथा कश्चिन्निमीलितलोचनः सन् तिष्ठति तथा त्वमपि धैर्यमालम्ब्य सुखदुःखानुभावः शरीरैरेव भुञ्ज्ये । यदुक्तं । भवितव्यं यथा येन न तद्भवति चान्यथा । नीयते तेन मार्गेण स्वयं वा तत्र गच्छति । प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः किं कारणं दैवमलवनीयम् । तस्माद् शौचामि न विस्मयो मे यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्” । “ना भवति यत्र भाव्यं । भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन । करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति” । *Cf.* “क्लान्ते कस्यपि वासराणि गमय त्वं मीलयित्वा दृशौ” । *Amar us'ataka*. 25.

विरहगुणित &c. Here *Pa'rsva'*, *Sa'o*, *Val*, *Mahima*., *Lakshmi*, *Hara*, *Wilson* and eight other MSS. read *विरहगुणित* and explain it as,—“विरहेण गुणितं प्रवृद्धम्.” *Su*, “विरहगुणितं विरहेण वर्धितम्” *Hara*; “विरहगुणितं वियोगाभ्यस्त गुणकारेण संख्याविषयीकृतं । कोऽर्थः । अस्मिन्वर्षे यावत्संख्याकः स्वाभिलाषो नोपभुक्तोऽस्ति तमपि समस्तमेव एकदेवोपभोक्ष्यावह” *Saro*; “विरहे चित्ताभिप्रायविषयीकृतं तं तमिति अनेकप्रकारमात्मनो नोपभुक्तो विद्यते तत्सर्वमात्मनो भोगाभिलाषं एकदेवोपभुञ्जे.

इतिहेहे *Mahima*. But *Maha'atma*., *Kalya'*, and two other MSS. read *विरहजनितं* and explain it as,—“विरहजनितं वियोगोपचितम्” &c *Kalya'*. *विरहगुणित* means ‘(desires) intensified by separation. *Sa'o*. notices this reading and says,—“विरहजनितमिति पाठे विरहे चित्ताभिप्रायेण विषयीकृतम्.”

क्षपासु &c. *Mahima* interpretes it as,—“अनेन दिने भोगो निषिद्धः । यदुक्तं । न टिटिभो गच्छति हसलीलया । न वायसः कूजाति कोकिलस्वर । यवाः प्रकीर्णा न भवन्ति शालयः । तथैव नीचः प्रकृति न मुंचति” । And further on he says,—“अत एवाविचार्यकृत्यकणादिदं फलं दुःखरूपं जातमेवास्ति । यतो महापुरुषैरुक्तम् । सगुणमप्युगं वा कुर्वता कार्यजात । परिणतिरवधार्या यत्नतः पडितेन । अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपक्षेः, भवति हृदयदाही शैलतुल्यो विपाकः” ।

(L) भूयश्चाह त्वमपि &c. Prof. Is'varachandra condemns the use of अपि in this reading in the following way. “अपिशब्दस्यात्र

न कश्चिदुपयोगो लक्ष्यते तस्मात् त्वमपि इत्यपिशब्दवान् पाठः प्रामादिक एव त्वमपि इति कवेरभिमतः पाठ इति प्रतिभाति । अयि इति वक्षस्य स्वपत्नी-संबोधनम्." *Pa'ssa* reads "भूयश्चाह त्वमसि" &c and *Bha*, *Hara*, *Wilson* and one MS read "भूयश्चापि त्वमसि &c." and explain it as, "अपि एवं सभाव्यते पुनश्च शयनं शय्याया मम कठलम्ना कठासक्ता त्वं पुरा असि भविष्यसि पुराशब्दयोगे भविष्यति की । पूर्वं यथा त्वं मम कठ-लम्ना आसीस्तथा पुनरपि कठलम्ना भविष्यसि इत्यर्थः । आश्वासवचनमेतत् । पूर्ववृत्तं स्मारयन्नाह निद्रां गत्वेत्यादि." *Bha*

(LI) अविश्वासिनी &c Here Prof Is'varachandra condemns the interpretation of *Mallina'tha* in the following way He says,— "हे असितनयने कौलीनाल्लोकप्रवादादेतावता कालेन परासुर्नोचेदागच्छतीति जनप्रवादादित्यर्थः मयि विषये अविश्वासिनी मरणशक्तिनी मा भूः । " *Mall* &c इयं व्याख्या न समीचीना प्रथमपादे "अभिज्ञानदानात् कुशलिन विदित्वेत्य-त्तेनैव मरणशंकाया निर्वृत्तिनात् पुनर्द्वितीयपादे मरणशक्तिनी मा भूरित्यभि-ज्ञानमसंगतम् । तस्मात् —

'हे असितनयने कौलीनात् असंशयमेतावता कालेन स्नेहविलोपो जातः वात परं स ते पतिस्त्वा स्मरिष्यसि इति लोकवादात् मयि अविश्वासिनी श्वा भू अविश्वास मा कार्षीः दीर्घकालविप्रकर्षान्मयि स्नेहनिवृत्तिशक्ता न हिर्येत्यर्थः । इत्येव व्याख्येयम्" ।

Bha, *Hara*, and *Wilson* read —

तुनि &c," and explain it as,—"स्नेहान्प्रेमाणे किमपि अनिर्वचनीयस्वरूपात् श्राहुर्वदन्ति लोका इत्यर्थात्कीदृशान् स्नेहात् विरहे विच्छेदेऽपि विगता आपद् विपत्तिर्येषां तादृशान् सततं स्नेहपात्रस्य स्नेहानुस्मरणात् हि यस्मात् ते स्नेहाः अभोग्याः विरहे अभुज्यमानाः अत एव उपाचितरसाः उपबृंहितरसाः सन्त वस्तुनि पदार्थे स्नेहपात्रे दृष्टे सति प्रेमराशीभवन्ति स्नेहपुञ्जीभवन्ति प्रेमपात्रदर्शनेन तत्राधिक्यं व्रजन्तीत्यर्थः" । *Bha*

स्नेहात् &c. स्नेह is defined in the commentary as the 'process of winning a person over,' but प्रेम is that which is 'incapable of enduring separation from the desired one'.

विरहे ध्वसिन्ः &c In connection with this *Sa'ro* and *Mahima*, have the following remark,— "दुर्मन्त्रावृत्तिर्विनिश्चयति यतिः सगास्तुतो लालनादिप्रोऽनध्ययनात्कुल कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् । मैत्री चाप्रणया-त्समुद्भिरनयात्स्नेह प्रवासाश्रयात् स्त्री मद्यादन्वेक्षणादपि कृषिस्त्या गात्रप्रमादा-

दनम्” । and further on *Mahima* and *Val* say,—“अत्र स्नेहः प्रवासाभयादिति हृदयवल्लभविषये वियोगवशाद् गुणस्नेहः संपद्यते इत्यर्थः । उक्तं च । न हि भवति वियोगः स्नेहविच्छेदे हेतुर्जगति गुणनिधीना सज्जनानां कदाचित् । घनतिमिरनिरुद्धो दूरसंस्थोऽपि चन्द्रः किमु कुमुदवनानां प्रेमभगं करोति । इत्येवं वियोगे स्नेहाधिक्यं पुनश्च । स्मर्तव्योऽहं त्वया मित्रं न स्मरिष्याम्यहं तव । स्मरणं चेतसो धर्मस्तच्चतो भवता हृतम् । इति हेतोर्वियोगे वल्लभोऽत्यन्तरागस्थानं भवति संयोगे तु स्नेहकापट्यं न भवति । तव प्रेमसमारो जनप्रसिद्धो भवति । यथा । इन्द्रियं न निश्च्यते न मधुरं दूतो वन्नः श्रूयते । नोच्छ्वासो हृदयं दहन्ति शिशिरा नापैति कार्श्यं वपुः । स्वाधीनामनुकूलिनीं निजवधूमालिङ्ग्य यत्सुष्यते । तत्किं प्रेम गृहाश्रमव्रतमिदं कष्टं समाचर्यते.”

(LII). त्रिनयनवृषोत्स्वातकूटात् &c. Of “वप्रकीडापरिणतगजप्रेक्षणी-यं” । *Megh*, I, 2, also, “शोभांस्तु त्रिनयनवृषोत्स्वातपङ्कोपमेयाम्” । *Megh* I 56 also, निःशेषविक्षालितधातुनापि । वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु । नीलोर्ध्वरेखाशबलेन शसन्दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन ” । *R* V 44

(LIII). धीरतां &c. *Mallinātha* takes this word to mean गभीरत्व which must mean ‘nobility of heart,’ but it may more naturally mean ‘gravity as indicated by silence and hence silence itself.’

प्रत्यादेशः The interpretation of प्रत्यादेश given by *Mallinātha* is here rather laboured since the word is never found used in this sense anywhere else. The line may be interpreted by preserving the natural sense of प्रत्यादेश as follows.— I do not think your gravity (i. e. silence) to proceed from the rejection (of my suit).

On the reading “प्रत्यादेशाच्च खलु भवतो धीरतां तर्कयामि,” Prof. Isvarachandra Vidyāsāgara remarks — “लिपिकप्रमादवशादापतितं पाठवैकल्यमनुद्भाव्यश्लेषपादस्यास्य व्याख्यातत्वान्मल्लिनाथादीनां व्याख्यानादर्थग्रहस्तात्पर्यावगमो वा नोपपद्यते यथा”—

“प्रत्यादेशात्करिष्यामीति प्रतिवचनात् । “उक्तिराभाषणं वाक्यमादेशो वचनं वचः” इति शब्दार्णवे । भवतस्तव धीरतां गभीरत्वं न तर्कयामि न समर्थये खलु । *Mallh.*

“न प्रत्यादेशादनिराकरणान्न करिष्यामीत्यकथनाद्धेतोर्भवतो धीरतामवाचालतं । तर्कयामि” । *Hara.*

“प्रत्यादेशाभिः शब्दोऽपीति वक्ष्यमाणत्वन प्रत्युत्तरस्य निराकरणार्हवतौ धी-
रतां धैर्यं न खलु तर्कयामि उत्प्रेक्षे अपि तु तर्कयाम्येव खलु निषेधे । द्वौ निषेधौ
प्रकृतमर्थमवश्यमयत इति वृद्धाः” । *Bha.*

कल्याणमल्लस्तु (also *Sa'ro., Mahima., Su.*, and four other MSS. read
प्रत्याख्यातुं and explain it as, —“प्रत्याख्यातुं निराकर्तुं न तर्कयामि न संभा-
वयामि न विचारयामीति यावत्” &c.; *Val* reads प्रत्यादेष्टुं and explains it
as ; प्रत्यादेष्टुं प्रत्याख्यातुं निराकर्तुमिति यावत्.) प्रत्यादेशान्नेति पाठमनादृत्य
पाठान्तरं कल्पयित्वा व्याख्यातवाच्य । यथा । “प्रत्याख्यातुं न खलु भवतो धीरतां
तर्कयामि ।” भवतो धीरता धीरत्वं प्रत्याख्यातुं निराकर्तुं न तर्कयामि ।

एतदप्यकिंचित्स्वरं तर्केण प्रत्याख्यानयोरेककर्तृकतापातस्य दुर्निवार-
त्वात् तर्केण यक्षनिष्ठं प्रत्याख्यानं मेघनिष्ठमित्यस्थानपलपनीयत्वात् ।

सनातनरामनाथाभ्यां तु श्लोकोऽयं न व्याख्यातः ।

वस्तुतस्तु प्रत्यादेशान्न खल्वित्यत्र ताडव्यशकारात्परमार्कापातः प्रामादि-
कः तत्परित्यागे तु सर्वमनाकुलं स्यात् । यथा—

“प्रत्यादेशं खलु भवतो धीरतां तर्कयामि” । भवतो धीरतां गभीरत्वं तू-
ष्णीभावमिति यावत् प्रत्यादेशं प्रत्याख्यानं न तर्कयामि न समर्थये खलु तवायं
तूष्णीभावो न प्रत्यादेशशीतकः इति भावः ।

Mahima., Su. and two other MSS. read अधीरतां and explain
it as, — “अधीरतां असामर्थ्यम् &c.”

प्रत्युक्तम् &c. *Val.* explains this as, — “महतां आर्षिषु अभिमता-
र्थसंपादनमेव प्रत्युत्तरं महान्तो हि कर्मणा ब्रुवन्ति न वचसा.” *Su.* explains
it as, — “यथा । नीचो वदति न कुरुते । न वदति साधुः करोत्येव । इति-
भीवः ।” Here *Mahimasinhagani* remarks, — प्रत्युत्तरं किं । मुखेन
त्युत्तरकरणेन इति सत्पुरुषाणां गोब्रतम् । यदुक्तं । किं कूर्मस्य भरव्यथा न
गच्छेद्भ्राता न क्षिपत्येव यत् । किं वा नास्ति परिश्रमो दिनपतेरास्ते न यो
नश्चलः । किं चांगीकृतमुत्तमजं मनसा श्लाघ्यो जनो लज्जति । निर्वाहः प्रति-
पन्नवस्तुषु सतामेतद्वि गोब्रतम् । एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान्परित्य-
ज्य ये । सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये । तेऽमी मानवराक्षसाः
परहित स्वार्थाय निघ्नन्ति ये । ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीम-
हे । केचिद् याचकयाच्यमानविभवाः कुर्वन्त्यधोवक्त्रतां । केचिन्नोक्तिपरास्तथा
तदपरे दृष्ट्वापि यात्यन्यतः । त्व केनापि न याचितो न च खलु श्रुत्वा त्वयाकर्णिता ।
यद्वर्षत्रसि सर्वतोऽपि हि तथा स्वहानतात्यद्भुता । तावत्प्रतीतिमती प्रिया प्रियत-
मै माता हिताकाक्षिणी । स्यात्तावत्तनुजे नयस्थितिमनास्तावत्क्षितीशा इमे । मैत्र्यं
तावदकृत्रिमं स्फुरति भी स्निग्धेऽपि सप्रत्यय । यावच्च जलदं प्रवर्षसि पयः-

पूरं प्रसन्नात्मना । हे मेव त्वयि प्रत्यक्षं वर्षति यदि कस्यापि मनोरथप्राप्तिर्न स्यात्तर्हि तस्यैव दौर्भाग्यम् । यथा । बीजैरकुरितं लताभिरुदितं वल्लीभिरुज्जृ-
भित । कन्दैः कन्दलितं जनैः प्रमुदितं धाराधरे वर्षति । भ्रातश्चातकं पातकं किम-
पिते सम्यङ् न जानीमहे । येनास्मिन् पतन्ति चंचुपुटके द्वित्राः पयोबिन्दवः”

ईप्सितार्थक्रियैव &c. *Of* “नाभ्यर्थितोऽपि जलदः सलिलं ददाति । सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः” । *Nr.* S. 84. “दृषितश्चातकपक्षी मुदिरमुदीक्षत आकुलितो याचत् । तावज्जलदवितोर्णं निपतितमंभो वदने तस्य” *Pradyumna Vijaya* I. “चातकत्रिचतुरान् पयःकणान् याचते जलधर पिपासितः । सोऽपि पूरयति भूयसांभसा चित्रमत्र महतामुदारता” । *Purva Chaitakashitaka* 2. “शमितचातकात्तस्वराः” । *Sl.* IV. 24. “मा तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्त्या । स्वार्थात्सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव” *V.* IV. 15.

(LIV). प्रियमनुचितं प्रार्थनादात्मनः &c Here *Bha.*, *Hara*, *Wilson* and two other MSS. read, “प्रियसमुचितं प्रार्थनं चेतसः” and explain it as, “प्रियसमुचितं प्रणयियोग्यम्” । *Bha.*, *Mahmasanhagani*, Prof. Isvarachandra, Pandit Pra'nana'th, *Prakshmi*, and a MS. read, “प्रियमनुचितप्रार्थना वार्तिनः” and explain it as,—“प्रार्थनायां वर्ति-
तुं शीलं यस्येति प्रार्थनावर्ती । अनुचितस्य अयोग्यस्य प्रार्थनावर्ती अनुचित-
प्रार्थनावर्ती तस्य अनुचितप्रार्थनावर्तिनः । यदुक्तं पूर्वं । अनुचितकर्माभः
स्वजनावरोधः । The text is, ‘कटके च्छाया... प्रायुणक or प्री घणि
क m. a visitor, a spy) मस्तकगूलानि चत्वारि” ॥ *Mahma.*; *Sand-*
tana and two other MSS. read, “प्रियसमुचितं प्रार्थनाचेतसः” and,
explain it as, “प्रार्थनाचेतसः अभ्यर्थनायसक्तहृदयस्य” । *Sand.*; *Val.*
Sa'ro, *Su*, *Kalya'*, and seven other MSS. read, “प्रियमनुचितप्रार्थ-
नावर्त्मनः” and explain it as,—अनुचितप्रार्थनावर्त्मनोऽनुरूपयाच्चा मा-
र्गस्य” । *Val.*; “अनुचितः प्रार्थनावर्त्म यस्य अस्ती. अनुचितप्रार्थनावर्त्मा ।
तस्य दिव्यानुभावप्राप्तसमस्तवाञ्छितवस्तुत्वात् । अयोग्ययाच्चा मार्गस्य” ॥
Sa'o, “अनुचित अयोग्यं जलदस्य अचेतनत्वात् पूर्वयाचनाकरणाभावाद्वा
प्रार्थनाया वर्त्म मार्गो यस्यास्ती अनुचितप्रार्थनावर्त्म तस्य अनुचितप्रार्थनावर्त्म-
नः” । *Su* &c.

क्षणमपि च ते &c. *Haragovinda* and three other MSS. read here “क्वचिदपि च ते” and explain it as,—“क्वचिदपि काले स्थाने च” ॥ *Hara.* &c.

शुभं भूयादध्येतुरध्यापकस्य च

APPENDIX A.

Verses considered to be spurious and not commented upon by Mallinātha.

पूर्वमेघम्.

After the 18th:—

अध्वक्लान्त प्रतिमुखगतं सानुमानाप्रकूटस्तुंगेन त्वां जलद शिरसा वक्ष्य-
ति श्लाघ्यमानः । आसारेण त्वमपि शमयेत्तस्य नैदाघमग्निं सद्भावाद्देः
फलाति न चिरेणोपकारी महत्सु ॥ १ ॥

उत्तरमेघम्.

After the 27th:—

स्निधाः सख्यः कथमपि दिवा तां न मोक्षयन्तितन्वी
मेकप्रख्या भवति हि जगत्संगनाना प्रवृत्तिः ।
स त्व रात्रौ जलद शयनासन्नवातायनस्यः
कान्ता सुप्ते सति परिजने वीतनिद्रामुपेयाः ॥ २ ॥
अन्वेष्टव्यामवनिशयने सन्निकीर्णैकपाश्वर्
तत्पर्यकप्रगलितलवैश्चिन्नहारैरिवास्त्रैः ।
भूयोभूयः काठिनविषमां सारयन्तीं कपोलात्
आमोक्तव्यामयमितनखैर्नैकवेणीं करेण ॥ ३ ॥

After the 44th:—

धारासिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य बाले
दूरीभूत प्रतनुमपि मां पचबाणः क्षिणोति ।
धर्मान्तेऽस्मिन् विगणय कथं वासराणि व्रजेयुः
दिक्ससक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि ॥ ४ ॥

After the 54th:—

इत्याख्याते सुरपतिसखः शैलकुल्यापुरीषु
स्थित्वा स्थित्वा धनपतिपुरीं वासरैः कैश्चिदाप ।
मत्वागारं कनकरुचिर लक्षणैः पूर्वमुक्तैः
तस्योत्सर्गे क्षितितलगतां तां च दीना ददर्श ॥ ५ ॥
तस्मादद्रंनिगदितपथः शीघ्रमेत्यालकाया
यक्षागार विगलितनिभं दृष्टचिदैर्विदित्वा ।
यत्सदिष्ट प्रणयमधुरं गुह्यकेन प्रयत्नात्
तद्देहिन्याः सकलमवदत् कामरूपी पयोदः ॥ ६ ॥

तै संदेशं जलधरवरी दिव्यवाचा चचक्षे
 प्राणांस्तस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः ।
 प्राप्योदतं प्रमुदितमनाः सापि तस्थौ स्वभर्तुः
 केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥ ७ ॥
 श्रुत्वा वार्ता जलदकथितां ता धनेशोऽपि सद्यः
 शापस्यान्तं सदयहृदयः संविधायास्तकोपः ।
 संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दपती हृष्टचित्तौ
 भोगानिष्ठानविरतसुखं भोजयामास शश्वद ॥ ८ ॥
 इत्थंभूत सुचरितपदं मेघदूताभिधानं
 कामक्रीडाविरहितजने विप्रयुक्ते विनोदः ।
 मेघस्यास्मिन्नतिनिपुणता बुद्धिभावः कवीनां
 नन्वार्यायाश्चरणकमल कालिदासश्चकार ॥ ९ ॥

पूर्वमेघम्

Various readings of the spurious verses.

1. M. अध्वश्रान्तं for अध्वक्लान्तं, K1 K2. M. श्रमपारित for प्रतिमुखगतं.
W. M. C1. C2. चित्रकूटः for आम्रकूटः W. C1 M. श्लाघमान K2.
M. श्लाघ्यमान for श्लाघ्यमानः. M सत्कारार्द्रः for सद्भावारद्रः G1. R. M.
धारायिष्यत्यवश्य for वक्ष्याति श्लाघ्यमानः.

उत्तरमेघम्

2. C1. M. क्षणमापि for कथमा वान्त for मोक्षयन्ति. G2.
M. शून्यां for तन्वीम्. G2. M. एकप्रेक्ष्या for एकप्रक्ष्या. M. G2. च for
हि. G2. M. अद्भुतानां for अंगनानां.
3. G1. M. 'पर्यन्त' for 'पर्यक' M. 'नवैः' for 'लवैः' M.
सादयन्तीं for सारयन्तीं.
4. G2. K1. R. M. क्षणेति for क्षिणेति. M. मे for आस्मिन्
G1. G2. K1 R. M. 'प्रविरल' for 'प्रवितत.' K2. omits this.
6. M निगदितुमथो, R. M. निगदितवचः, K2. M. निगदितकथः
for निगदितपथः. M. एव for एत्य. M. विकसितनिभं, M. विगलि-
विभुं, K1. R. M. विगलितविभं, K2. M. विगलितभुवं for विगलित-
निभं. M. K1. दिष्टचिह्नैः. K2. R. M. दृष्टिचिह्नैः for दृष्टचिह्नैः.
7. M. C1. तव for तै. K1. K2. R. M. आचचक्षे for चचक्षे.
M. परहितरतः for जनहितरतः. C1. M. अविततफला for अभिमतफला.
C1. M. अभ्युन्नतेषु, M. ह्युन्नतेषु, for ह्युत्तमेषु.

8. M. शापस्यान्ते for शापस्यान्तं. M. निगदितशुचौ for विगलित-
शुचौ. M. तुष्टचित्तौ for हृष्टचित्तौ. K1. M. इष्टान्भोगान् for भोगानिष्टान्.
M. C1. K2. अभिमतसुखान्, M. अभिरतसुखं, G2. M. अभिमतसुख
for अभिरतसुखम्.

9. M. सुललितपदं, M. सुचरितमिदं, M. R. सुचरितमत, K1. सुरचि-
तपद for सुचरितपदं. M. मेघदूत च नाम्ना for मेघदूताभिधान. M. काम-
क्रीडाविरहजनिते for कामक्रीडाविरहितजने. M. R. K1. विप्रयोगे for
विप्रयुक्ते. R. M. विनोद, M. विनोदि for विनोदः. R. K1. M. मेघश्वा-
स्मिन्, M. कामश्वास्मिन् for मेघस्यास्मिन्. R. K1. M. बुद्धिभावे for
बुद्धिभावः. R. M. चरणयुगलं for चरणरुमलम्.

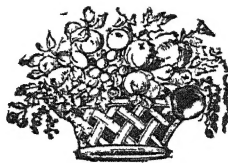
Appendix B.

Names of important places, rivers, mountains &c. as given
by *Kālidāsa* in the order of verses of the *Meghadūta*.—

Serial

| No. | Names:— | Page. |
|---------------|----------------------------|-------|
| 1..... | शमनगिरि. See Note on page | 2. |
| 2 | अलका do | 10. |
| 3 | मानस. do | 15. |
| 4 | कैलास | 15. |
| 6 | आम्रकूटं. do | 21. |
| 7.. | रेवा. do | 22. |
| 8 | विन्ध्य. do | 23. |
| 9 | दशार्ध do | 24. |
| 10.. | विदिशा do | 28. |
| 11 | वेनवती do | 29. |
| 12 | नीचैर्गिरि. do | 29. |
| 13. | वननदी. do | 30. |
| 14 | उज्जयिनी. do. | 30. |
| 15 | निर्विन्ध्या. do | 31. |
| 16 | सिन्धु. do | 32. |
| 17. | अवन्ती do | 33. |
| 18 | विशाला. do. | 35. |
| 19 | शिप्रा. do | 35. |
| 20 | गन्धवती. do | 40. |
| 21..... | गभीरा. do..... | 47. |

| | | | | |
|----|---------|---------------|--------------|------|
| 22 | | देवगिरि. | do | 49 |
| 23 | | चर्मण्वती | do | 52. |
| 24 | | दशपुर | do | 53. |
| 25 | .. . | ब्रह्मावर्त | do | 55. |
| 26 | | कुरुक्षेत्र | do | 55. |
| 27 | . . . | सरस्वती. | do | 62. |
| 28 | . . . | कनखल. | do | 62. |
| 29 | .. . | जाह्नवी. | do | 63. |
| 30 | | यमुना. | do | 70. |
| 31 | . . . | हिमालय. | do | 70. |
| 32 | | श्रीचरणन्यास | do | 71. |
| 33 | | क्राचरन्ध्रे. | do | 73 |
| 34 | . . . | हसद्वार | do | 74. |
| 35 | | कैलास. | do | 74. |
| 36 | .. . | मानस. | do | 77. |
| 37 | | मिथिल | do | 108. |



SANSKRIT BOOKS.

1 Raghuvansha of Kalidas, with Sanscrit Commentaries and English Translation, by G. R. Nandargikar, *Price Rs. 2-12.*

2. Amarsar, a Pocket Sanskrit-English and English—Sanskrit Dictionary by M. S. Gole, M. A. cloth, p p 664, *Price Re 1.*

3. Meghaduta of Kalidás with Sanscrit Commentaries, English Notes, Introduction, and Complete English Translation by G. R. Nandargikar, *Price Rs. 1—8.*

4 Subhashit Ratnakar, with Foot Notes, and Index, by K. S. Bhatavdekar, *Price Rs. 2.*

5 Granth Ratna Málá, a Monthly Sanscrit Magazine, Vols I-V, *Price Rs. 4 for each Volume.*

6 Higher Sanscrit Grammar by M. R. Kale, B. A. (This is the best Sanscrit Grammar ever published. It is both correct and complete, and specially adapted for Students preparing for the University Examinations) *Price Rs 2-8*

7 Sakuntalá of Kalidas with English Notes and Translation by P N Patankar, B. A. *Price Rs. 2.*

8. Apte's Student's Sanscrit English Dictionary. cloth, p, p. 1024, *Price Rs. 3.*

9. Apte's Practical Sanscrit-English Dictionary, cloth p p. 1196. *Price Rs. 7.*

10. Apte's Practical Sans-English Dictionary, Library Edition, well bound and printed on good thick paper, *Price Rs. 12.*

11. UttarRamCharita of Bhavbhuti, with English Notes, by G. S. Bhanap, *Price Rs. 1-4*

12. Naganand of ShreeHarsha with English Notes, by G. S. Bhanap, *Price Rs. 1-8.*

13 Kadambari of Bana, with Sanscrit Commentaries, *Price Rs. 5.*

14. Bhammivilas of Jaggamath Pandit with Full Sanscrit Commentaries, *Price Rs. 1-4.*

15 Vikramorvaslu by Kalidas, with English Notes by S. P. Pandit, M. A. *Price Rs 2-8*

16 Harshacharita of Banabhatta with Commentaries, *Rs. 2.*

17. Malti Madhav of Bhavbhuti, with Commentaries, *Rs.*

18. Bhatti Kavya with Sanscrit Commentaries, *Price Rs. 3.*
19. ~~Apb's~~ English-Sanskrit Dictionary, *Price Rs. 4.*
20. Bhartrihari's Niti and Vairagya Satakas with English Notes by the Honble. Justice Telang, *Price Rs. 1.*
21. Dasakumar Charita of Dandin with English Notes by Dr. Buhler, in 2 parts, *Price of each Part, 14 Annas.*
22. Subhashit Ratna Bhandagaram with Notes, *Price Rs. 3-8.*
23. Sisupalvadhi Magh with Commentaries, *Price Rs. 3.*
24. Sidhant Kaumodi, *Price Rs. 2*
25. Kiratarjuniya of Bharvi with Commentaries, *Price Rs. 2.*
26. Mahavir Charita of Bhavbhuti with Commentaries, *Rs. 1-8.*
27. Dashkumar Charit with Commentaries, *Price Rs. 1-8.*
28. Prasanna Raghav Natuck of Jaydeo, *Price 12 Annas.*
29. Kumar Sambhav with Sans. Commentaries, *Price Rs. 2.*
30. Raghuvansha with Commentaries, *Price Re. 1.*
31. Rutusanhar of Kalidas with English Notes *Price 6 Ans.*
32. Ratnavali of ShriHarsha with English Notes, *Price 8 Ans.*
33. Malvikagnimutra of Kalidas with English Notes by S. P. Pandit, M. A. *Price Rs. 2-2.*
34. Tarksangraha with English Translation, *Price 6 Ans.*
35. Hitopdesha with English Notes, *Price Rs. 1.*
36. Vikrama Nashi of Kalidas with Commentary, *Price 12 Ans.*
37. Valmiki Ramayana with Full Commentaries, *Price Rs. 10.*
38. Harivansa with Full Sanscrit Commentaries, *Price Rs. 6*
39. Bhagwat with the Commentaries of Shridhur, *Price Rs. 10.*
40. Bhagwat with Commentaries of Vijaydhawaj, *Price Rs. 10.*
41. Ganesh Purana, *Price Rs. 6.*
42. Krishna Yajurveda Taitareya Brahmana, *Price Rs. 2-8.*
43. Vedanta Sutra Bhashya in 3 parts, *Price Rs. 10.*
44. Vishnu Puran with Commentaries, *Rs. 3.*
45. Sundar Kand of Valmiki Ramayan, *Re. 1.*
46. Subhashitavali with Notes by Dr. Peterson, *Rs. 5.*
47. Kumar Sambhav with Commentaries, English Notes and English Translation, Cantos 1—VI. by Deshpande, B. A. *Rs. 1-10.*
48. Bhartri Haris Three Shataka's with Commentaries, *12 Annas.*
49. Udar Raghav with Commentaries, *Rs. 1-8.*

Gopal Narayan & Co; Booksellers, Bombay.

